गेनरिख़ वोल्कोव

युगपुरुष का जन्म

कार्ल मार्क्स के
व्यक्तित्व
और
विश्वदृष्टिकोण का
विकास

अनुवादक . ददन उपाध्याय

Генрих Волков

РОЖДЕНИЕ ГЕНИЯ

Становление личности
и мировоззрения
Карла Маркса.

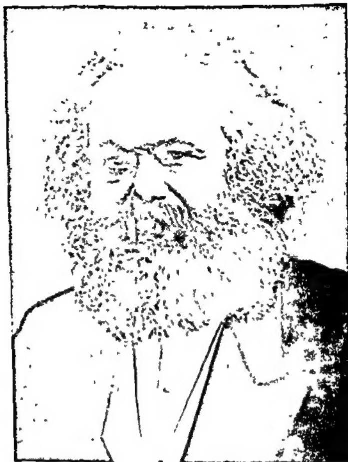
на языке хинди

Volkov G
Birth of Genius
The Development of the Personality
and World Outlook of Karl Marx
in Hindi

B $\frac{10103\text{-}329}{014(01)\text{-}82}$ 748-82 0103000000

आप कम्युनिस्ट केवल तभी बन सकते हैं, जब अपने मस्तिष्क को मानवजाति द्वारा अर्जित संपूर्ण निधियों के ज्ञान से समृद्ध बनायें।

लेनिन



विषय-सूची



कार्ल मार्क्स छात्र के रूप में।
चित्रकार – ऐ० ग्रिस्टेइन

आपके हाथो मे यह पुस्तक न तो कार्ल मार्क्स की जीवनी और न ही मार्क्सवादी सिद्धात का आम विवेचन है। इसका उद्देश्य आम पाठक को मार्क्सवाद से परिचित कराना, इस महान सिद्धात के जन्म और विकास का विवरण प्रस्तुत करना है, जिसने मानवजाति के भाग्य को किसी भी अन्य सिद्धात से कही अधिक प्रभावित किया है।

पुस्तक के लेखक ने पाठक को अपने साथ युवा मार्क्स के अन्वेषणो, विचारो और मनोवेगो की दुनिया मे, उस सृजन की प्रयोगशाला मे खीचने का प्रयास किया है, जहा उनके उत्तेजक विचार विकसित किये गये, ताकि वह इस दुनिया मे विचारमग्न होने के लिए अनुप्राणित हो सके, क्योकि एक युगपुरुष के विकास के मार्ग को देख सकने पर, उससे आत्मिक ससर्ग स्थापित कर सकने पर, भले ही वह परोक्ष ससर्ग हो, जो बौद्धिक

और आत्मिक अनुभव प्राप्त होता है, वह किसी और तरह से नही प्राप्त हो सकता।

सुविदित है कि मार्क्सवाद एक जडसूत्र नही, बल्कि कार्य का पथप्रदर्शक सिद्वात है। स्पष्टतया, मार्क्सवाद का अध्ययन इसके विकास मे, गति मे, अमल मे किया जाना चाहिए, न कि ऐसे "तैयारशुदा" सत्यो के सग्रह के रूप मे, जिन्हे सिर्फ रट लेने और तोते की भाति व्यक्त करने की आवश्यकता होती है।

मार्क्सवाद के मर्म को कैसे समझा जायें, इसने ससार को समझने की जो नयी दृष्टि प्रदान की उसको, और मार्क्सवाद को इसके पूर्ववर्ती दार्शनिक, सामाजिक-आर्थिक सिद्धातो से पृथक करने वाली चीज को कैसे समझा जाये? इसके लिए हमे उस मार्ग का अनुसरण करना चाहिए, जिससे मार्क्सवाद के सिद्धातकार गुजरे। इसके लिए आवश्यक है कि मार्क्स के रचनात्मक चिंतन के प्रयासो को "दोहराया" और अनुभव किया जाये, जिन्होंने नये विश्व-दृष्टिकोण को जन्म दिया और, सर्वोपरि, मानव सस्कृति की विरासत मे, जिसने मार्क्सवाद के स्रोत का काम किया, पारगति प्राप्त की जाये तथा उसे आलोचनात्मक ढग से अध्ययन किया जाये। इसके लिए सिद्धात और व्यवहार मे मार्क्सवाद को कार्यान्वित करने की योग्यता प्राप्त करना आवश्यक है।

बेशक, यह बहुत कठिन है और बडी मात्रा मे शक्ति, प्रयास और समय लगाने की माग करता है। लेकिन "विज्ञान का कोई सीधा और सपाट राजमार्ग नही है

और उसकी प्रकाशमान चोटियों तक पहुंचने का केवल उन्ही को अवसर प्राप्त हो सकता है, जो उसके ढालू रास्तों की थका देने वाली चढाई से नही डरते" (मार्क्स)।

इससे आसान रास्ते प्रायः मार्क्सवाद के अतिसरलीकरण और विकृतीकरण की ओर ले जाते हैं। वे, एक ओर, जड़सूत्रवादियों और दूसरी ओर, *"हतोत्साहितो"* को जन्म देते हैं। युवा कम्युनिस्ट लीग की तीसरी कांग्रेस मे अपने सुप्रसिद्ध भाषण मे लेनिन के दिमाग मे तब यही बात थी, जब उन्होंने पाठ्यपुस्तको और सुबोध पुस्तिकाओं मे बने-बनाये निष्कर्षों और नारो की सहायता से मार्क्सवाद (कम्युनिज्म) के "अतिसरलीकृत" अध्ययन के खिलाफ चेताया था।

स्वयं मार्क्स ने "जो कुछ मानव चिंतन द्वारा सृजित हुआ था, उसका नूतन सस्कार किया, उसकी आलोचना की और उसे मजदूर आदोलन की कसौटी पर कसकर ऐसे निष्कर्ष निकाले, जो बुर्जुआ संकीर्णता मे जकड़े हुए या बुर्जुआ अंधविश्वास मे डूबे हुए लोग नही निकाल सकते थे"*।

यदि हम जानना चाहते है कि मार्क्स किस रास्ते से मार्क्सवाद पर पहुंचे और कैसे मानव प्रतिभा की एक महानतम उपलब्धि सभव हुई, यदि हम यह मार्क्सवाद को इसके जन्म और विकास की प्रक्रिया मे समझने के लिए ग्रहण करना चाहते है, तो स्वभावत. हम पहले

---

* व्ला० इ० लेनिन, 'युवक सघो के कार्यभार', १६२०।

मार्क्स की प्रारंभिक कृतियों, उनके जीवन और कृतित्व की प्रारंभिक अवधि की ओर मुडते है।

वस्तुत क्यों मार्क्स ने ही दर्शन मे क्रांति लायी, जिसके फलस्वरूप मानवजाति को "नयी दृष्टि" मिली और इसके समक्ष नये क्षितिज खुले? इसके लिए किन व्यक्तिगत मानव गुणो की आवश्यकता थी? स्पष्टतया, ये प्रश्न उन लोगो के लिए गौण महत्व के नहीं है, जो दर्शन और जीवन मे मार्क्स का अनुसरण करना चाहते हैं।

यदि यह सही है कि मनुष्य की पहचान उसके कार्य से होती है, तो यह मार्क्स के बारे मे और भी ज्यादा सही है, क्योकि वह असाधारण रूप से एकनिष्ठ और उद्देश्यपूर्ण व्यक्ति थे।

मार्क्स के क्रांतिकारी दर्शन के विकास के साथ-साथ उनका व्यक्तित्व भी विकसित होता गया। उनकी कृतियो का विश्लेषण उनकी आत्मिक प्रयोगशाला के अतरतम, *विद्वान, क्रांतिकारी और नागरिक के रूप में उनके* नैतिक चरित्र के प्रकटीकरण की सर्वोत्तम कुजी है। अत इस पुस्तक मे मार्क्स के व्यक्तित्व के विकास और मार्क्सवाद के विकास को एक ही प्रक्रिया के रूप मे देखा गया है।

यह पुस्तक वैज्ञानिक कम्युनिज्म के सस्थापक के जीवन मे अपेक्षाकृत सक्षिप्त अवधि – १८३५ से १८४४ तक यानी स्कूल छोडने के समय से लेकर उनकी पहली कृतियो तक, जिनमे **भौतिकवाद और वैज्ञानिक कम्युनिज्म में संक्रमण एक तथ्य बन जाता है** – पर मुख्य ध्यान केंद्रित करती है।

मनुष्य के जीवन मे दस वर्ष उतने महत्वपूर्ण नही प्रतीत हो सकते है। तो भी, इसी अवधि मे एक टुट-पुजिया बुर्जुआ परिवार का स्कूली शिष्य अपने युग और अपने समकालीनो से बहुत आगे निकल जाते हुए आत्मिक विकास की ऊचाइयो पर पहुच गया।

मैंने युवा मार्क्स के आत्मिक विकास की विस्तृत या पूर्ण तस्वीर प्रस्तुत करने का प्रयास नही किया है। इस सक्षिप्त कार्य के उद्देश्य के लिए केवल उन्ही मुख्य दिशाओ पर विचार करना ही काफी है, जिनमें उनका व्यक्तित्व और विश्व-दृष्टिकोण विकसित हुआ। उद्देश्य उतना मार्क्स की कृतियो की विषय-वस्तु की व्याख्या करना नही है, जितना कि उनमे पाठक की दिलचस्पी पैदा करना और स्वय सोचने तथा जाच-पडताल करने के लिए उसे प्रोत्साहित करना।

सभवत युवा पाठक को पुस्तक में ऐसे नामों, पारिभाषिक शब्दो और समस्याओं से साक्षात्कार होगा, जिनसे वह परिचित नही है और सभवत वह सब कुछ तत्काल ही नही समझ लेगा। बहुत-सी चीजे उसे चिंतन-मनन करने के लिए प्रेरित करेंगी और बहुत-सी चीजे ऐसे प्रश्न उत्पन्न करेगी, जो उसमे अधिक गहराई से अध्ययन करने के लिए प्रेरणा जाग्रत करेंगी। मूल स्रोतो और पुस्तको के सदर्भ, जो आगे के अध्ययन के लिए चिंतन-सामग्री प्रदान कर सकती हैं, यह ध्यान मे रखते हुए दिये गये हैं कि वे उस क्षेत्र की स्वतंत्र जाच-पडताल के लिए मार्गदर्शन कर सके, जिससे यहा उठायी गयी समस्याए सबद्ध है।

और यदि इस पुस्तक के बाद पाठक मार्क्स के विचारो के क्षेत्र मे अधिक गहराई मे जाच-पडताल करना चाहता है, यदि मार्क्स का अनुसरण करते हुए वह भी प्लेटो और अरस्तू, काट और फिख्ते, हेगेल और फायरबाख के दर्शन, सेट-सीमोन, फुरिये और रिकार्डो की कृतियो तथा शेक्सपियर और बाल्ज़ाक, गेटे और हाइने की रचनाओं की ओर मुडता है, तो वह समझने के सही मार्ग पर होगा कि मार्क्सवाद का जन्म कैसे हुआ और यह क्या चीज है।

क्यो हमने ललित साहित्य का भी उल्लेख किया है? बात यह है कि केवल दार्शनिक और सामाजिक-आर्थिक पूर्वाधारो ने ही नही, बल्कि सौदर्यात्मक पूर्वाधारो ने भी मार्क्सवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। युवा मार्क्स के लिए स्वतत्रता-प्रेमी कला का ससार उनकी आस्थाओ का पहला विद्यालय था। कला ने ही उन्हें यथार्थ के प्रति आलोचनात्मक रुख अपनाने और दभी, आत्मसतुष्ट कूपमडूकता की भर्त्सना करने के लिए प्रेरित किया। मार्क्स की कलात्मक चेतना का विकास उनकी राजनीतिक चेतना के विकास के साथ एकाकार हो गया। कूपमडूकता की उनकी आलोचना उस समाज के आधारो की आलोचना बन गयी, जिसने इसे जन्म दिया।

कला मे मार्क्स की उत्कट दिलचस्पी, उनकी सौदर्यात्मक अभिरुचियो के प्रारभिक विकास तथा काव्य और गद्य मे उनके अपने प्रयोगो—इस सबने बाद मे उनकी कृतियो पर अत्यत लाभदायक प्रभाव डाला, जिसमे गहन वैज्ञानिक विचार तथा विवेचन के मेधावी कलात्मक रूप का सगम हुआ है।

१

घोर निद्रालुता की बेड़ियों में

> यह सही है कि पुरानी दुनिया कूपमडूक की है। लेकिन हमें कूपमडूक को एक ऐसा भूत नही मानना चाहिए, जिससे भय खाकर पीछे हट जायें। इसके विपरीत, हमें उस पर नजर रखनी चाहिए। दुनिया के इस मालिक का अध्ययन करना उपयोगी है।
>
> कार्ल मार्क्स*

जी हा, कूपमडूक की दुनिया पर एक दृष्टि डालना समीचीन है, मात्र इस वजह से कि इस दुनिया के साथ सघर्ष ने ही स्वय मार्क्स की प्रतिभा, एक योद्धा, चिंतक और क्रातिकारी के रूप मे उनके व्यक्तित्व को प्रखर और विकसित किया। इसका कम से कम एक सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना सगत है, ताकि उस पृष्ठभूमि को अधिक स्पष्टता के साथ दर्शाया जा सके, जिसमें मार्क्स की प्रतिभा पुष्पित हुई।

जर्मन कूपमडूकता इस बात के लिए प्रसिद्ध है कि हाइने की अति कठोर व्यग्योक्तियो तथा मार्क्स और एगेल्स के प्राणवेधी कटाक्षो ने इसकी धज्जिया उडा दीं। मार्क्स के लिए कोई भी चीज उतनी घृणास्पद नही थी, जितनी कि आत्मतुष्ट कूपमडूकता, चाहे वह किसी भी

* *Deutsch-Französische Jahrbücher*, १८६३।

क्षेत्र – व्यक्तिगत सबधो, रोजमर्रा के जीवन, विज्ञान, काव्य, राजनीति और क्रांतिकारी सघर्ष के व्यवहार के क्षेत्र – और किसी भी रूप में क्यों न हो।

लेकिन कूपमडूकता केवल एक "राष्ट्रीय" आविष्कार हरगिज नही है। यह टुटपुजिया बुर्जुआ आत्मतुष्टि, पाखडपूर्ण धार्मिक नैतिकता और कल के चाटुकार की दासत्वपूर्ण मानसिकता की स्वाभाविक उपज है, जो तन-मन से एक चाटुकार ही बना रहा है। यह एक ऐसी सामाजिक प्रणाली का अनिवार्य फल है, जो "स्वतत्रता, समानता और भ्रातृत्व" के "मानवीय" नारे के अतर्गत मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण करती है, लोगो को धनकुबेरो के गुलाम बनाती है और इसे ही मानवजाति की महान उपलब्धि बताती है।

कूपमडूकता विभिन्न देशों में ऐतिहासिक परिस्थितियो और राष्ट्रीय स्वरूप के अनुसार विकसित हुई। जर्मन कूपमडूकता की भी अपनी असाधारण विशेषता थी और इसके विशेष कारण थे।

१९वी सदी के प्रारभ मे "जर्मन राष्ट्र के पवित्र रोमन साम्राज्य" मे, जैसा कि तब इसे इतनी शान-शौकत से कहा जाता था, काफी बडे राज्यो (जैसे प्रशा और आस्ट्रिया) से लेकर सबसे छोटे राज्यों, रियासतो, ड्यूक की रियासतो, नवाबी जागीरो और स्वतत्र शाही नगरो तक कई सौ "सप्रभु" राज्य सम्मिलित थे। उन्हे राजनीतिक स्वतत्रता प्राप्त थी और वे केवल सम्राट तथा डायट की सत्ता के अधीन थे, एक ऐसी सत्ता, जो

कभी-कभी अत्यत भ्रामक थी।" परिणामस्वरूप, सर्वत्र गृह-युद्ध, गडबडी और घोर अव्यवस्था का बोलबाला था।

हर छोटा राजा अपनी प्रजा के लिए एक निरंकुश शासक था। दरबार मे सत्ता मत्रियों और सरकारी अधिकारियों के हाथो मे थी, जिन्हे, फेडरिक एगेल्स के शब्दो मे, कार्य की पूर्ण स्वतंत्रता और पूर्ण दडमुक्ति प्राप्त थी, बशर्ते कि वे अपने मालिक का खजाना भरे और उसके "हरम" के लिए प्रचुर मात्रा मे सुदरिया जुटाये।

धनलोलुप कूपमडूको, बुर्जुआ लोगो ने उत्पीडन और अपमान की स्थिति इस आशा से स्वीकार कर ली कि खलबली से लाभ उठाना अधिक आसान था और वे निरतर सामाजिक अव्यवस्था मे धन-दौलत के अपार स्रोत पाने मे सफल रहे। जनता के साथ ऐक्यबद्ध होकर वे पुरानी सत्ता का तख्ता उलटने और साम्राज्य को रुपातरित करने मे समर्थ हो सकते थे, जैसा कि अग्रेज बुर्जुआ वर्ग ने १६४० और १६८८ के बीच किसी हद तक किया था और जैसा कि उस समय फ्रास मे हुआ था।

लेकिन जर्मन बुर्जुआ वर्ग के पास ऐसी शक्ति नही थी और न ही उसने ऐसे साहस का कभी दम भरा। "किसानो, व्यापारियो और कारखानेदारो ने खून चूसने वाली सरकार तथा बुरे हालातो का दोहरा दबाव महसूस किया अभिजात और राजा अपने अधीन लोगो को बुरी तरह निचोडने के बावजूद अपने सतत बढते व्ययो को पूरा नही कर पाते। सब कुछ गलत था और पूरे देश

मे आम अशाति व्याप्त थी। कोई शिक्षा नही, लोगो की चेतना को प्रभावित करने के कोई साधन नही, कोई स्वतंत्र प्रेस नही, कोई जन-भावना नही, यहां तक कि दूसरे देशो के साथ थोडा बहुत व्यापार भी नही – नीचता और स्वार्थपरता के अलावा और कुछ नही। एक नीच, क्षुद्र, घृणित दुकानदारी मनोप्रवृत्ति सभी लोगो के मन मे घर कर गयी है।"*

यह चित्र उस "राज्य की बीमारी" से बहुत कुछ मिलता-जुलता है, जिसके बारे मे गेटे के 'फाउस्ट' मे चासलर अपने सम्राट को यह शिकायत करते हुए बताता है कि चारो ओर घोर गरीबी और मुसीबत व्याप्त है। एक बुराई दूसरी बुराई को जन्म दे रही है:

इस दरजा बुलदी से हर तरफ नजर डालो
एक ख्वाबे – परीशा है इस मुल्क को देखो,
एक ऐब के साचे मे यहा दूसरा ढलता है,
कानून की शह पर ही हर जुल्म पलता है,
एक दौरे गलतकारी जो बढता ही जाता है!..

हर एक नेकनीयत इसान का हश्र यही देखा
रिश्वत से, खुशामद से आखिर को पिघलता है।

---

* का० मार्क्स, फ्रे० एगेल्स, 'पवित्र परिवार अथवा आलोचनात्मक आलोचना की आलोचना। ब्रूनो बावेर और उनकी मडली के विरुद्ध', १८४५।

न्यायकर्ता को सजाओं का खुद कोई नही डर है,
मिल जाता है मुजरिम से अजाम ये होता है।
मैंने जो ये खीचा है अच्छा तो नहीं नक्शा
बस मेरा अगर चलता इससे भी बुरा कहता।*

तभी अनायास फ्रासीसी क्राति ने भारी निद्रालुता और निश्चल सड़ाध के इस राज्य पर वज्र-सा प्रहार किया। हताशा और नैराश्य का स्थान आम उत्साह ने ग्रहण किया। यहा तक कि उदारतावादी जर्मन बुर्जुआ लोगो ने "अंधाधुध फ्रोंदवादी" कार्रवाइया करने का भी साहस किया वे सुरागारो मे उत्साहपूर्वक मार्सेइयेज़ गा रहे थे और उन्होंने फ्रासीसी राष्ट्रीय सभा को अभिनदन सदेश भेजे। जर्मन कवियो ने एक स्वर मे फ्रासीसी जनता के यशगान किये। जर्मनी मे क्राति की जोरदार हिमायत करते हुए जैकोबिन के समर्थक प्रकट हुए।

लेकिन पश्चिम से आये इस वज्रतूफान से उन्माद थोडे समय तक ही रहा। जैकोबिन आतक ने जर्मन बुर्जुआ वर्ग को भयभीत कर दिया। भद्र कूपमडूको ने, जो निजी उद्यम की स्वतत्रता और ड्यूको तथा काउटो के साथ समानता और भ्रातृत्व का सपना देखने लगे थे, अब फ्रास से आने वाली खबरों को कार्यरतापूर्ण थरथराहट और क्रोध से सुना। जो लोग अभी कुछ समय पहले क्राति के जोशीले समर्थक बने हुए थे, अब इसके निर्मम और कट्टर शत्रु बन गये।

---

* गेटे, 'फाउस्ट'।

और फिर नेपोलियन ने अपनी सेनाओं के साथ जर्मन भूमि पर आक्रमण कर दिया। वस्तुगत दृष्टि से वह जर्मनी के लिए क्राति का एक प्रतिनिधि था, क्योंकि उसने इसके सिद्धातो का प्रचार किया। पुरानी सामती प्रथाओं का उन्मूलन करते हुए उसने अपनी, और निस्सदेह अधिक प्रगतिशील विधि-सहिता कायम की, सडे-गले साम्राज्य को नष्ट किया और बडे-बड़े राज्य बनाकर छोटे राज्यो की सख्या कम की।

फिर भी, जर्मनो ने नेपोलियन के प्रति कोई विशेष कृतज्ञता नही महसूस की। यह समझ मे आने योग्य बात थी उनके राष्ट्रीय अभिमान को फौजी पराजयो के कलक और इस बात से ठेस पहुचा था कि "अपहरणकर्ता" ने अपने बूट की एक ही ठोकर से सामतवाद के जर्जर तत्र को गिरा दिया था, जो कूपमडूक को इतना प्रिय था। जर्मन कूपमडूक अपने मालिक के प्रति स्वामिभक्ति बद करने से मर जाना अधिक पसद करता।

नेपोलियन की पराजय के बाद जर्मनी को घोर निद्रालुता की स्थिति मे, जिससे इसे झझोड कर जगा दिया गया था, पुन वापस लौटने का चिरप्रतीक्षित अवसर प्राप्त हुआ। प्रतिक्रिया ने सर्वत्र विजयोत्सव मनाया। यहा तक कि एक जर्मन राजा ने तो अपने सैनिको की चोटिया फिर से बनवायी, जो फासीसियो के अपवित्र हाथों द्वारा कतर दी गयी थी।

राजाओ के बीच भी प्रगति के कुछ समर्थक थे।

मिसाल के तौर पर, वेर्टेम्बेर्ग के राजा ने अपनी प्रजा को एक संविधान देने का निर्णय किया, जिसमे संसद की स्थापना की व्यवस्था थी। इस उद्देश्य से उसने विभिन्न सामाजिक श्रेणियो के प्रतिनिधियो की एक सभा बुलायी। लेकिन तभी कुछ ऐसा हुआ, जो सिर्फ जर्मनी मे ही हो सकता था। सामाजिक श्रेणियो के प्रतिनिधियो ने राजा के उदारतावादी प्रस्तावो को मानने से इन्कार कर दिया और "अच्छे पुराने कानूनो" की बहाली की माग की। ठीक उसी तरह जैसे हाइने के 'चीन का सम्राट' मे,

जो क्रांति की मौजूदगी से चैन मिले
तो कहने लगते है आपस मे मचू अभिजात लोग :
"जरूरत इसकी है तलवे पर मारिये डडे,
यहा भले हमे संविधान की जरूरत क्या !"

क्या ऐसी परिस्थितियो मे लेशमात्र भी उग्रवादी राजनीतिक आदोलन उभर सकता था? क्या कोई आशा की जा सकती थी कि आम लोग अपने देश की नियति मे हस्तक्षेप करेगे, अपना संकल्प स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्त करेगे?

जर्मन बुर्जुआ वर्ग ने अपनी सभी आशाए प्रशा के राजतत्र पर लगा दी, उसने इसे देश मे आर्थिक और राजनीतिक सकेद्रण प्राप्त करने मे समर्थ एकमात्र शक्ति के रूप मे देखा। आपसी साधातिक कलहो और विभाजन के चलते एक सयुक्त बुर्जुआ राज्य का आदर्श जर्मन

कूपमड्डक के लिए राष्ट्रीय आकांक्षाओं और आशाओं की जड़पूजा बन गया। "राज्य की यह स्थिति सरकारी अधिकारी की अंतर्विवेकशीलता, जो और कहीं नहीं पायी जाती, और राज्य के बारे में उन सभी भ्रमों को स्पष्ट कर देती है, जो जर्मनी में प्रचलित हैं"।*

जर्मन कूपमडूक सत्ताधारियों की ताबेदारी से ही संतुष्ट नहीं था। वह ईश्वर का भी ताबेदार था, जिसे वह "अपने दिल में लिये फिरता था"। जर्मनी धर्मसुधार (रेफार्मेशन) और प्रोटेस्टेंट धर्म का जन्म-स्थान था और धर्मपरायणता की भावना, जिसने "नैतिक पवित्रता" और ईश-प्रेम की मांग की, वहां बहुत अधिक मजबूत थी।

सभी रूपों में दासता और पाखंडपूर्ण नैतिकता, नैतिक बंधनों की संहिता सहित धर्म की वैध संतान—कूपमडूक—की संकुचित भौंहों पर अपने दोनों जन्मदाताओं की छाप होती है। उसे अनेक भूमिकाओं में पाया जा सकता था। वह मालिक या नौकर, एक मामूली कबाड़ी या घटिया विचारों के बिसाती की भूमिकाएं अदा कर सकता था। सभी सूरतों में वह अपने वरिष्ठों के समक्ष, चाहे वह मालिक, राजा या ईश्वर हो, नाक रगड़ने और उनकी ताबेदारी करने के लिए प्रसिद्ध है। सदियों के दौरान विकसित और दृढ़ीकृत यह चाटुकारिता कूपमडूक के लिए एक आंतरिक, अचेत आवश्यकता,

---

* का० मार्क्स, 'जर्मन विचारधारा', १८४५–१८४६।

उसकी मनोवृत्ति, उसकी आध्यात्मिक दुनिया बन जाती है। उसके विचारों और भावनाओं पर जडसूत्रों की पट्टी चढी होती है, वह अपने मन-मस्तिष्क में बेडियां ढोये फिरता है और इसलिए उनका आदर करता है। वह कुछ धर्मविधानों, ऊपर से गश्ती पत्रों और आदेशों के बिना तो अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता। स्वतंत्र कार्रवाई करने की आवश्यकता से पाला पड़ने पर उसे पसीना छूटने लगता है। यदि उसे चुनाव की स्वतंत्रता प्रदान की जाये, तो वह स्वतंत्रता को कभी नहीं चुनेगा।

उस समय का प्रशियाई कूपमडूक अनुशासनप्रिय था। "महामहिम" की फौजों और आध्यात्मिक बैरकों में प्रशिक्षित कूपमडूक ने डडा-अनुशासन को आसानी से अंगीकार कर लिया और यह सचमुच मान बैठा कि इस पर सारी दुनिया टिकी हुई है। उसे वस्तुत डडे से "श्वानवत्" अनुरक्ति थी और अपने मालिक के प्रति स्वामिभक्ति के प्रमाण के रूप में वह इस पर हाथ लगाने वाले किसी भी व्यक्ति का गला काटने के लिए तैयार था। स्वयं उसने इच्छापूर्वक आनुशासिक डडे की भूमिका अदा की और "उपद्रवियों" की खासी मरम्मत की।

कूपमडूक अपनी धर्मपरायणता, अपने आचरण की निष्कलंक नैतिकता से इतना मदहोश होता है कि वह प्रत्येक और सबको "नैतिकता का उपदेश देना", उन्हें सही रास्ते पर लाना अपना पवित्र कर्तव्य मानता है। वह ऐसी हर चीज के अज्ञान को एक सद्गुण मानता है,

जो आदमी को ऐशो-आराम मे रहने में सहायता नही पहुचाती।

मार्क्स ने उनमे मे एक का वर्णन निम्नलिखित शब्दो मे किया है "कल हास्से ग्रेइफस्वाल्ड से आये, जिनके बारे मे एकमात्र चीज, जो मुझे विलक्षण लगी, उनके गाव के पादरी जैसे बडे ऊंचे बूट हैं। उन्होंने गाव के पादरी के ऊचे बूटो जैसी बात भी की। उन्हे किसी भी चीज के बारे मे कुछ भी नही मालूम था। फिर भी, वह कैन्टरबरी के उवाऊ आसेल्म के बारे मे अनेक खडों वाली कृति प्रकाशित करने की तैयारी कर रहे हैं, जिस पर वह दस माल से काम कर रहे हैं। उनका ख्याल है कि वर्तमान आलोचनात्मक प्रवृत्ति एक ऐसा क्षण है, जिस पर अनिवार्यत काबू पाया जाना चाहिए। वह धार्मिकता को जीवन-अनुभव का परिणाम बताते है, जिससे शायद उनका आशय बहुत अधिक बच्चे होने और अपनी मोटी तोंद से है, क्योकि मोटी तोंदे सभी प्रकार के अनुभवो से गुजरती है, और जैसा कि काट कहते है, यदि यह पिचकती है, तो अश्लीलता बन जाती है, यदि यह फूलती है, तो धार्मिक प्रेरणा बन जाती है। अपने धार्मिक कब्ज के साथ क्या खूब आदमी है यह पवित्र हास्से!"*

हास्से मार्का कूपमडूक आडबरपूर्ण भाषण झाडने के शौकीन होते है और अपनी निकृष्ट और सीमित आवश्यक-

---

* का० मार्क्स, आ० रूगे को, १८४२।

ताओ को दुनिया के समक्ष "मन-मस्तिष्क" की आवश्यकताओं के रूप मे पेश करते हैं। वे योद्धा होने से भी इन्कार नही करते, लेकिन वे ऐसे योद्धा है, जो अपने "प्राणों की बाजी लगाने" के लिए नही, बल्कि अपने "जीवन" और "स्वार्थ" के लिए योद्धा बने रहते है।

विचारो की अपनी आत्मसतुष्ट व्यभिचारिता को सत्य की खोज मे रोमानी विचरण के रूप मे प्रस्तुत करते हुए वे चितक होने का दम भरते है, लेकिन आम तौर पर "दैवी विधान" से आगे नही बढ पाते। वे घिसी-पिटी, सतही बातों और "शिक्षाप्रद" बकवास की बद गली मे अपनी मतिमदता पर शान चढाते है।

मार्क्स ने अग्रेज नीतिवादी जेरेमी बेन्थम (१७४८–१८३२), १९वी सदी के बुर्जुआ चितन के उस गुरु-गंभीर, पडिताऊ और नीरस भविष्यवक्ता, "बुर्जुआ मूर्खता" के उस "महामनीषी" को "कूपमडूको का" सैद्धातिक "जन्मदाता" कहा।* "भोली-भाली मदबुद्धि" मे बेन्थम ने कूपमडूक को, जो अपने स्वार्थपरक हित को समाज मे सभी "उपयोगी" चीजो का मापदड मानता है, आदर्श मानव के रूप मे घोषित किया।

मार्क्स ने 'पूजी' मे लिखा है, "बेन्थम का कूपमडूकों मे वही स्थान है, जो कवियो मे मार्टिन टप्पर का है।" पिछली शताब्दी के मध्य मे अग्रेजी कूपमडूक हलको मे टप्पर को बडी लोकप्रियता प्राप्त थी, जिन्हे उसकी

* कार्ल मार्क्स, 'पूजी', खड १।

कविताओ का आडम्वरी भोडापन और मिथ्या गूढता खूब जची। अपनी 'आत्मस्वीकृतियो' – १८६५ मे अपनी बडी पुत्रियो की एक प्रश्नावली – में एक प्रश्न "आपके लिए असह्य" के उत्तर मे मार्क्स ने लिखा: "मार्टिन टप्पर"। बाजारू कलमघिस्सु लेखको, गदे राजनीतिक षड्यत्रकारियो और बुद्धिहीन शेखीबाजो की पूरी जमात मे से, जिन्होने मार्क्स को जीवन भर निर्ममतापूर्वक सताया, मार्क्स ने बिल्कुल सही-सही एक नाम चुना – एक ऐसे व्यक्ति का नाम, जिसके साथ मार्क्स का कभी कोई व्यक्तिगत सपर्क नही था, लेकिन जो मार्क्स की नजरो मे कूपमडूको की अश्लील रुचियो को उभारने मे सहायक बाजारू सफलता, साहित्यिक कूपमडूकतावाद का प्रतीक था।

ऐसा कूपमडूक "सिद्धातकार" सभी उदात्त, रोमानी और "आदर्श" चीजो की "पूजा करता" है और "भोडे भौतिकवाद" की "निन्दा करता" है। कूपमडूक के लिए भौतिकवाद शब्द का अर्थ है पेटूपन, पियक्कडपन, दुर्वासनाए, दभ, धनलिप्सा, तृष्णा, लोलुपता, मुनाफाखोरी और स्टाक-एक्सचेज की ठगबाजी – सक्षेप मे वे सभी कुत्सित दुर्गुण, जिनमे वह पर्दे की आड मे स्वय लिप्त रहता है। और "आदर्शवाद" शब्द का अर्थ वह सदाचार, लोकोपकार और साधारणत "एक बेहतर दुनिया" मे विश्वास समझता है, जिसकी वह औरो के सामने डीग हाकता है, पर जिसमे वह ज्यादा से ज्यादा तभी विश्वास करता है, जब अधिक पीने के बाद उसके सिर मे दर्द

होता है या जब वह दिवालिया हो जाता है, जो कि उसकी "भौतिकवादी" ज्यादतियों के परिणाम होते हैं। उसी समय वह अपना यह प्रिय राग अलापता है· "मानव क्या है? – आधा जानवर और आधा फरिश्ता।"*

सभवत कूपमंडूक का यही राग हेनरिख हाइने के दिमाग मे था, जब उन्होने लिखा

न मैं बुरा हू, न मैं अच्छा हू,
न तेज चलता हू, न मैं धीमे।
जो कल बढा था जरा-सा आगे,
तो आज जाना है मुझको पीछे।

मैं बुद्धिमत्तापूर्ण पुराणपथी हू,
न मैं हू घोड़ी, न मैं हूं घोडा,
सोफोक्लीज और चाबुक दोनो से
प्रेरणा मैं हू लेने वाला।

आह, वे बहुत भावुक है, "सोफोक्लीज और चाबुक" के ये उन्मत्त प्रेमी। "वही कूपमडूक नीचता, जो सर्वहारा मे कुत्सित, भ्रष्ट फटेहालो के अलावा और कुछ नही देखती और जो जून, १८४८ मे पेरिस कत्लेआम पर खुश हो रही है, जबकि ३,००० 'फटेहालो' को मौत

---

* फ़े० एंगेल्स, 'लुडविग फ़ायरबाख और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अत', १८८६।

के घाट उतार दिया गया — वही कूपमंडूक नीचता जानवरों के प्रति क्रूरता की रोकथाम के लिए भावुक समाजों के परिहास पर क्रुद्ध है।"*

बेशक, कूपमडूकता के अनेक चेहरे होते हैं। यह ऐसे परिमार्जित, प्राजल रूप भी धारण कर सकती है, जिनमें यह आसानी से पहचान में नहीं आती। यह फैशन का अनुकरण करती है और प्रत्येक नये युग के साथ अपनी वेशभूषा बदल देती है।

१६वीं शताब्दी के प्रारभ में कूपमडूकता जर्मन समाज की नस-नस में बैठ गयी थी। इसका जहर विज्ञान, काव्य और राजनीति में फैल गया था।

लेकिन कूपमडूक जर्मनी ही वस्तुत. सपूर्ण जर्मनी नहीं था। उदीयमान सर्वहारा, "सिलेशिया के बुनकरों" का भी जर्मनी था, जिन्होंने "पितृभूमि के बगुला-भगतों के लिए अभिशाप" (हाइने) बुना। लेसिग, गेटे, काट, फिख्ते और हेगेल का भी जर्मनी था। पर कूपमडूक दलदल से बहुत बुलद गेटे और हेगेल जैसी विराट हस्तियों ने भी कभी-कभी अपने पैर इस दलदल में फसा लिये। फिर भी, "पृथ्वी पर स्वर्ग बनाने" के बारे में "नया राग शुरू" करने वालों ने अपनी सारी आशाएं उन्हीं पर लगा दी।

---

* का० मार्क्स और फ़्रे० एगेल्स, '*Neue Rheinische Zeitung. Politisch-Ökonomische Revue No. 2* से समीक्षाएं', १८५०।

१९वीं सदी के पाचवें दशक तक, अर्थात उस समय तक, जब मार्क्स और एंगेल्स ने सामाजिक कार्यकलापों के क्षेत्र में प्रवेश किया, जर्मनी अपनी "घोर निद्रालुता" से जगने लगा था। यह क्रांति से व्याप्त था और जर्मन क्लासिकीय दर्शन ने एक तरह से इसके सैद्धांतिक आधार का काम किया।

जिस तरह वाल्तेयर का अट्टहास राजा का सिर गिलोटीन से कलम होने के पहले प्रतिध्वनित हुआ, जिस तरह मान्तेस्क्यू, रूसो और दिदेरो के विचारों ने, जिन्होंने फ्रांसीसी सामाजिक चेतना में एक क्रांति ला दी, १८वीं सदी के अंत में देश में राजनीतिक क्रांति का मार्गदर्शन किया, उसी तरह गेटे की उदास, मेफिस्टोफीलीस जैसी मंदमुस्कान तथा कांट और हेगेल की भारी-भरकम सैद्धांतिक रचनाओं ने जर्मनी में आसन्न क्रांति की उद्‌घोषणा की।

कांट का दर्शन, एक ओर, फ्रांसीसी क्रांति के विचारों और दूसरी ओर, तत्कालीन प्राकृतिक विज्ञानों की उपलब्धियों से संपोषित हुआ। उनके प्रकांड मस्तिष्क ने खगोल-विज्ञान और गणितशास्त्र से लेकर नीतिशास्त्र और सौंदर्यशास्त्र तक पूर्ववर्ती चिंतन के सभी प्रश्नों के उत्तर देने के लिए संपूर्ण ब्रह्मांड को अपनी परिधि में सम्मिलित करने का प्रयास किया।

रूसो का अनुसरण करते हुए कांट ने कहा कि मानव अन्य ध्येयों को प्राप्त करने का एक साधन नहीं, बल्कि सामाजिक विकास का स्वयं में ध्येय है। उसने स्वार्थपरक,

मालिकाना हितों के संघर्ष के खिलाफ नैतिक कर्तव्य – उसी तरह व्यवहार करो, जिस तरह बुद्धि के आदेशानुसार सबको करना चाहिए – की परम आवश्यकता पेश की। उन्होंने जनसत्ता की सप्रभुता और कानून के समक्ष सबकी बराबरी के विचार विकसित किये।

काट ने मानव की बुद्धि, सज्ञान और सृजन की उसकी योग्यता को दार्शनिक परीक्षण का मुख्य विषय बनाया। उन्होंने चिंतन की अधिनायकवादी धार्मिक प्रणाली की बेडियो से संदेह – "ईश्वर-प्रदत्त" सचाइयो की अतिमता और सपूर्णता मे संदेह, कभी पूर्ण और सर्वांगीण ज्ञान प्राप्त करने की हमारी योग्यता मे संदेह – के दानव को मुक्त कर दिया। काट ने ईश्वर को भी अज्ञेय "वस्तुनिजरूप" ठहराया और इस तरह जर्मनी मे धर्म की दार्शनिक आलोचना की आधारशिला रखी।

लेकिन काट पर चिंतन की अत्यधिक निर्भीकता और निर्दोष सुसगतता का आरोप लगाना मुश्किल होगा। अफसोस यह कि वह सिद्धात के क्षेत्र मे भी जन्मजात क्रातिकारी नही थे। आगे कदम लेने मे उन्होंने हमेशा पीछे मुड कर देखा। उन्होंने फ्रासीसी क्राति और प्राकृतिक विज्ञानो मे क्राति द्वारा प्रेरित देदीप्यमान विचारो को जर्मन दर्शन मे गुपचुप "चोर दरवाजे" से घुसाने, उन्हे ऐसे रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया कि सकीर्णमना जर्मन कूपमडूक उनसे स्तभित न होने पाये। उन्होंने अपने मे अत्यत अविश्वसनीय ढग से बुर्जुआ उदारतावादी और राजतत्रवादी, सशयवादी और बुद्धिवादी, भौतिकवादी

और भाववादी, अनीश्वरवादी और सुसंस्कृत धर्म-रक्षक को समन्वित किया।

कांट की संकीर्णता, असंगतता और सतर्कता की व्यंग्यभरी आलोचना करते हुए हाइने ने इस "चिंतन के क्षेत्र मे विध्वंसक" की तुलना फ्रांसीसी जैकोबिनो के नेता मैक्सिमिलियन रोबेस्पियेर से की, जिसके नाम से ही फ़ासीसी अभिजात-वर्ग मे आतंक फैल जाता था। फिर भी हाइने पाते हैं कि वे किसी चीज के समान रूप से भागीदार है। यह सबसे पहले अनमनीय, तीक्ष्ण, शुष्क, गंभीर ईमानदारी है। इसके अलावा, दोनों "अविश्वास की प्रतिभा" से संपन्न है, बस एकमात्र अंतर यह है कि एक ने इसे विचारो पर लागू किया और इसे आलोचना कहा, जबकि दूसरे ने इसे लोगों पर लागू किया और इसे जनतंत्रवादी सदाचार कहा। और अंत में, " . लेकिन दोनो में कूपमडूकता का नमूना उच्चतम सीमा तक स्पष्ट था। प्रकृति ने उन्हे काफ़ी और चीनी तौलने के लिए तैयार किया था, लेकिन नियति ने तय किया कि उन्हें अन्य चीजें तौलनी चाहिए और तुला पर एक के लिए राजा और दूसरे के लिए ईश्वर रखा..."

यह उक्ति रोबेस्पियेर के बारे में भले ही सच्ची हो, काट के मर्म को एकदम प्रकट कर देती है, जिन्होंने ईश्वर को एक हाथ मे "मृत्यु-दंड" देकर दूसरे हाथ से "क्षमा-दान" दे दिया।

हाइने अगले दृश्य का चित्रण और प्रस्तुत करते हैं जिसमें दुखांतिकी के बाद प्रहसन आता है। पहले

इमानुएल काट निर्मम दार्शनिक का दम भरते हैं, स्वर्ग पर धावा बोलते हैं, संपूर्ण गैरिज़न को तलवार से मौत के घाट उतार देते है और ईश्वर के अस्तित्व के समर्थन मे सभी तर्कों की धज्जिया उडा देते है और अब जगत्पति असत्य सिद्ध होकर अपने ही खून मे तैर रहा है। अब कोई सार्विक अनुकपा नही, कोई पितृतुल्य प्रेम नही, इहलोक मे स्वार्थत्याग के लिए परलोक मे कोई पुरस्कार नही। आत्मा की अनश्वरता मौत की अंतिम घोर पीडादायी हिचकिया ले रही है। और काट का स्वामिभक्त सेवक बूढा लापे, जो जीवन भर प्रोफ़ेसर का छत्रधार बना रहा, यह सब कुछ भयस्तब्ध होकर देख रहा है और उसके चेहरे से ठडा पसीना और आसू बह रहे हैं।

तब इमानुएल काट को तरस आता है और वह यह दिखाते है कि वह एक महान दार्शनिक ही नही, एक नेक आदमी भी है। वह चितनमग्न होकर कुछ नेकनीयती, कुछ व्यग्यपूर्ण ढग से कहते है. "बूढे लापे के लिए ईश्वर लाजिमी है वरना वह सुखी नही रह सकता। लेकिन व्यावहारिक बुद्धि के अनुसार आदमी को पृथ्वी पर सुखी होना चाहिए, ठीक है, व्यावहारिक बुद्धि को ईश्वर का अस्तित्व प्रमाणित करने दे।"

हालाकि काट मे कूपमडूक उनके दार्शनिक निष्कर्षों पर भी हावी था, उनकी रचनाओ मे विद्यमान आलोचना की भावना ने जर्मनी मे एक बड़ा बौद्धिक उफान पैदा कर दिया, एक ऐसा उफान, जिसने फ़िख़्ते, शेल्लिग और ख़ास तौर से हेगेल के दर्शन मे चरमोत्कर्ष प्राप्त किया।



इमानुएल काट

हेगेल ने कांट द्वारा शुरू दार्शनिक क्रांति को इसके तर्कसंगत निष्कर्ष तक पहुंचाया। उनके द्वारा विकसित द्वंद्वात्मक पद्धति ने उनकी रचनाओं में सैद्धांतिक चिंतन की आलोचनात्मक शक्ति को एक प्रचंड अस्त्र प्रदान किया। हेगेलीय द्वंद्ववाद ने इस विचार को दृढ़तापूर्वक गलत सिद्ध कर दिया कि कोई सैद्धांतिक जड़सूत्र परम और अनश्वर है, कि कोई सामाजिक व्यवस्था अनश्वर और शाश्वत है। हेगेल द्वारा विकसित द्वंद्वात्मक दर्शन का वर्णन करते हुए एंगेल्स ने लिखा कि इसके लिए कोई भी चीज अंतिम, पवित्र नहीं है। "यह हर चीज के और हर चीज में अस्थायी स्वरूप को प्रकट करता है।"*

हेगेल की इस सुप्रसिद्ध प्रस्थापना की कि "सभी यथार्थ चीज़ें बुद्धिसंगत होती हैं और सभी बुद्धिसंगत चीज़ें यथार्थ होती है" व्याख्या इस अर्थ में भी की जा सकती है कि मानव इतिहास के क्षेत्र में सभी यथार्थ चीजें समय के साथ अबुद्धिसंगत बन जाती हैं और अतः क्रांति द्वारा ध्वस्य है।

हेनरिख हाइने एक महान कवि ही नहीं, गंभीर दार्शनिक भी थे और उन्होंने स्वयं हेगेल के संरक्षण में दर्शन का अध्ययन किया। उन्होंने इस बात का वर्णन किया है कि वह कैसे "आचार्य के पीछे" खड़े थे, जब वह अपनी द्वंद्ववादी संरचनाओं का संगीत रच रहे थे

---

* फ़े० एंगेल्स, 'लुडविग फायरबाख और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अंत'।

"यह सही है कि उन्होंने यह बहुत अस्पष्ट और गूढ संकेतों मे लिखा ताकि इसे हर कोई न पढ सके। कभी-कभी मैंने देखा कि वह इस भय से आतुरतापूर्वक इधर-उधर देख रहे है कि उन्हे कोई समझ न ले। वह मुझे बहुत चाहते थे, क्योंकि उन्हे पूर्ण विश्वास था कि मैं उन्हे धोखा नही दूगा। यहा तक कि उस समय मैंने उन्हे चाटुकार भी सोचा। एक दिन जब मैंने "सभी यथार्थ चीज़े बुद्धिसंगत होती है" शब्दो पर आपत्ति प्रकट की, तो उन्होंने अजीब-सी हसी हसते हुए कहा 'इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि सभी बुद्धिसगत चीज़े यथार्थ होनी चाहिए।' उन्होंने हडबडा कर चारो ओर देखा, लेकिन वे तुरत आश्वस्त हो गये, क्योंकि उन्होंने जो कुछ कहा था उसे केवल हेनरिख बेर ने ही सुना था। यह तो बाद मे जाकर मैंने इन रूपकों को समझा। और बाद मे जाकर ही मैं यह समझ पाया कि क्यो उन्होंने इतिहास के दर्शन मे यह घोषणा की कि ईसाई धर्म इस वजह से प्रगतिशील था कि इसने एक ऐसे ईश्वर का उपदेश दिया, जो मर चुका था, जबकि गैर-ईसाई देवताओं को मृत्यु बिल्कुल नही मालूम थी। अत. यह मान्यता कि ईश्वर का कभी अस्तित्व नहीं था, कितनी प्रगति का सूचक है!.."

हेगेल 'फाउस्ट' मे मेफिस्टोफीलीस की तरह चिल्ला कर कह सकते थे· "मैं आत्मा हूं, जो सदा-सर्वदा इनकारती है और ठीक ही, क्योंकि जन्म लेने वाली सभी चीज़ें नश्वर है।"

लेकिन हेगेल अपने द्वंद्ववाद से दुनिया की धज्जियां उड़ा देने वाले "मेफिस्टोफीलीस-जैसे" निष्कर्ष निकालने से बहुत दूर थे। वह एक बहुत ही भद्र नागरिक और प्रशियाई राजा के वफादार नौकर थे।

कांट की भांति हेगेल भी विज्ञान में कूपमंडूक बने रहे। उन्होंने द्वंद्ववाद की तलवार खींची और फौरन उसे अपनी दर्शन-प्रणाली के जंग लगे म्यान में बंद कर दी, म्यान को अपने होठों तक ऊपर उठाया और अपने सम्राट फ्रेडरिक विल्हेल्म तृतीय के समक्ष "वीरोचित ढंग से" घुटने टेक दिये तथा सुप्रसिद्ध रात्रि-टोपी धारण किये अपना श्वेतकेशी सिर भी झुका दिया। बदले में उन्हें सरकारी दार्शनिक की उपाधि मिली।

जर्मन क्लासिकीय दर्शन की विरासत से "क्रांति के बीजगणित" का इन शब्दों के सही अर्थ में सृजन करने के लिए अन्य मस्तिष्कों, अन्य व्यक्तित्वों की आवश्यकता थी। ऐसे लोगों की आवश्यकता थी, जो पुराने समाज के सभी कूपमडूक बधनो से मुक्त हों, जो अपने अहद मे बुलद हो, जो अपने चितन के परिणामो से भयभीत नही हो और उन पर निर्भीकतापूर्वक अमल करते। ऐसे लोग, जिनके लिए ज्ञान के प्रति ईमानदारी और क्रांति के प्रति समर्पण ही एकमात्र निष्ठाए हों।

महान व्यक्ति वहा और उस समय प्रकट होते हैं, जहा और जब उनके महान कार्यकलापो के लिए परिस्थितिया प्रौढ हो चुकी होती है। हेगेल की मृत्यु के वर्ष में [illegible] के एक विद्यालय मे कार्ल मार्क्स नाम का १३ साल का

एक लडका पढ रहा था और इस नगर से कोई बहुत दूर नही वार्मेन मे ११ वर्ष का फ्रेडरिक एगेल्स नाम का एक बालक रह रहा था।

वे दोनो राइन प्रदेशवासी थे। क्या यह सहज एक सयोग था ?

राइन प्रदेश दो महान जर्मन और फ्रासीसी सस्कृतियो के प्रभाव मे था। नेपोलियन के काल मे यह फ्रास का एक अग भी बन गया था। शेष जर्मनी के विपरीत, यहा सामती प्रथाए पूरी तरह नष्ट कर दी गयी थी।

लेकिन राइन प्रदेशवासियों की निराशा उस समय सबसे प्रबल थी, जब वे पिछड़ी प्रशियाई निरकुशता के शासनाधीन आये। अतर बहुत स्पष्ट था। यह बिल्कुल स्वाभाविक था कि राइन प्रदेश में कुछ सरकारी अधिकारियो ने भी उदारतावाद और आमूल परिवर्तनवाद की डीगे मारी।

पडोसी फ्रांस को झंझोड देने वाले क्रांतिकारी तूफान की गडगडाहट राइन प्रदेश मे साफ-साफ सुनायी दी। इसी के रास्तो से फ़ासीसी भौतिकतावाद और प्रबोधन के विचारों की धारा जर्मनी पहुंची। स्वभावतया, यहा जर्मन क्लासिकीय दर्शन के विचारो का कल्पनावादी समाजवाद के विचारो (ख़ास तौर से सेंट-सीमोन के विचारो) से जितना टकराव हुआ, उतना कही और नही। यहां फ़ासीसियो की वाग्विदग्ध, विनोदी, व्यग्यात्मक कला ने भावात्मक काव्य, मध्यकालीन रोमासवादी साहित्य

और चर्च गीतों पर पले जर्मनी के विचारों और भावनाओं पर स्फूर्तिदायी प्रभाव डाला।

इसके अलावा, राइन प्रदेश जर्मनी के सबसे विकसित विविध उद्योगों और अब पुराने समाज के "कब्र खोदने वाले" बहुसंख्यक औद्योगिक सर्वहारा से भी भरा-पूरा था।

नहीं, यह कोई संयोग नहीं था कि जर्मनी का राइन प्रदेश मार्क्स और एंगेल्स का जन्म-स्थान था।

२
उद्देश्य की खोज में

—आपकी नजर में सुख क्या है?
—संघर्ष।

कार्ल मार्क्स की
'आत्मस्वीकृतियां'

वसंत के एक धूपहले दिन को गठीले बदन का, काले बालों वाला एक आदमी त्रियेर नगर मेयर भवन की ओर लंबे कदमों से जा रहा था। उसका चेहरा खुशी से खिला हुआ था और वह अपनी गोद में कपड़े में लिपटा एक नवजात शिशु लिये हुए था। कुछ ही मिनटों में वह एक अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत हुआ, जिसने उससे ऐसे अवसर पर पूछे जाने वाले आम सवाल पूछे और कागज पर सधी, चरमराती पर की कलम से लिखा:

"सन् अठारह सौ अठारह में मई मास के सातवें दिन को अपराह्न में चार बजे मेरे, त्रियेर जिले में त्रियेर मेयर कार्यालय के जन्म, विवाह और मृत्यु रजिस्ट्रार के समक्ष, श्री हेनरिख मार्क्स, त्रियेर में अधिवासित, आयु सैंतीस वर्ष, पेशे से अपीली उच्च न्यायालय के बैरिस्टर प्रस्तुत हुए। उन्होंने मुझे एक नवजात बच्चा दिखाया और कहा कि उक्त बच्चा त्रियेर में मई मास

के पाचवे दिन को दो बजे सुबह श्री हेनरिख ,
पेशे से बैरिस्टर, त्रियेर मे अधिवासित,
पत्नी हेनरियेट प्रेस्बोर्क को हुआ और
बच्चे को कार्ल नाम देने की इच्छा प्रकट .

अधिकारी ने इसके नीचे अपने
जन्म प्रमाणपत्र पिता को थमा दिया। उसे
तनिक भी आभास नही हुआ कि यह एक
था, जिसने दुनिया मे एक ऐसे व्यक्ति
प्रमाणित किया, जिसे प्रौढावस्था प्राप्त
जन्म-भूमि से निर्वासित किया जायेगा और
भी व्यक्ति से ज्यादा प्रसिद्धि दिलायेगा।

न ही सौभाग्यशाली पिता को ही
वह ६६४, ब्रुक्केनगास्से मार्ग स्थित छोटे
मे रह रहे अपने परिवार मे लौट आये।
मिलने वाले अनेकानेक लोगो के अभिवादनो
का जवाब मुश्किल से ही दे पा रहे थे।

हेनरिख मार्क्स इस नगर मे अपनी
निष्कलक चरित्र, परोपकारिता और
किसी भी निर्दोष आदमी की अपनी सपूर्ण
से सहायता करने के लिए सुप्रसिद्ध और
यहूदी धर्मगुरुओ के परिवार मे जन्मे
यहूदी धर्म का परित्याग करके लूथर मत

लेकिन मार्क्स के घर मे ईसाई
वाल्तेयर, शिलर, रासीन, रूसो,
और काट की पूजा होती थी। हेनरिख

सस्कृति की समृद्ध विरासत को आत्मसात किया और इसे अपने प्रिय पुत्र कार्ल को प्रदान किया। इसकी बदौलत "कलादेवियो द्वारा उनके पालने में रखी गयी" (मेहरिंग) अनेक प्रतिभाओ को बचपन से ही विकास के लिए पूर्ण क्षेत्र प्राप्त हुआ।

युवा मार्क्स के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि उनके परिवार की कौसिलर बैरन लुडविग फोन वेस्टफालेन के परिवार के साथ दोस्ती थी। वेस्टफालेन परिवार के तीन लोग उनके जीवन मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले थे· पहला, स्वयं परिवार के मुखिया, जो मार्क्स के पितातुल्य थे; दूसरा, उनका सबसे छोटा पुत्र एड्गर, जो उनका बचपन के खेलो और स्कूली दिनो के शौको का जिगरी दोस्त था (१९वी शताब्दी के पाचवे दशक के अत मे वह एक समय कम्युनिस्ट लीग के निकट था); और अत मे, एड्गर की बहन जेनी, मार्क्स की भावी पत्नी और उनकी वफादार जीवन-सगिनी।*

लुड्विग फोन वेस्टफालेन एक जीवत व्यक्ति थे। सुप्रसिद्ध स्काटी और जर्मन अभिजात परिवारो के वशज के रूप मे वह अपने समय के एक सुशिक्षित व्यक्ति और महान काव्य-प्रेमी थे। जबकि कार्ल के पिता ने उन्हे वाल्तेयर और रासीन से परिचित कराया, लुड्विग फोन

* जेनी का बडा भाई फर्डीनाड बाद मे १९वी सदी के छठे दशक की प्रतिक्रियावादी प्रशियाई सरकार मे गृहमंत्री के रूप मे मार्क्स का कटु राजनीतिक विरोधी बन गया।

के पाचवे दिन को दो बजे सुबह श्री हेनरिख मार्क्स, पेशे से बैरिस्टर, त्रियेर मे अधिवासित, और उनकी पत्नी हेनरियेट प्रेस्बोर्क को हुआ और उन्होने अपने इस बच्चे को कार्ल नाम देने की इच्छा प्रकट की।"

अधिकारी ने इसके नीचे अपने हस्ताक्षर किये और जन्म प्रमाणपत्र पिता को थमा दिया। उसे इस बात का तनिक भी आभास नही हुआ कि यह एक ऐसा दस्तावेज था, जिसने दुनिया मे एक ऐसे व्यक्ति के आगमन को प्रमाणित किया, जिसे प्रौढावस्था प्राप्त करने पर अपनी जन्म-भूमि से निर्वासित किया जायेगा और जो इसे किसी भी व्यक्ति से ज्यादा प्रसिद्धि दिलायेगा।

न ही सौभाग्यशाली पिता को ही इसका आभास हुआ। वह ६६४, ब्रुक्केनगास्से मार्ग स्थित छोटे दो-मंजिले भवन में रह रहे अपने परिवार मे लौट आये। वह रास्ते मे मिलने वाले अनेकानेक लोगो के अभिवादनो और बधाइयो का जवाब मुश्किल से ही दे पा रहे थे।

हेनरिख मार्क्स इस नगर मे अपनी उच्च शिक्षा, निष्कलक चरित्र, परोपकारिता और मुश्किल मे फसे किसी भी निर्दोष आदमी की अपनी सपूर्ण कानूनी मेधा मे सहायता करने के लिए सुप्रसिद्ध और सम्मानित थे। यहूदी धर्मगुरुओं के परिवार में जन्मे हेनरिख मार्क्स ने यहूदी धर्म का परित्याग करके लूथर मत अपना लिया।

लेकिन मार्क्स के घर मे ईसाई सतो के बजाय वाल्तेयर, शिलर, रासीन, रूसो, लेसिंग, स्पिनोजा और काट की पूजा होती थी। हेनरिख मार्क्स ने यूरोपीय

संस्कृति की समृद्ध विरासत को आत्मसात किया और इसे अपने प्रिय पुत्र कार्ल को प्रदान किया। इसकी बदौलत "कलादेवियो द्वारा उनके पालने मे रखी गयी" (मेहरिंग) अनेक प्रतिभाओं को बचपन से ही विकास के लिए पूर्ण क्षेत्र प्राप्त हुआ।

युवा मार्क्स के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि उनके परिवार की कौंसिलर बैरन लुडविग फोन वेस्टफालेन के परिवार के साथ दोस्ती थी। वेस्टफालेन परिवार के तीन लोग उनके जीवन मे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाले थे: पहला, स्वय परिवार के मुखिया, जो मार्क्स के पितातुल्य थे; दूसरा, उनका सबसे छोटा पुत्र एड्गर, जो उनका बचपन के खेलो और स्कूली दिनो के शौको का जिगरी दोस्त था (१९वी शताब्दी के पाचवें दशक के अत मे वह एक समय कम्युनिस्ट लीग के निकट था); और अत मे, एड्गर की बहन जेनी, मार्क्स की भावी पत्नी और उनकी वफादार जीवन-सगिनी।*

लुड्विग फोन वेस्टफालेन एक जीवत व्यक्ति थे। सुप्रसिद्ध स्काटी और जर्मन अभिजात परिवारो के वशज के रूप मे वह अपने समय के एक सुशिक्षित व्यक्ति और महान काव्य-प्रेमी थे। जबकि कार्ल के पिता ने उन्हे वाल्तेयर और रासीन से परिचित कराया, लुड्विग फोन

---

* जेनी का बड़ा भाई फर्डीनाड बाद मे १९वी सदी के छठे दशक की प्रतिक्रियावादी प्रशियाई सरकार मे गृहमंत्री के रूप मे मार्क्स का कट्टु राजनीतिक विरोधी बन गया।

वेस्टफालेन ने उन्हे जेनी और एड्गर के साथ होमर और शेक्सपियर की रचनाए पढ कर सुनायी, जिन्हे वे कठस्थ थी। वस्तुत वयोवृद्ध वेस्टफालेन ने ही मार्क्स में काव्य के प्रति रुचि प्रोत्साहित की और उनकी सौंदर्यात्मक प्रवृत्तियो को विकसित किया। उन्ही से मार्क्स ने पहली बार सेट-सीमोन का नाम सुना।

सभवत वेस्टफालेन ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने मार्क्स के मस्तिष्क को सामाजिक विषयो की ओर मोडा और विद्यमान व्यवस्था के प्रति आलोचनात्मक रुख प्रेरित किया। यह सयोग की बात नही है कि मार्क्स ने विज्ञान के क्षेत्र मे अपनी पहली कृति—अपने डाक्टर की उपाधि सबधी शोध-प्रबध—को उन्हे "मेरे प्रिय पितातुल्य मित्र को" के सबोधन से समर्पित किया। कृति-समर्पण मे उन्होंने वेस्टफालेन को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में वर्णन किया है, "जो समय के हर प्रगतिशील कदम का उत्साह और यथार्थपूर्ण विवेक से स्वागत करते है," जो "प्रतिगामी भूतो की काली प्रतिच्छायाओ के समक्ष कभी भयभीत नही हुए"।* निस्सदेह, "वयोवृद्ध वेस्टफालेन के घर" में युवा मार्क्स को अपने परिवार अथवा विद्यालय मे कोई कम समृद्ध बौद्धिक आहार नही मिला।

तत्कालीन विद्यालय शिक्षा प्रणाली तोतारटत "पुरानी, अच्छी परम्पराओं" के अनुसार निर्देशित होती थी। अध्यापक

---

* का० मार्क्स, 'प्रकृति के डेमोक्रिटियन और एपिक्यूरियन दर्शन के बीच अतर', १८३९-४१।

अपने शिष्यों में पूर्व-निष्पन्न ज्ञान — धर्मशास्त्रीय उक्तियों, ऐतिहासिक तथ्यों, गणितीय फार्मूलों — को कठस्थ करने और इसे हूबहू उद्धृत करने की योग्यता को बड़ा महत्व देते थे। उनके लिए सर्वोत्तम शिष्य वह होता था, जो रटी-रटायी चीज को धारा-प्रवाह सुना सके और सुंदर लिखावट में लिख सके। विचार-स्वातंत्र्य, कल्पना की निर्भीक उड़ान, समस्याओं के समाधान के प्रति मौलिक दृष्टिकोण — इस सबको गुण से अधिक दोष ही माना जाता था।

उन दिनों की विद्यालय शिक्षा प्रणाली व्यक्तित्व को इतना विकसित नहीं करती थी जितना उसे दबा देती थी। यह विज्ञानों के प्रति प्रेम नहीं, बल्कि उबाऊ जड़सूत्रों के एक संग्रह के रूप में उनके प्रति जुगुप्सा ही पैदा कर सकी। जो कुछ पढ़ाया जाता था, उसके निर्विवाद, सुनिश्चित और परम स्वरूप ने शिष्यों के मस्तिष्कों को भ्रष्ट बनाया, जड़ और परजीवी चिंतन, दूसरों के विचारों के लकीर का फकीर बनने और "स्वीकार्य" चीज़ को शिरोधार्य करने की आदत विकसित की। इस तरह, विद्यालय ने शिष्यों की नज़रों में विज्ञान की प्रतिष्ठा को हेय बनाया, क्योंकि इसने धर्मसूत्रों के चिंतन की निरंकुश प्रणाली विकसित की। सत्य-निष्ठा के स्थान पर इसने घिसी-पिटी बातों की अपरिवर्तनीयता में विश्वास विकसित किया। स्वतंत्र समाधानों की खोज में अन्वेषणात्मक "चिंतन-व्यथा" के स्थान पर इसने ऊल-जलूल चीजों को रट-रट कर याद करने की यातना प्रदान की।

त्रियेर के जिस विद्यालय मे मार्क्स पढते थे, उसे एक सर्वोत्तम स्कूल माना जा सकता था, क्योकि इसमे न्यूनाधिक उदारतावादी भावना का बोलबाला था। मार्क्स के विद्यालय मे अध्यापक अपने-अपने क्षेत्र के सुप्रसिद्ध लोग थे मिसाल के लिए, फ्रासीसी प्रबोधन के विचारो के अनुयायी और त्रियेर के इतिहासकार जोहान्न ह्यूगो विट्टेन्बाख (प्रधानाध्यापक), जिन्हें गेटे से व्यक्तिगत रूप मे परिचित होने का गौरव प्राप्त था। उन्होने अपने शिष्यो मे मानव की प्रगति और गरिमा मे पवित्र विश्वास प्रेरित करने का प्रयास किया। गणितशास्त्र और भौतिक-विज्ञान के अध्यापक जोहान्न श्टेइननिगेर पर पुलिस निगरानी रखती थी।

लेकिन ये अध्यापक शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्य और विधियो मे कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नही कर मके। प्रशियाई सरकार अध्यापको और शिष्यो पर कडी नजर रखे हुए थी ताकि उनकी चिंतन-प्रणाली "सही" बनी रहे। इस उद्देश्य से उसने किसी विटुस ल्योर्स को विद्यालय का सह-प्रधानाध्यापक नियुक्त किया, जो अपने प्रतिक्रिया-वादी विचारो के लिए सुप्रसिद्ध था। त्रियेर विद्यालय से राज्य को शिक्षित कूपमडूक – राजा और देश का दुर्ग – प्रदान करने की अपेक्षा की जाती थी और इसने इसी उद्देश्य को पूरा किया।

जिस समय मार्क्स ने विद्यालय पास किया, उस समय उनकी कक्षा मे ३२ शिष्य थे। उनमे से अधिकाश विद्यालय आयु मे अधिक उम्र – १६ से २७ साल तक – के थे।

ये अधिकायु शिष्य काहिल थे और लगभग हर कक्षा मे दो-दो साल रहे थे। उनमे से १३ लोग, जो जैसे-तैसे अतिम कक्षा तक पहुचने मे सफल हुए थे, विद्यालय पास करने की परीक्षा मे असफल रहे।

टुटपुजिया बुर्जुआ और किसान परिवारो से आने वाले मार्क्स के अनेक सहपाठी अध धार्मिकता के पूरे प्रभाव मे थे पादरी का पद उनका सबसे बडा सपना होता था। कक्षा मे २५ कैथोलिक शिष्यो द्वारा विद्यालय पास करने की परीक्षा में लिखे गये निबधो से पता चलता है कि उनमे से आधे से अधिक अपने को धर्मशास्त्र की सेवा मे लगाने को इच्छुक थे।

उनका सपना पूरा भी हुआ। १८३५ मे त्रियेर विद्यालय पास करके जाने वाले शिष्यो ने प्रशा को १३ कैथोलिक पादरी, सात बैरिस्टर और उच्च अधिकारी तथा दो डाक्टर प्रदान किये। तब यह कौन सोच सकता था कि विद्यालय पास करके जाने वाले शिष्यो का वही ग्रुप दुनिया को कार्ल मार्क्स देगा!

कम से कम उनके अध्यापक तो यह नही ही सोचते थे' वे कार्ल को मेधावी शिष्य बिल्कुल नही मानते थे। सभी विषयो मे उनके प्राप्ताक मध्यम दर्जे के थे और उनके अध्यापको ने ऐतिहासिक भौतिकवाद के भावी निर्माता को इतिहास की परीक्षा मे उनके ज्ञान के लिए सबसे कम अक दिये।

यह तनिक भी आश्चर्यजनक नही था। जिस कसौटी से अध्यापक मार्क्स को परखते थे, वह उनके लिए नही

बनायी गयी थी। मार्क्स के विचारो की मौलिकता ने उन्हे भयभीत कर दिया था। वे सफलता की जड तक पहुचने, हरेक विषय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने, अपने विचारो को घिसी-पिटी नही, बल्कि सजीव अभिव्यक्ति देने के उनके प्रयासो को डाट-फटकार लगाते थे। उन्होंने इसमे "क्लिष्ट-कल्पित अभिव्यक्तियों की अतिरजित प्रवृत्ति", "अनावश्यक अतिपरिपूर्णता" और "शब्दाडवर" देखे। वे खास तौर से उनकी लिखावट से बहुत चिढते थे। "कैसी गिच-पिच लिखावट है!", लैटिन अध्यापक ने शिकायत करते हुए कहा और दूसरे अध्यापको ने उससे सहमति प्रकट की।

स्कूली दिनो से मार्क्स के मन मे इन "नौजवानो के परामर्शदाताओ" के पाडित्य-प्रदर्शन के प्रति जो घृणा बैठी, वह बाद के वर्षो मे भी बनी रही। उन्होंने १८६२ मे एगेल्स को लिखे एक पत्र मे इनमे से एक पाडित्यदभी के बारे मे लिखा। देखने मे तो यह परामर्शदाता एक आदरणीय व्यक्ति लगता है, जिसे अपनी विद्वत्ता पर नाज है, पर वह अपनी तोतारटत अध्ययन और अध्यापन की विधि से कभी आगे नही जाता। उसकी विद्वत्ता तैयार उत्तरो के ढेर के अलावा कुछ नही है। वह सपूर्ण गणित साहित्य जानता है, लेकिन गणित तनिक भी नहीं समझता। यदि यह पाडित्यदभी ईमानदार होता, तो अपने शिष्यों के लिए उपयोगी हो सकता था। यदि वह मिथ्या गोलमोल बातो का सहारा न लेता और उन्हे साफ-साफ बता देता कि यहा एक अतर्विरोध है, कि कुछ लोग ऐसा कहते

हैं और दूसरे लोग वैसा, मेरा इस प्रश्न पर कोई व्यक्तिगत विचार नही है, इस पर गौर करो और देखो कि क्या स्वय तुम इसकी तह मे पहुच सकते हो। "इस ढंग से, एक ओर, शिष्यो को कुछ सामग्री मिलती और दूसरी ओर, वे स्वय काम करने के लिए प्रोत्साहित भी होते।" लेकिन मार्क्स तुरत यह ध्यान दिलाते है कि वह एक ऐसी माग कर रहे हैं, जो पाडित्यदभी के स्वभाव से लेशमात्र मेल नही खाती।

यह कहना मुश्किल है कि मार्क्स के विद्यालय के अध्यापक इस मिसाल से कितना मिलते-जुलते थे। सभवत , व्यक्तिगत स्तर पर वे पाडित्यदभी नहीं थे। तो भी, यह व्यक्ति की विशिष्ट मानसिक सरचना का नही, बल्कि उस प्रणाली का विषय था, जिसने अनिवार्यत पाडित्य-प्रदर्शन और विद्यालय शिक्षा के यत्रणामय उबाऊपन को जन्म दिया।

कार्ल मार्क्स के आत्मिक जगत् का विकास इस विद्यालय शिक्षा प्रणाली के कारण नही, बल्कि वह तो इसकी सारी कमियो के बावजूद स्वतत्र और बहुत सघन बौद्धिक कार्य मे, मित्रो की एक छोटी मडली के सत्सग मे, जो अच्छे काव्य और अच्छे मजाक का आनद लेते थे, वेस्टफालेन परिवार के सत्संग मे और बेशक अपने पिता के साथ विकसित हुआ।

त्रियेर मे अपीली उच्च न्यायालय के बैरिस्टर के रूप मे हेनरिख मार्क्स ने अपने पेशे के दायित्वो को पूरा करने के दौरान राजनीतिक मुकदमो की सुनवायी में भाग

लिया था। उन्होंने सामाजिक अन्याय के भयकर तथ्यो को निकट से देखा था और स्पष्टतया उनके बारे मे अपने पुत्र को बताया था।

ये तथ्य क्या थे, इसका अदाजा कार्ल मार्क्स द्वारा लिखित उस लेख से लग जाता है, जिसे उन्होंने १८४३ मे *Rheinische Zeitung* ('राइनी-समाचारपत्र') में प्रकाशित किया। 'मोज़ेल के सवाददाता की सफाई' शीर्षक इस लेख मे वह यह सिद्ध करने के लिए कि मोज़ेल प्रदेश के लोग अपना विचार साफ-साफ व्यक्त करने में समर्थ नही थे, चौथे दशक के अत मे यानी अपनी युवावस्था मे हुए कुछ अदालती मुकदमो का उल्लेख करते हैं।

"अपने नेक स्वभाव के कारण लोकप्रिय एक नागरिक ने एक जिला अध्यक्ष की, जिसने एक दिन पहले शाम को आनदपूर्ण मडली मे राजा का जन्म-दिवस मनाते हुए खूब डट कर शराब पी थी, नौकरानी से मजाकपूर्ण लहजे मे कहा, 'तुम्हारे मालिक को पिछली रात को कुछ सुरूर आ गया था।' इस बेगुनाह मजाक के लिए उसे त्रियेर मे पुलिस अदालत के समक्ष लाया गया, लेकिन जैसा कि उम्मीद की जा सकती थी, उसे छोड दिया गया।"

सभवत: यह अदालती मुकदमा मार्क्स की स्मृति मे इस वजह से ताजा बना रहा कि उनके पिता ने इसकी सुनवायी मे एक वकील के रूप मे हिस्सा लिया था, जिनकी निष्कलक ईमानदारी और कानूनी प्रतिभा ने उस विपद्ग्रस्त व्यक्ति को छुडाने मे सहायता की।

जब त्रियेर जिले के कुछ किसानों ने प्रांतीय सभा के अपने प्रतिनिधि के जरिये युवराज को एक याचिका भेजने का निर्णय किया तो उस प्रतिनिधि के विरुद्ध अदालती कार्रवाई शुरू की गयी। "कई साल पहले" एक राइनी समाचारपत्र में प्रकाशित "राजस्व-प्रबंध के प्रोफ़ेसर श्री काउफ़मान के 'मोज़ेल प्रदेश में अंगूर उत्पादकों की बुरी स्थिति पर' शीर्षक लेख को सरकारी आदेश से प्रतिबंधित कर दिया गया"।*

ये तथ्य युवा मार्क्स के इर्द-गिर्द राजनीतिक वातावरण को सुस्पष्ट करते हैं।

उन्नीसवीं सदी के चौथे दशक में त्रियेर में बुद्धिजीवी हल्कों में प्रशियाई सरकार के ख़िलाफ़ एक उदारतावादी विरोध शुरू हुआ, जिसमें कार्ल मार्क्स के पिता ने सक्रिय भाग लिया। १८३४ के प्रारंभ में उदारतावादियों की सभाएं और प्रदर्शन 'मार्सेइयेज' के गीत और भाषणों के साथ हुए, जिनमें पुलिस के तेज़ कानों को फ़्रांसीसी क्रांति की प्रतिध्वनियां सुनायी दीं। हेनरिख़ मार्क्स ने "राजद्रोहपूर्ण" गीत गाये और भाषण दिये, जो वस्तुतः नरमवादी स्वरूप के थे। लेकिन यह उनके ख़िलाफ़ कानूनी कार्रवाई शुरू करने के लिए काफ़ी था।

कार्ल मार्क्स अपने पिता को बहुत चाहते थे। उनकी मधुर स्मृतियां उनके पुत्र के साथ प्रौढ़ावस्था में भी बनी

---

* का० मार्क्स, 'मोज़ेल के संवाददाता की सफ़ाई', १८४३।

रही। वह हमेशा अपने साथ अपने पिता का एक फोटो रखते थे और इसे अपने जीवन के अंतिम समय तक अपने पास रखा। लेकिन अपने सभी धार्मिक और राजनीतिक उदारतावाद के बावजूद हेनरिख मार्क्स एक प्रशियाई देशभक्त और पुण्य ईसाई बने रहे। शिलर के एक प्रशसक के रूप मे वह स्वय शिलर के एक नायक, उस नेक और भावुक मूर से मिलते-जुलते थे, जिसकी संपूर्ण खुशी अपने परिवार और बच्चो की सुख-सलामती में है। उन्होंने अपने प्रिय पुत्र मे कुशाग्र प्रतिभा को उसकी नौउम्री में ही पहचान लिया था, लेकिन उन्होंने आशा की कि कार्ल उनका अनुकरण करेगा और अपने लिए एक शालीन किंतु "उदात्त" पेशा चुनेगा, जो उसे सम्मानित नागरिको के बीच एक "योग्य स्थान" प्राप्त करने और अपने परिवार का एक आदर्श मुखिया बनने मे समर्थ बनायेगा।

इस सभावना के बारे मे युवा मार्क्स अपने पिता से बहुत कम उत्साही थे। अपने विद्यालय के दिनो में ही वह कूपमडूक अस्तित्व के सुखद आदर्श के प्रति तीव्र घृणा महसूस करने लगे थे, चाहे यह अस्तित्व कितना ही परिष्कृत क्यो न हो।

हम इसकी पहली पुष्टि १७-वर्षीय मार्क्स द्वारा विद्यालय पास करने की परीक्षा मे लिखे गये 'पेशे के चयन पर एक नौजवान के विचार' शीर्षक निबंध मे पाते है।

यह दिलचस्प है कि अपने अधिकाश सहपाठियो के विपरीत मार्क्स ने इस निबध को "मैं क्या बनना चाहूगा"

के पूर्णतया व्यक्तिगत विषय पर विचार-विमर्श के लिए एक अवसर के रूप मे नही, बल्कि पेशे के चुनाव से सबद्ध वस्तुगत और आत्मगत परिस्थितियो के एक व्यापक सामाजिक विचार-विमर्श के लिए एक अवसर के रूप मे लिया। यहा युवा मार्क्स के मस्तिष्क में वे विचार "सौदामिनी की तरह कौध गये" (मेहरिंग), जिन्हे उन्होने प्रौढावस्था मे पूर्णतया और सुस्पष्टतया विकसित किया।

उन्होने लिखा, "हम हमेशा वह पेशा नही चुन सकते, जिसे हम स्वीकार्य मानते है, समाज मे हमारे मबध जब तक हम उन्हे निर्धारित करने की स्थिति मे पहुचते है, उसके पहले ही कुछ-कुछ स्थापित होने लगते है।"

जबकि उनके सहपाठी व्यापारी के पेशे पर फौजी पेशे के लाभो अथवा धर्मशास्त्री और पादरी के पद से प्राप्त होने वाली सुख-सुविधाओ के बारे मे आडंबरपूर्वक विचार-विमर्श कर रहे थे, मार्क्स ने पेशों की झूठी चमक-दमक के बारे मे लिखा, जो अहम्मन्यता प्रेरित करती है तथा महत्वाकाक्षा के शैतान को भाती है, उन "भ्रांतियों" के बारे मे लिखा, जो कल्पना मे भावी पेशे को अतिरजित करके सजाती है। उनके विचार मे, हमारी योग्यताओ के बारे मे भ्रातियो का यही कारण है, "एक ऐसा दोप, जो स्वय हमसे ही अपना बदला लेता है और भले ही इसे बाह्य दुनिया की भर्त्सना का सामना न करना पडे, यह हमारे मन को उस क्लेश से कही अधिक भीषण क्लेश पहुंचाता है, जो इस भर्त्सना से पहुंचता।" यह

एक ऐसा आत्मतिरस्कार उत्पन्न करता है, जो "हमारे दिल को हमेशा सालता रहता है और इसके जीवनदायी रक्त को चूस कर मानव-द्वेष और निराशा के साथ मिला देता है"।

यदि चुनाव झूठे विचारो पर आधारित हो, तो पेशे के चुनाव मे "आत्म-प्रवचना" का शिकार होना आसान है। एक ऐसे नौजवान के लिए, जिसके पास अभी कोई सुनिश्चित सिद्धात, कोई दृढ विश्वास नही हैं, सबसे खतरनाक वे पेशे है, "जो इतना स्वय जीवन से सलग्न नही है, जितना कि अमूर्त सत्यो से सबद्ध है"।

यह दिलचस्प आत्मस्वीकृति उस अवधि मे मार्क्स के आत्मिक जगत् पर रोशनी डालती है। यह संभवतः रूढिवादी शिक्षा-विधि के प्रति उनके असंतोष और "अमूर्त सत्यो" को "स्वय जीवन से संलग्नता" से समन्वित करने की उनकी बढती इच्छा का प्रमाण है।

मार्क्स अपनी निम्नलिखित प्रस्थापना से व्यक्तिगत समृद्धि के कूपमडूक आदर्श को चुनौती देते है: "यदि वह" (एक व्यक्ति) "स्वयं अपने हितार्थ काम करता है, तो शायद वह एक सुप्रसिद्ध विद्वान, एक बडा मनीषी, एक श्रेष्ठ कवि बन जाये, लेकिन एक पूर्ण, सचमुच महान व्यक्ति तो कभी नही बन सकता।"

जी हा, बेशक, एक व्यक्ति की आत्मपूर्णता एक साध्य है, जिसके सबध मे प्रत्येक पेशा एक साधन है। लेकिन मानव अपनी आत्मपूर्णता "केवल लोगो की पूर्णता और भलाई के लिए काम करके ही प्राप्त कर सकता है।"

मानवजाति का कल्याण (और अत. हमारी पूर्णता भी) वह "मुख्य मार्गदर्शक" है, जिससे हमे पेशे के चुनाव मे निर्देशित होना चाहिए।

अपने विचारो के समर्थन मे मार्क्स उन महान लोगों के ऐतिहासिक उदाहरणो का उल्लेख करते है, जिन्होंने सार्विक भलाई के लिए काम करते हुए अपने को उदात्त बनाया। "अनुभव बताता है कि सबसे सुखी व्यक्ति वह है, जिसने अधिक से अधिक सख्या में लोगो को सुखी बनाया है।"

अपने स्वतत्र मार्ग के प्रारभ मे मार्क्स वह प्रस्थापना सूत्रबद्ध करते है, जो उनके सपूर्ण जीवन का आदर्श बनने वाली थी. "मानवजाति के लिए काम करो।" वह यह मानते है कि यह मार्ग फूलो से नही, काटों से भरा है, लेकिन वह उन काटों से परेशान नही है। वह इस चुनाव की "महान जिम्मेदारी" के पूर्ण महत्व से अवगत है।

लेकिन चुनाव किया जा चुका है। "यदि हमने जीवन मे एक ऐसी स्थिति का चुनाव किया है, जिसमे हम मानवजाति के लिए अधिक से अधिक काम कर सकते है, तो कोई भी दायित्व हमे झुका नही सकते, क्योंकि वे समष्टि के लाभार्थ त्याग हैं।" यहा भी मार्क्स पुन कूपमंडूक जीवन के "तुच्छ, सीमित, स्वार्थपरक आनद" की तुलना उस जीवन से करते है, जिसकी खुशी "करोडो लोगो की खुशी होगी"।

निस्सदेह, यह निबंध तब लिखा गया था, जब मार्क्स

अभी एक स्कूली छात्र ही थे। इसमे हम उनके तब तक के सपूर्ण आत्मिक विकास का निचोड पाते हैं, काट और फ्रासीसी प्रबोधन का प्रभाव महसूस करते हैं, कुछ भावुक और रोमानी टिप्पणियां तथा "दैवी मार्गदर्शन", "दैवी पुकार" के उद्धरण भी मिलते है, लेकिन साथ ही, सपूर्ण निबध मे लेखक की अपनी छाप है, इसकी शैली और सारतत्व उस मौलिक शक्ति और आत्मा की उद्देश्यपूर्णता से ओत-प्रोत है, जो मार्क्स के चरित्र का शुभ लक्षण थे।

एक नौजवान की इस रचना मे जीवन का सपूर्ण कार्यक्रम है, हालाकि यह सामान्य रूप मे अभिव्यक्त हुआ है। मार्क्स ने अपनी भवितव्यता की भविष्यवाणी अपने हृदय की "जन्मपत्री" के अनुसार की थी।

पेशे के चुनाव के बारे में इस निबध से यह पता नही चलता कि मार्क्स का राजनीतिक रुझान अभी स्पष्ट बना था। लेकिन यह सभी प्रतिक्रियावादी चीजो के प्रति उनकी घृणा को प्रकट कर देता है। यह घृणा, जैसा कि हम पहले देख चुके है, उन्होने केवल पुस्तको से ही नही, बल्कि अपने ईर्दगिर्द दुनिया से भी प्राप्त की।

मिसाल के लिए, हमे मालूम है कि १८३३ में त्रियेर विद्यालय मे प्रतिबधित साहित्य, राजनीतिक कविताए पायी गयी और एक शिष्य को गिरफ्तार भी किया गया। यह शिष्यो के मन मे उफान पैदा किये और जीवन के प्रति मार्क्स के विचार को प्रभावित किये बिना नही रह सकता था। जब मार्क्स ने विद्यालय पास करने का

प्रमाण-पत्र प्राप्त किया और वह बोन विश्वविद्यालय में जाने के लिए अपना जन्म-नगर छोड़ने वाले थे, तो उन्होंने विद्यालय के सह-प्रधानाध्यापक विटुस ल्योर्स के पास, जिसके जिम्मे शिष्यों को पुलिस निगरानी में रखने का विशेष कार्य था, विदा लेने जाने से इन्कार कर दिया। उससे मिलने जाने से इन्कार करके मार्क्स ने अपना चरित्र-बल ही प्रदर्शित किया और यह अपने पिता के साथ टकराव का कारण भी बन सकता था।

अपने पुत्र को लिखे पहले पत्रों में से एक में हेनरिख़ मार्क्स ने इस व्यवहार के लिए उन्हें फटकारा भी। इस पत्र से हमें यह भी मालूम होता है कि कार्ल के साथ एक दूसरे शिष्य हेनरिख़ क्लेमेस ने भी ल्योर्स से मिलने जाने से इन्कार किया था। अपने पुत्र के इस "दुर्व्यवहार" पर, जिसका ल्योर्स ने बुरा माना, पर्दा डालने के लिए मार्क्स के पिता को "सफेद झूठ" का सहारा लेना और उससे कहना पड़ा कि "हम वहां उसकी अनुपस्थिति में गये थे"।

लेकिन जीवन और ज्ञान के साथ मार्क्स का वास्तविक टकराव अभी आगे होना था।

३

"परिहास का प्रचंड रोष" और "काव्य-प्रेरणा की लालसा"

—आपका प्रिय आदर्श-वाक्य?
— *De omnibus dubitandum.*
(हर चीज को सदेह का विषय बनाओ।)

कार्ल मार्क्स की
'आत्मस्वीकृतियां'

१८३५ की पतझड मे मार्क्स कानून पढने के लिए बोन विश्वविद्यालय गये। लेकिन मार्क्स के लिए दुनिया मात्र विधिशास्त्र तक ही सीमित नही थी। तारुण्यपूर्ण जोश के साथ वह स्वतत्र जीवन के भंवर में कूद पडे, आत्मिक कार्यकलापो के कभी एक क्षेत्र में तो कभी दूसरे क्षेत्र मे अपनी शक्ति आजमायी और इसके दौरान विद्यार्थियो की मौजी मडलियो, उनके मनमौजी आमोद-प्रमोदो, दावतो, द्वद्वयुद्धो और सभी प्रकार के दुस्साहसो को भी नही भुलाया। एक द्वंद्वयुद्ध मे कार्ल घायल हो गये और एक बार तो उन्हे "रात्रि मे शाति भग करने के लिए" गिरफ्तार भी किया गया। उनके मित्र उन्हे उनकी असीम विनोदशीलता के लिए बहुत प्यार करते थे, लेकिन वे उनके चुभते कटाक्षो और मर्मांतक विदग्धोक्तियो से डरते थे, जिनके लिए मार्क्स स्कूल मे भी मशहूर थे।

स्पष्टतया, सदय, वयोवृद्ध हेनरिख मार्क्स के पास अपने पुत्र से यह पूछने का उचित कारण था कि वह "दर्शन के साथ द्वंद्वयुद्धों का तालमेल बैठाने" का अपना काम कैसे निकालता है। पिता के पत्र अपने पुत्र के शारीरिक और आत्मिक कुशल-क्षेम के प्रति सुचिता से ओत-प्रोत हैं। वह उसे अपनी सेहत का ख्याल रखने के लिए प्रेरित करते है "क्योंकि एक रुग्ण विद्वान पृथ्वी पर सबसे अभागा प्राणी है"। वह अपने पुत्र को शिक्षाप्रद प्रवचनो का उपदेश देते हैं और किसी गुस्तेर का उदाहरण देते हैं, जिसे अपने "नौजवानी के बुरे कर्मों" के लिए "भयानक सजा" मिली।

पिता अपने पुत्र के विद्यार्थी-जीवन के केवल नैतिक पक्ष से ही नही, बल्कि बौद्धिक पक्ष से भी चिंतित थे। बोन विश्वविद्यालय से पिता को लिखे गये अपने पहले पत्रो में से एक मे १७-वर्षीय कार्ल ने स्पष्टतया धर्म के संबध मे अपने नवजात संदेहों के बारे मे लिखा। उत्तर में हेनरिख मार्क्स ने लिखा: "तुम सच्चरित्र बने रहोगे, इसमे मुझे तनिक भी सदेह नही है। लेकिन ईश्वर मे पवित्र विश्वास से सदाचार को बडा बल मिलता है। तुम जानते हो कि मैं एक कट्टर बिल्कुल नही हूं। लेकिन यह विश्वास देर-सबेर मनुष्य की एक वास्तविक आवश्यकता बन जाता है और जीवन मे ऐसे क्षण आते है, जब अनीश्वरवादी तक ईश्वर की पूजा करने के लिए अनजाने खिंच आता है।"

अपने तर्क को ज्यादा वजनी बनाने के लिए हेनरिख

मार्क्स न्यूटन, लॉक और लीबनिज का उदाहरण देते है। लेकिन केवल चेतावनियो पर ही निर्भर न रहते हुए, हेनरिख मार्क्स इस बात पर जोर देते है कि कार्ल बोन के अत्यधिक उन्मुक्त वातावरण को छोड कर प्रशियाई राज्य की राजधानी बर्लिन के सयत, कडे वातावरण को ग्रहण करे। इसके लिए और भी अधिक वजनी तर्क थे बर्लिन विश्वविद्यालय तत्कालीन जर्मनी के सैद्धातिक चितन का गढ था। लुडविग फायरबाख के शब्दो में, "इस कर्मशाला के मुकाबले मे दूसरे विश्वविद्यालय मात्र मधुशालाए हैं"*।

एक सुनिश्चित पेशा चुनने का प्रश्न कार्ल के समक्ष बार-बार प्रस्तुत हुआ, त्रियेर की एक सबसे सुदर लडकी, "नृत्य की रानी", जेनी फोन वेस्टफालेन के साथ मार्क्स की सगाई के बाद, जो उनकी "पहली और सबसे दिव्य विजय थी" (मेहरिंग), यह अत्यावश्यक बन गया।

अपने पत्रो मे कार्ल के पिता अपने पुत्र को इस बात की याद दिलाने से नही थकते कि जेनी ने उसके लिए बडा त्याग किया है। अब जबकि कार्ल ने बिल्कुल कल्पनातीत ढग से जेनी का दिल जीत लिया है, जिसने उसके लिए अधिक सौभाग्यशाली वरो को ठुकरा दिया, उसे मालूम होना चाहिए कि इस असाधारण लडकी का भाग्य उसके हाथो मे है और इसलिए उसे "दुनिया का आदर"

---

* ओ० कोर्नू, 'कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एगेल्स। जीवन और कार्य'।

जीतना चाहिए तथा अपने भावी परिवार की भौतिक सुख-समृद्धि की चिंता करनी चाहिए।

स्वय कार्ल यह सब कुछ समझते थे। बर्लिन विश्वविद्यालय मे, जहा वह १८३६ मे गये, उन्होंने अपने को अध्ययन मे उसी अदम्य, एकाग्रचित्त जोश से लगा दिया, जिसमे उन्होंने अपने को बोन मे जीवन की खुशियो मे लगाया था। उनकी आत्मिक दिलचस्पिया अत्यत विविध थी। वह प्राचीन यूनान और रोम, नाट्य, सौदर्यशास्त्र, काव्य, दर्शन और कानून मे गहरी रुचि लेते थे। वह अब भी पेशे की अपनी कठिन खोज मे लगे हुए थे। एक समय उन्हे ऐसा प्रतीत हुआ कि यह पेशा लेखन ही है। उन्होंने गाथाकाव्यो, सॉनेटो, कविताओ की पूरी की पूरी नोटबुको की रचना की और एक ऐतिहासिक नाटक तथा एक हास्य-उपन्यास भी लिखा। पिता ने उनके साथ कवि और लेखक, साहित्यिक आलोचक और नाटककार के पेशे के लाभो और नुकसानो के बारे मे गभीरतापूर्वक विचार-विमर्श किया, मुमकिन विषयो का विश्लेषण किया और उनकी प्रतिभा के बारे मे बातचीत की।

अपने पुत्र के विपरीत, जो अपने पिता के विचार मे "अमूर्त आदर्शीकरण" की ओर प्रवृत्त था, हेनरिख मार्क्स व्यावहारिक प्रश्नो के बारे मे चिंतित थे। उन्होंने कार्ल को "देशभक्तिपूर्ण" शैली मे एक नाटक लिखने, प्रशियाई राजतंत्र की "मेधा" को सप्रेषित करने, एक ऐतिहासिक विषय को जर्मन भावना मे विवेचित करने की सलाह दी, क्योंकि ऐसी "सबोध-गीति" मे "प्रसिद्धि

की आधारशिला रखने" और "नाम को सस्थापित करने" की शक्ति होती है। वह एक साहित्यिक आलोचक बनने की अपने पुत्र की योजना को स्वीकृति प्रदान करने के पक्ष मे नही थे, क्योकि महान लेसिग को भी अपने जीवन-काल मे बहुत कम सफलता मिली और वह एक निर्धन लाइब्रेरियन की मौत मरे।

लेकिन हेनरिख़ मार्क्स को ही इस बात का श्रेय है कि, जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, वह कार्ल की असाधारण योग्यताओ को पहचानने वाले पहले व्यक्ति थे, चाहे अस्पष्ट रूप मे ही क्यो न हो, उनके महान भविष्य का अनुमान करने वाले पहले व्यक्ति थे। १८३६ में उन्होने अपने पुत्र को लिखा "ईश्वर ने चाहा तो तुम्हे अभी स्वय अपने और अपने परिवार के लाभार्थ और यदि मेरा अनुमान गलत नही है, तो मानवजाति की भलाई के लिए एक लबा जीवन जीना है।"

लेकिन कभी-कभी हेनरिख़ मार्क्स के मन मे अपने पुत्र के भाग्य के प्रति खटका होता था। उनकी प्रतिभा, अपने समकालीनो के साथ उनका असादृश्य, उनकी आत्मा की लबरेज़ शक्ति और सत्य की दृढसंकल्प खोज – इन सब चीजो ने पिता को अपने पुत्र के उस "साघातिक शैतान" के बारे मे आभास दे दिया, जो उसे सासारिक सफलता के साफ और सीधे मार्ग से भटका देगा और उसे शात जीवन के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए भडकायेगा।

"क्या यह शैतान स्वर्गिक है या फाउस्टीय?" – इसी रूप मे हेनरिख़ मार्क्स ने इस प्रश्न को व्यक्त किया,

जो उनके मन को मथ रहा था। गेटे के फाउस्ट का भाग्य स्नेहशील पिता को एक अनुकरणीय उदाहरण नही प्रतीत हुआ। फाउस्ट की प्रतिमा, सत्य और जीवन के अर्थ के शाश्वत रूप से इस असतृप्त अन्वेषक की प्रतिभा, जो शैतान से मंत्रमुग्ध है, जो अतिदीप्तिमान क्षण की भ्रामक मृग-मरीचिका के चक्कर में पल भर को भी दम नही लेता, जो सच्ची खुशी की खोज में इसके लघु अश से संतुष्ट नही होता और अपने निकट के लोगो को दुख-विपाद ही लाता है, जो केवल उन्ही लोगो को जीवन और स्वतत्रता के योग्य मानता है, जो उनके लिए अपने जीवन और स्वतंत्रता का उत्सर्ग करने को तैयार हैं—यह प्रतिमा पिता के लिए आकर्षक नही हो सकती थी, वह उससे एक भूत की तरह भयभीत हो रहे थे, जो कार्ल को खतरे मे डाल रहा था।

"कभी-कभी मेरा दिल तुम्हारे और तुम्हारे भविष्य के बारे मे चिंता से भर जाता है। पर कभी-कभी मैं अपने को उन विचारो से मुक्त नही कर पाता, जो मेरे मन में बुरी आशकाएं और भय उत्पन्न करते है, और मैं अपनी चिता के वज्र-प्रहार से मर्माहत हो उठता हू: क्या तुम्हारा चित्त तुम्हारे मस्तिष्क, तुम्हारी प्रतिभाओ के अनुरूप है? क्या इसमें सासारिक किंतु कोमल भावनाओ के लिए कोई जगह है, जो इस शोक-भरी घाटी मे एक सवेदनशील व्यक्ति के लिए इतनी सात्वनाकारी होती हैं?.. क्या तुम कभी—और यह मेरे दिल का कम कष्टकर सदेह नही है—क्या तुम कभी सच्ची, मानवीय, घरेलू,

खुशी के योग्य बनोगे? क्या तुम—और इस संदेह ने मुझे हाल मे, जबसे मै किसी व्यक्ति को अपने बच्चे की तरह प्यार करने लगा हूं, कोई कम परेशान नहीं किया है—क्या तुम कभी अपने सगे लोगों को खुशी देने के योग्य बनोगे?" बेशक, यह "कोई व्यक्ति" जेनी फोन वेस्टफालेन ही है, जिसकी खुशी के बारे मे हेनरिख मार्क्स इतने मर्मस्पर्शी ढग मे चितित है।

लेकिन स्वय खुशी की व्याख्या कैसे की जाये? सभवत कार्ल मार्क्स "अपने सगे लोगों" को वह निर्मल खुशी नही लाये, जिसकी उनके पिता ने कल्पना की थी। उनके ही शब्दो मे, उन्होंने अपने जीवन की कृति 'पूजी' के लिए अपनी सेहत, खुशी और परिवार को त्याग दिया। जेनी को अपने पति के साथ उनके व्यग्र जीवन के सभी भारो—घुमक्कडपन, जेल, प्रवास, दरिद्रता और निर्मम अत्याचार—को सहना पडा। उनके तीन बच्चे मृत्यु के शिकार हुए। लेकिन वह मार्क्स की निकटतम सहयोगी और परामर्शदाता, उनकी फरिश्ता थी। वह तब तक जीवित रही, जब तक मार्क्स का नाम रूस से अमरीका तक नयी, सघर्षरत दुनिया का प्रतीक नही बन गया और इसने सभी कमियों को पूरा कर दिया।

हेनरिख मार्क्स का अनुमान गलत नही निकला। उनके पुत्र का "शैतान" स्वर्गिक नही बल्कि फाउस्टीय भूत था। इसने उन्हे दम नही लेने दिया, इसने उन्हें अपने आत्मिक विकास, अपनी सिद्धि की खोज, भ्रामक और मोहक "पैशाचिक तर्क", पूर्ण ज्ञान की मृग-मरीचिका

और यथार्थ की पूर्ण समझ के शाश्वत अन्वेषण मे निरतर आगे बढते रहने के लिए प्रेरित किया। और इसके लिए इसने स्वय मार्क्स और "उनके सगे लोगो" से त्याग की माग की। मार्क्स ने अपने को पूरी तरह सामाजिक सत्य के तर्क की सेवा मे अर्पित कर दिया। वह खुशी के उस विचार ("समष्टि के लाभार्थ त्याग", "करोडो लोगो की खुशी") के प्रति ईमानदार बने रहे, जिसे उन्होने अपने स्कूल के निबध मे व्यक्त किया था।

फाउस्ट के विपरीत, "मेफिस्टोफीलीस" मार्क्स के अन्दर रहता था—वह हमेशा ही अपनी कृतियो के सबसे निर्मम आलोचक थे। उन्होंने अपनी प्रिय सूक्ति "हर चीज को सदेह का विषय बनाओ" को सबसे पहले अपनी ही रचनाओ पर लागू किया।

खास तौर से, उनके आरभिक छात्र जीवन के काव्यात्मक प्रयोगो को कठोर निर्णय का सामना करना पडा। अपने पिता को लिखे एक पत्र मे १६-वर्षीय मार्क्स उनका मूल्याकन निम्नलिखित रूप मे देते है: "हमारे आधुनिक जीवन पर आक्रमण, भावना की बेतरतीब और अपरिपक्व अभिव्यक्तिया, कुछ भी स्वाभाविक नही, सब कुछ मनगढत, क्या है और क्या होना चाहिए के बीच पूर्ण विरोध, काव्यात्मक विचारो की जगह आडबरपूर्ण विचार, लेकिन सभवत भावना की कुछ गर्मजोशी और काव्य-प्रेरणा की लालसा भी।" स्वभावतया, मार्क्स के आलोचनात्मक बोध ने उन्हे यहा धोखा नही दिया।

और अतत. उस समय भी, जब उन्होंने कुछ कविताओ

मे "एक सुदूर परी महल की तरह" "सच्चे काव्य के उज्ज्वल राज्य को देखा, इस सफलता ने मार्क्स को अपनी काव्यात्मक योग्यता के गंभीर मूल्याकन के लिए मात्र एक अवसर प्रदान किया "और मेरी संपूर्ण रचनाए टुकडे-टुकडे होकर भस्म हो गयी"। इसे शब्दश: समझना चाहिए मार्क्स ने अपनी कविताओ और उपन्यासो के स्केचो को अग्नि मे होम कर दिया।

"कलादेवियो के नृत्यो और देवताओ के सगीत" से सन्यास लेकर मार्क्स विज्ञान की ओर और भी पूरी शक्ति से मुडे। पहले भी काव्य उनके लिए केवल एक गौण विषय ही था। उन्होंने गाथाकाव्य या नाटक को उठाकर एक किनारे रख दिया और विधिशास्त्र और दर्शन के अध्ययन मे तन-मन से जुट गये। उन्होंने लेसिंग की कृति 'लाओकून', विकेलमान के 'कलाओ का इतिहास', ओविडियस के 'शोकगीत' और साथ ही, रेईमारुस की 'जानवरो की कलात्मक स्वत प्रवृत्तिया', लुडेन के 'जर्मनो का इतिहास', अरस्तू के 'साहित्यशास्त्र' और बेकन, शेलिंग, काट और हेगेल की कृतियो का अध्ययन किया। उन्होंने विधिशास्त्र पर ढेर सारा विशेष साहित्य पढ डाला। एक ही वर्ष मे उन्होंने वस्तुत. जितना पढ डाला, वह अत्यत विस्मयकारी है।

लेकिन मार्क्स ने सिर्फ पढा ही नही। उन्होंने एक ऐसी आदत बना ली थी, जिसका उन्होंने जीवन भर पालन किया। वह जो कुछ पढते थे, उसमे बडे उद्धरण नकल करके उतार लेते थे और उनके साथ-साथ अपने

विचार भी टांक लिया करते थे। इसने उनके सृजन में अपने चिंतन और अपनी स्मृति को संगठित करने में सहायता की।

मार्क्स का एक दूसरा लक्षण यह है कि ज्ञान के एक नये क्षेत्र का उनका अध्ययन तुरंत उनके द्वारा इस क्षेत्र के एक स्वतंत्र विश्लेषण में विकसित हुआ। उनका साहित्य-अध्ययन एक विद्यार्थी की निष्क्रिय प्रक्रिया नहीं, बल्कि स्वतंत्र, सृजनात्मक चिंतन के लिए एक अवसर, एक प्रेरणा, एक प्रोत्साहन था।

दर्शन और कानून के अपने अध्ययन में वह "कानून के संपूर्ण क्षेत्र से संबद्ध विधि-दर्शन" का अन्वेषण करने का प्रयास करते हैं। मात्र इस विषय की भूमिका के रूप में ही १८-वर्षीय मार्क्स एक "अभाग्यशाली कृति लगभग ३०० पृष्ठों की एक कृति"* लिख डालते हैं।

कला-इतिहास और दर्शन-इतिहास का अध्ययन करते हुए उन्होंने उसी शैक्षिक वर्ष के दौरान लगभग २४ पृष्ठों का एक संवाद लिखा, जिसमें "कला और विज्ञान कुछ हद तक एक में पिरोये हुए थे।" संवाद का शीर्षक 'क्लेआंत या दर्शन का आरंभ-बिंदु और आवश्यक विकास' था। पर, दुख की बात है कि यह संवाद उपलब्ध नहीं है, क्योंकि यही संभवतः उस अवधि की एकमात्र कृति है, जिसने स्वयं मार्क्स से प्रशंसा प्राप्त की। अन्य सभी

---

* कार्ल मार्क्स द्वारा त्रियेर में पिता के नाम लिखित पत्र, १८३७।

चीजो को उन्होने कविताओ की भाति ही उसी विनाशकारी आलोचना का विषय बनाया।

इस शैक्षिक वर्ष (१८३६-३७) में कोई कम निद्रारहित राते, कोई कम कटु आत्मिक लडाइया नही थी। "आत्मा का प्रलाप" सामान्यतया अब तक जो कुछ उन्होंने किया था, उसकी अस्वीकृति मे समाप्त हुआ। मार्क्स दर्शन या विधिशास्त्र के क्षेत्र मे एक या दूसरे विद्वान की विचार-प्रणाली को लेते और इसे इसके तर्कसगत निष्कर्ष तक विकसित करने की कोशिश करते। लेकिन अत मे वह विचाराधीन विद्वान, उसके सिद्धात और अपनी खोजो की निषिद्धता पर ही पहुचते। वह एक देव-मदिर को नये देवताओ से भरने के लिए नष्ट करते। वह एक प्रतिमा को गिरा कर सत्य-स्तभ पर दूसरी प्रतिमाए स्थापित करते। उन्होंने अपनी काव्यात्मक, सौदर्यात्मक और दार्शनिक कृतियो के पूरे के पूरे खड सिर्फ बाद मे जला देने के लिए लिखे। एक ही साल मे उन्होंने इतना कुछ लिख डाला, जितना दूसरे लेखक अपने सपूर्ण जीवन मे जाकर ही लिख पाते हैं। लेकिन जो चीज विज्ञान मे आत्मतुष्ट कूपमडूक के लिए अभिमान का विषय होती, वही चीज युवा मार्क्स को असतोष की घोर व्यथा से ग्रस्त रखती।

मार्क्स अपने स्वप्न-लोको को उनकी सृष्टि करने से पहले ही नष्ट कर देते है और नयी दुनियाओ की खोज मे जुट जाते हैं। जेनी को समर्पित 'खोज' शीर्षक कविता मे उन्होंने स्वय इसके बारे मे यह लिखा :

सारे बंधन तोड़कर जब मैंने अपनी राह ली,
"तू किधर को?" "ढूंढना है मुझको एक दुनिया नयी!"
"क्या कहा, क्या खूबसूरत कम है तेरा जहां,
नीचे मौजों का तरन्नुम, सर पर तारों का समां?"

"योंकि मेरी रह से हो मेरी दुनिया की तामीर
और उसी के सीने में लग जाये होकर अधीर
पहर उसको साथ मेरे हर तरफ से घेर ले
गुंबदे व्योम उसका मेरी सांसों में भरे।"

मैंने अपनी राह ली, फिर से जब आया लौट के,
हाथ में शब्दों से जनित दुनियाएं लिये,
जिनमें जगमग धूप थी और खेलती थी रोशनी,
लेकिन एक बिजली गिरी और अब वे दुनियाएं नहीं।

अपने कार्य में प्राप्त सफलताओं के प्रति निरंतर असंतोष, पूर्णता के लिए सतत खोज प्रौढ़ावस्था में भी उनके लक्षण बने रहे। उनका विचार तब तक ठोस रूप नहीं लेता था, जब तक यह उनके प्राप्त परिणामों से अधिक श्रेष्ठ नहीं बन जाता था, जब तक वह अपनी रचना को अविजित शिखरों से साफ-साफ देख नहीं लेते थे और इसके बाद तुरंत एक नया शिखर शुरू हो जाता था। उनका उद्देश्य शिखरों को अहंकारपूर्वक अपने पैरों पर उतारना नहीं, बल्कि मात्र एक ऐसी उपयुक्त ऊंचाई पर पहुंचना था, जहां से सत्य उन्हें अपने वास्तविक प्रकाश में साफ-साफ दिखाई दे।

माग के साथ इस सघर्ष में विजयी हुए। उन्होंने पूंजीवादी समाज की जो तसवीर खीची, वह एक वास्तविक, श्रेष्ठ कृति सिद्ध हुई, जो सदियों तक अमर रहेगी। उनको अपनी 'पूजी' को एक कलात्मक ग्रन्थरत्न कहने का हर अधिकार था। लेकिन उन्होंने इसकी कीमत अनेक वर्षों के घोर परिश्रम, वल्कि ठीक-ठीक कहे तो अपने जीवन मे चुकायी, क्योंकि उनका सपूर्ण जीवन 'पूंजी' की रचना के लिए एक तैयारी था।

सभी सच्चे रचनाकारों की तरह मार्क्स भी हमेशा अपनी रचनाओं से बहुत वुलद थे। उनका आत्मिक जगत् इतना समृद्ध था कि यह उनकी रचनाओ मे अपने समूचे रूप मे प्रतिविवित नही हुआ, जिससे कि उनकी "सर्वोत्तम कृति" अलिखित रह गयी। यही तो उनके असतोष की निरतर व्यथा का कारण था।

सदेह विचार-मदता और कायरता का एक लक्षण हो सकता है, जो अस्तित्व के मर्मों की पेचीदगी के समक्ष घुटने टेकता है और उन्हे इंजील के उस उपदेशक की तरह सात तालो मे बद बताता है, जिसने अपनी पूरी बुद्धि से "सूर्य के नीचे किये जाने वाले सभी कामो" की खोजबीन की और अत मे निष्कर्ष निकाला कि "वे सब व्यर्थ और मानों वायु को पकडना है।"

लेकिन ठीक वही सदेह तब सैद्धातिक साहसिकता का एक आवश्यक अस्त्र वन जाता है, जव विचार विगत के उन विक्षुब्ध प्रेतो पर निष्पक्ष निर्णय देता है, जिनकी शक्ति मायावी हरगिज नही है।

5*

हास्य-व्यग्य, दुराग्रह व्यग्य और अतत. सदेह-व्यग्य के बारे मे कहा जा सकता है, जो अहवाद की ओर ले जाता है, जब, दिदेरो के शब्दो मे, एक पागल पियानो अपने को दुनिया मे एकमात्र पियानो सोचने लगता है। लेकिन एक रचनात्मक व्यग्य भी होता है, जो मूर्त सृजनात्मक जोश का प्रेरक है, जो नये विचारो के जन्म मे सहायता करता है, इसका मार्ग साफ करता है और इसे आत्मविश्वास से अनुप्राणित करता है।

कहते है कि मानवजाति अपने विगत से मुस्कराते हुए विदा लेती है। यह अपने सैद्धांतिक विगत से भी मुस्कराते हुए ही विदा लेती है। पुनर्जागरण काल मे धर्म की प्रामाणिकता और "अपने कैथोलिक मुडन के साथ अरस्तू" की प्रामाणिकता के प्रति एक व्यग्यात्मक रुख विचार के क्षेत्र मे – नये युग के प्राकृतिक विज्ञान और दर्शन मे – एक क्राति का अग्रदूत था। फ़ासुआ राब्ले की शोख, अश्लील हसी सर फ्रासिस बेकन द्वारा मध्यकालीन धर्म-सिद्धातो की "प्रतिमाओ" को अपने तर्कवितर्कों से अपदस्थ किये जाने और उनका नये विचारो और आदर्शों से खडन किये जाने से पहले ही सुनायी देने लगी थी।

जो चीज सपूर्ण समाज के लिए सही है, वह इस मामले मे व्यक्ति के लिए, विशेष रूप से मार्क्स जैसे एक व्यक्ति के लिए भी सही है। युगपुरुष हमेशा निषेध और व्यग्य का वाहक होता है, इसलिए कि "महान" नामक चीज मे वह जितनी तीक्ष्णता से क्षणभगुरता, दीनता और दयनीयता का अनुभव करता है, उतना कोई भी नही,

कोई भी इन चीजो से "महान" को इतनी अच्छी तरह से साफ नही कर सकता, इसे मूर्तिकार की उत्तम छेनी से मुक्त नही कर सकता।

मार्क्स के व्यग्य के स्रोतो मे गहराई से खोज करने के लिए हमे कला की ओर मुडना चाहिए।

बाल्ज़ाक ने अपने कटु व्यग्यात्मक नायक को अपने सपूर्ण मर्मो, अत प्रेरणाओ और दिवास्वप्नो के साथ कला की प्रतिमूर्ति कहा। यह बहुत अर्थपूर्ण है, क्योकि कला का सभी प्रकार की जडसूत्रवादिता, जीवन के सभी जड विचारो से कोई सबध नही है। यह यथार्थ को एक प्रक्रिया, एक गति, एक कार्रवाई के रूप मे समझती है, अन्यथा यह कला नही रह जायेगी। अपनी स्मारकीय शैली मे भी यह "अश्मीभूत" तथ्यो के खिलाफ़ विरोध करती है और उनमे प्राण डालने का प्रयास करती है।

यथार्थ के सैद्धांतिक आत्मसातकरण के विपरीत, जो विद्वान् से परिभाषाओ, सूत्रो और प्रमेयो की विशुद्धता और पूर्णता की माग करता है और इसके जरिये प्राप्त परिणामों को "शाश्वत", "अडिग", आदि सत्यो मे बदलने की सभावना पैदा करता है, कला (वस्तुत सच्ची कला) मे दुनिया के बारे मे हमारे विचारो के अश्मीकरण के लिए ऐसा कोई आश्रय नही है।

यह सर्वोपरि कला ही है, जो व्यक्ति की उन योग्यताओं को विकसित करती है, जो विचार की निश्चलता के खिलाफ एक विश्वसनीय गारटी है और साथ ही रचनात्मक जोश का "प्रेरक", नये विचारो के जन्म

का अजय स्रोत भी है। यह समग्र रूप मे दुनिया को देखने की योग्यता है, यह अनुपात, सामजस्य और सौंदर्य, कल्पना, फतासी और अतर्ज्ञान का बोध, हास्य और अतिम लेकिन कम महत्वपूर्ण नही, व्यंग्य का बोध है।

कला व्यावसायिक गुण नहीं विकसित करती, यह किसी भी पेशे के लिए आवश्यक सार्विक और वस्तुत मानवीय योग्यता–सृजन की योग्यता–विकसित करती है। इसीलिए बौद्धिक सस्कृति के विकास मे इसकी भूमिका इतनी बडी है, चाहे यह वैज्ञानिक, कलाकार या इजीनियर की बुद्धि क्यो न हो।

अपने आरभिक बचपन से ही मार्क्स कला से ओत-प्रोत वातावरण मे बडे हुए। शिलर ने उनमें निरकुशता, अभागे लोगो के खिलाफ अत्याचार के प्रति घृणा पैदा की, शेक्सपियर ने उन्हे मानवीय भावनाओं और सबधो की जटिल दुनिया दिखायी और वाग्विदग्धता की उनकी नैसर्गिक प्रतिभा को परिमार्जित किया, गेटे ने उन्हे विचार के साथ भावना, जीवन और मृत्यु के अर्थ के बारे मे उदात्त विचारो के साथ फतासी के अद्भुत प्रभाव, ज्ञान के लिए वाग्नेर जैसी धुन और इसकी सर्वशक्तिमत्ता मे विश्वास के साथ रूढ नैतिकता के पाखड पर मेफिस्टो-फीलीस जैसे उपहास को एक लडी मे पिरोने के लिए प्रेरित किया।

लेकिन आइये, अब हम पुराने बर्लिन की एक शात सडक पर स्थित एक विद्यार्थी के कमरे मे लौट चले, जहा तबाकू के धुए के बादलों में, लगभग जल चुकी

मोमबत्ती के मद्धिम प्रकाश में एक काले बालों वाला नौजवान कार्ल हेनरिख़ मार्क्स जिसका नाम तब १८३७ में किसी व्यक्ति के लिए कोई मानी नहीं रखता था, अपने पिता को लिख रहे पत्र की इति कर रहा था।

अपने पिता को लिखे उस पत्र में मार्क्स ने सूचित किया कि इतना कुछ निषिद्ध हो जाने के बाद वह "परिहास के वास्तविक रोष में ग्रस्त" हो गये हैं, उन्हें ऐसा लगा कि उनका संपूर्ण श्रम "निष्फल" हो गया है और उनमें उन "दुर्दांत शैतानों" से जूझने की शक्ति नहीं रह जायेगी, जिन्हें उन्होंने स्वयं जगाया।

लेकिन यह जीवन में एक मोड़ का मात्र अस्थायी संकट था, जब उनका सृजनात्मक कार्य अंशतः यथार्थ और विज्ञान के साथ अपने संघर्षों की पहली अपरिपक्व अवधि का अंत था और अंशतः भावी और अधिक गंभीर तथा मौलिक संघर्षों की एक साहसिक शुरूआत था।

इस शुरूआत में जगह-जगह, चाहे यह बहुत आत्म-विश्वासपूर्ण और साफ़-साफ़ न हो, उन मूल भावों के स्वर सुनायी देते हैं, जो आगे चल कर संपूर्ण सिम्फ़नियों में विकसित होने वाले थे। सभी चीज़ों को निषिद्ध करने वाला और दुनिया तथा स्वयं अपने प्रति निर्मम बौद्धिक श्रम "निष्फल" नहीं था, जैसा कि मार्क्स ने सोचा। इसके निषेध व्यर्थ और निस्सार नहीं थे, उनमें नये सत्यों के बीज निहित थे। उनका विचार परम्परागत, छद्म-वैज्ञानिक प्रकार के पूर्वाग्रहों की जड़ खोद रहा था

और वास्तविक विज्ञान के अकुरो के लिए भूमि तैयार कर रहा था।

यह वस्तु-स्थिति अपने पिता को लिखे गये १० नवम्बर, १८३७ के उसी पत्र से बिल्कुल साफ है।

विधि-दर्शन पर अपने व्यापक कार्य के बारे मे अपने पिता को एक विस्तृत वर्णन मे मार्क्स इसकी अपूर्णता के कारणो की खोज करते हुए लिखते है कि शुरू से ही सत्य को समझने मे एक बाधा "गणितीय जडसूत्रवाद का अवैज्ञानिक रूप" थी। मार्क्स के दिमाग मे स्पिनोज़ा के समय से दर्शन मे विकसित हो रही "ज्यामितीय विधि" थी, एक ऐसी विधि, जिसमे वस्तु का एक प्रदत्त चीज के रूप मे उसी तरह विभिन्न पक्षो से अध्ययन किया जाता है, जिस तरह ज्यामिति मे एक त्रिकोण का विश्लेषण विभिन्न सबधो मे किया जाता है और इस विश्लेषण को आधार-तथ्यो से ठेठ आकारिक निगमन द्वारा प्राप्त प्रमेयो या अवधारणाओ मे सूत्रबद्ध किया जाता है। स्वय त्रिकोण अपरिवर्तनीय बना रहता है तथा "और आगे किसी चीज मे विकसित नही होता"। दूसरे शब्दों मे, "विषयी विचाराधीन वस्तु के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते हुए जहा-तहा तर्कवितर्क करता है, जबकि स्वय वस्तु बहुपक्षीय ढग से विकसित नही हो रही होती है और जीवित किसी चीज की शक्ल लिये बिना बनी रहती है"।

वह विधि, जो "मृत" द्रव्य के बाह्य रूपो के अध्ययन मे उत्तम परिणाम देती है, "जीवित" द्रव्य की अभिव्यक्ति के लिए, खास तौर से सामाजिक प्रक्रियाओ की अभिव्यक्ति

के लिए, "विचारो की जीवित दुनिया" के ठोस विश्लेपण के लिए बिल्कुल अपर्याप्त है। "यहा स्वय वस्तु का अध्ययन इसके क्रमिक विकास मे किया जाना चाहिए और मनमाने विभाजन नही लागू किये जाने चाहिए, स्वय वस्तु के बुद्धिसगत स्वरूप को स्वय मे अतर्विरोधो से परिपूर्ण किसी चीज के रूप मे विकसित होना और स्वय मे ही अपनी एकता पाना चाहिए।"

वस्तु का अध्ययन इसके क्रमिक विकास मे, "स्व-निर्माणशील, बहुपक्षीय ढग से विकसित हो रही और जीवित" किसी चीज के रूप में करना—यह वह विधि-सबंधी अपेक्षा है, जिसने 'पूजी' मे देदीप्यमान अभिव्यक्ति पायी।

बेशक, इस उद्धृत सूत्र में हेगेल का बहुत कुछ है, यहा उनका प्रभाव महसूस होता है। यह हम इस तथ्य मे भी देखते है कि मार्क्स ने इस बात के लिए स्वय अपनी आलोचना की कि उन्होने द्रव्य और रूप की ऐसी प्रत्या-स्थापना की है, जिससे "द्रव्य" से भरे दराजो वाली एक मेज जैसी कोई चीज बन जाती है। इस दृष्टिकोण के बारे मे व्यग्यात्मक ढग से लिखते हुए, जिसकी उन्होने कभी सराहना की, मार्क्स ने यह निष्कर्ष निकाला कि "रूप को केवल अन्तर्वस्तु का सिलसिला होना चाहिए"।

लेकिन मार्क्स ने हेगेल को अपनाने की जल्दबाजी नही की, हालाकि हेगेल ने उन्हे घिसी-पिटी परपरागत दर्शनबाजी के कुछ गतिरोधो से अवश्य निकाला। वह

मानते है कि पहले हेगेलीय दर्शन के "अनोमे वेसुरे लय" ने उन्हे आकर्पित नही किया। लेकिन हद मे ज्यादा परिश्रम के कारण अपनी अस्वस्थता के दौरान जब कार्ल ने हेगेल को "शुरू से अत तक" पढ डाला, तो भी उन्होंने उनके प्रति सतर्कता बनाये रखी। वह "एक ऐसे विचार को, जिससे मुझे नफरत थी, अपनी आराध्य प्रतिमा बना लेने पर कष्टजनक चिढ" के वारे मे लिखते है। स्पष्टतया, "वेसुरे लय" मे जलपरियो के गीत का चुम्बकीय आकर्पण था और उससे प्रभावित न होना कठिन था।

कुछ भी हो, हेगेल के उत्साही प्रशसको के बीच, जिन्हे मार्क्स ने 'डाक्टर्स क्लव' मे शामिल तरुण हेगेल-वादियो के बीच पाया, वही एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे, जो इस विद्वान के प्रभा-मडल से तनिक भी चकित नही थे। हेगेलीय मार्ग का अनुसरण करे या न करे, यह प्रश्न उनके सामने एक खुला प्रश्न बना रहा।

हेगेल के विस्तृत अध्ययन के पहले मार्क्स ने अपने पर क्लासिकीय जर्मन दर्शन के दो महान मनीपियो—काट और फिख्ते के प्रभाव को महसूस किया था। यदि काट की कृतियो मे मार्क्स उच्च नैतिक आदर्शो और दार्शनिक तथा धार्मिक विचार के जडसूत्र के दृढ सदेहवाद से प्रभावित हुए, तो फिख्ते ने उन्हे मुख्यतया अपने दर्शन के सक्रिय, जोशीले, दृढ-सकल्प स्वरूप से प्रभावित किया।

सक्रिय कार्रवाई के लिए और वैज्ञानिक विचार को दुनिया को वदलने की आग और तलवार बनाने के लिए अत्यत उत्सुक युवा मार्क्स ने अपने आरभिक विद्यार्थी जीवन

मे फ़िश्ते के दर्शन और विश्व-दृष्टिकोण से बहुत कुछ पाया।

फिश्ते के व्यक्तित्व ने तत्कालीन उग्र रुझान वाले नौजवानों को बहुत प्रभावित किया। फिश्ते ने अपने मे सैद्धातिक चितन के प्रति अनुराग और कार्रवाई की उत्कट लालसा को उचित ढंग से समन्वित किया। वह सेनानी और दार्शनिक एक साथ दोनो ही थे, उनके लिए चितन और कर्म एक मे मिले हुए थे। वह दर्शन के बोनापार्त के नाम से सुप्रसिद्ध थे, लेकिन उनके कार्य की आरभिक अवधि मे उन्हे दर्शन का जैकोबिन भी कहा जा सकता था। वह अपने को क्रातिकारी फ्रास का एक नागरिक कहने के अधिकार को एक सम्मान की बात मानते थे।

काट के विपरीत, फिश्ते किसी भी रूप मे कोई समझौता करने को झुकने वाले नही थे। उनके विचार और कर्म चुनौती भरे और "अपमानजनक ढग से" साहसिक थे। उनकी रचनाए गर्वित स्वतत्रता, स्वातत्र्य-प्रेम और वीरतापूर्ण गरिमा से ओत-प्रोत थी, उनकी शैली प्राजल, भव्य और मर्मस्पर्शी थी। उनमे अपने दर्शन से सपूर्ण युग के विचारो को शासित करने का निष्कपट दावा महसूस होता है। उन्होने लिखा, "दर्शन शुष्क चितन, सारहीन सूत्रो मे खोजबीन नही है. यह गहरी से गहरी जडो मे आत्मा का रूपातरण, पुनर्जन्म और नवीकरण है: एक नये अवयव और इसके आधार पर एक नयी दुनिया की स्थापना है।"

फिश्ते ने निष्क्रिय चितन की जगह रचनात्मक कार्य,

मानव के रचनात्मक कार्य को स्थापित किया। उनका मूल विचार यह था कि मानव अपने कार्यो मे स्वयं अपना सृजन करता है। इन विचारो ने तरुण हेगेलवादियो को बडा प्रभावित किया था, जिनकी सगति मे मार्क्स अपने विद्यार्थी जीवन मे रहे।

स्वभावतया, फिख्ते का "कार्य-दर्शन" विश्व की भाववादी व्याख्या था। उनका व्यवहार आत्मा का व्यवहार था। मार्क्स को तब तक आत्मिक विकास का एक लबा मार्ग तय करना था, जब तक कि फिख्ते के विचारो (और दूसरे चितको के विचारों) का "बुद्धिसगत मर्म" व्यवहार मे द्वद्ववादी-भौतिकवादी सिद्धात, एक ऐसे वैज्ञानिक सिद्धात की रचना मे विकसित हो सके, जो दुनिया को बदलने का एक सच्चा अस्त्र बना।

काट और फिख्ते मानवतावादी थे, लेकिन उन्होंने व्यक्ति की स्वतत्रता और ओजस्वी विकास के आदर्श को या तो किसी दूरस्थ भविष्य के अधीन कर दिया (काट) या उसे कल्पनावादी लक्षण प्रदान किये (फिख्ते)। क्यो जर्मन भाववाद के क्लासिकीय दर्शन ने युवा मार्क्स को सतुष्ट नही किया, यह १८३७ मे लिखी गयी उनकी एक कविता से साफ है

> काट और फिख्ते है गुम आसमानो मे कही
> ढूढते है दूर की आदर्श दुनियाए वहा,
> उनसे बेहद कम है लेकिन मेरी दिल की आरजू
> उनको समझू जो मिला मुझको मरे राह यहा।



जोहान गोत्तलिब फिख्ते



जोहान गॉतलिब फिख्ते

वस्तुत , काट और फिश्ते के बारे मे उनकी यह बात हेगेल पर भी लागू होती है। मार्क्स केवल "आत्मा" के त्रिविभाजन की ही नही, बल्कि उस चीज की भी सैद्धातिक समझ की जिज्ञासा करते है, जो "सरे राह" यानी वास्तविक जीवन मे घट रही है।

पूर्ववर्ती वर्ष के बारे मे उनके विचारो का सार निम्नलिखित निष्कर्ष मे है: "भाववाद मे, जिसकी प्रसगवश मैंने काट और फिश्ते के भाववाद के साथ तुलना की और उन्ही से पोषित माना, मैं स्वय यथार्थ मे विचार की खोज करने के निर्णय पर पहुचा। यदि पहले ईश्वर पृथ्वी से ऊपर रह रहे थे, तो अब वे इसके केन्द्र बन गये"।

यहा मार्क्स के भौतिकवाद की ओर सक्रमण का कोई प्रश्न ही नही उठता, वह अभी बहुत दूर है। "ईश्वर" अभी पदच्युत नही हुए है, वे तो केवल दूसरी दुनिया मे उतर कर इस दुनिया मे, "वस्तुनिजरूप" मे "वस्तु-हमारे निमित्त" मे स्थानातरित भर हुए है। वह स्वय यथार्थ को मात्र दिव्य विचार का मदिर बताते है।

लेकिन मार्क्स इस मदिर मे इसका शाश्वत कैदी बनने और हेगेलीय दर्शन मे अपने को अवबोधन करने वाले परम विचार का घुटने टेककर भक्तिपूर्वक मनन करने के लिए नहीं घुमे। वह इस बात की परीक्षा लेना चाहते थे कि क्या यह देव सचमुच उतना "परम" है, कि क्या यह उनकी कटु आलोचना के निर्मम प्रहारो को झेल सकेगा ?

४

"सच तो यह है कि मैं देव-मंडली को घृणा करता हूं"

मैं टोकता हू आ सामने मुकाबले को
तो देव जैसी ये दुनिया
हकीर नाहजार।
एक आह भरती है
ढह पडती है वही पर वो
उसी तरह से मैं रहता हू
फिर भी शोलावार।

और एक शाने सुदावदी से वेरोकटोक
मैं इस खडहर में हू विजय की तरह महमत।
मेरी जवान का हर कौल आग और अमल
कि मेरा सीना है अव, सीन-ए-विधाता।

कार्ल मार्क्स

वर्लिन मे विद्यार्थी जीवन कार्ल मार्क्स की दार्शनिक चेतना के ही नही, वल्कि राजनीतिक चेतना के भी द्रुत विकास का काल था। पहले के अध्यायो में हम देख चुके है कि अपने स्कूली वर्षो मे भी वह सभी प्रतिक्रियावादी चीजों के प्रति तीव्र घृणा महसूस करते थे। बोन विश्वविद्यालय में वह युवा लेखकों की एक साहित्यिक मडली में शामिल हो गये। यह एक ऐसा सगठन था, जिसे पुलिस सदेह की नजर से देखती थी। बोन विश्वविद्यालय मे प्राप्त उनके चरित्र-प्रमाणपत्र में यह लिखा हुआ

था कि उन्होने "कोलोन मे वर्जित हथियार पहुंचाये"।

निस्सदेह, प्रशियाई राजतंत्र की राजधानी बर्लिन मे मार्क्स को देश के राजनीतिक जीवन की भावना को गहराई से समझने का अवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने उग्र रुझान वाले युवा लेखको से परिचय किया, हान्स हेफ्टेर जैसे उदारतावादी हेगेलवादी प्रोफेसरो के व्याख्यान सुने और समसामयिक वैज्ञानिक, राजनीतिक और धार्मिक प्रश्नो पर विद्यार्थी वादविवादो मे भाग लिया।

स्पष्टतया कार्ल ने अपने पिता को अपने बढते राजनीतिमूलक सदेहो के बारे मे बताया। हेनरिख मार्क्स उन सदेहो से कुछ-कुछ सहमत भी थे। फिर भी, इस सभावना के लेशमात्र अदेशे से ही उनके रोगटे खड़े हो जाते थे कि उनके पुत्र मे "अत्यधिक वामपथी" विचार घर कर सकते है और वह ऊची नौकरी पाने से हमेशा-हमेशा के लिए वचित रह जायेगा।

"कानून के बारे मे तुम्हारे विचार सत्य-रहित तो नही है," १८३६ के अत मे उन्होंने अपने पुत्र को लिखा, "लेकिन यदि उन्हे एक प्रणाली मे रूपातरित कर दिया जाये, तो बहुत सभव है कि वे तूफान खडा कर देंगे और क्या तुम्हें नही मालूम कि विद्वानो के बीच कितने प्रचड तूफान उठते है? यदि इन विचारो मे मौजूद आपत्तिजनक चीजो को पूरी तरह से समाप्त नही किया जा सकता, तो कम से कम उनका रूप नरम और सुग्राह्य होना चाहिए"।

तूफानो से बचो, नरम और सुग्राह्य बनो, आपत्तिजनक चीजो को दूर करो।

न "दूसरों के काम" से सीखना है। वह अपनी प्रतिभा व्यर्थ की अस्पष्ट कपोल-कल्पनाओं, निष्फल "अविवेकपूर्ण और अनुपयुक्त" विद्वता पर नष्ट कर रहा है।

अपने पुत्र की जीवन-पद्धति के बारे में सोच-सोच कर हेनरिख मार्क्स बहुत दुखी और निराश हो उठते हैं: "अनियमितता, ज्ञान के सभी क्षेत्रों में गोलमटोल भ्रमण, मद्धिम तेल के लैम्प की रोशनी में अस्पष्ट चिंतन-मनन, बियर के गिलास के लिए पागल होने के बजाय विद्यार्थी के ड्रेसिंग गाउन और बिखरे-उलझे बालों के साथ पागल हो जाने, सभी शिष्टता और यहा तक कि अपने पिता के प्रति भी सभी आदर-सम्मान को ताक पर रख कर दूसरों से कटे-कटे एकात में रहना। दुनिया के साथ साहचर्य की कला मात्र गदे अध्ययन के कमरे तक सीमित हो गयी है, जहा जेनी के प्रेम-पत्रों और आसुओं के साथ लिखे गये पिता के सदाशयपूर्ण उपदेशों का इस्तेमाल शायद चुरूट जलाने की बत्तियों के रूप में किया जाता है ..."

यह तो रही वर्तमान की बात, लेकिन भविष्य का क्या होगा? क्या एक निकृष्ट कमरे मे "पागल हो उठे विद्वान" का जीवन जेनी जैसी लडकी के लिए एक योग्य भविष्य हो सकता है? हेनरिख मार्क्स का हृदय यह सोच कर विदारित हो उठा कि यदि माता-पिता का हाथ अब और उसका मार्गदर्शन करने मे असफल रहा, तो उनके इतने अव्यावहारिक पुत्र का कितना बडा अनर्थ होगा। उन्होंने उसे "दुष्ट प्रेतो" को भगाने और एक

गभीर, व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने के लिए समझाया-बुझाया। उन्होंने कार्ल को अपने माता-पिता और अपनी मगेतर के प्रति कर्तव्यो को एक-एक करके समझाया। उन्होंने आशा की कि इन कर्तव्यो की पूर्ति उनके पुत्र को "सत्य मार्ग" पर लाने मे सहायता करेगी, "एक असभ्य नौजवान को एक सभ्य आदमी, एक निषेधकारी मेधावी को एक सच्चे चितक उच्छृखल नौजवानो के एक उच्छृखल सरदार को समाज के योग्य मानव मे बदल देगी, एक ऐसा मानव, जो ईल की तरह अदृढ न होने के लिए काफी गर्वित हो, बल्कि यह अनुभव करने की काफी व्यावहारिक बुद्धि और कौशल मे सपन्न हो कि वह केवल शिष्ट लोगो के साहचर्य मे ही अपने व्यक्तित्व के अत्यधिक जीवत और लाभप्रद पहलू को दुनिया को दिखाने, शीघ्र से शीघ्र सम्मान, प्रेम और प्रतिष्ठा जीतने तथा अपनी उस प्रतिभा का व्यावहारिक उपयोग करने की कला सीख सकता है, जिसे प्रकृति माता ने उसे उदारतापूर्वक प्रदान किया है"।

ये शब्द उन्होंने अपने पुत्र से विदा लेते हुए कहे। हेनरिख मार्क्स विस्तर पर गिरे तो फिर कभी नही उठ पाये और मई, १८३८ मे उनका देहात हो गया। ओग्यूस्त कोर्नू ने यह ठीक ही लिखा है कि हेनरिख मार्क्स की अकाल मृत्यु ने उनके और उनके पुत्र के बीच कटु सघर्ष को बचा दिया और इसलिए कार्ल मार्क्स अपने पिता की सुखद स्मृतियों को अपने साथ जीवन भर बनाये रख सके।

जहा तक कार्ल मार्क्स की माता हेनरियेट का सबध

है, वह अपने पुत्र के स्वास्थ्य के प्रति बडी चिंता प्रकट करती थी, लेकिन वह उसके आध्यात्मिक अन्वेषणो को समझने से बहुत दूर थी। वह १८६३ तक जीवित रही और अपने पुत्र को एक दयनीय असफल आदमी मानती थी। वह कटुतापूर्वक कहा करती थी कि बेहतर होता कि कार्ल पूजी के बारे मे पुस्तक लिखने के बजाय कुछ पूंजी प्राप्त करने का प्रयास करता। अपनी जगह उनका यह कहना सही भी था, क्योकि, जैसा कि स्वयं मार्क्स ने स्वीकार किया, 'पूजी' के प्रकाशन से प्राप्त रायल्टी से तो इसकी रचना के दौरान पी गयी तवाकू का खर्चा भी नही निकला। बुर्जुआ, कूपमडूक मानदडो के अनुसार जिस ध्येय मे उन्होने अपना जीवन लगाया, वह एक बिल्कुल अलाभकर ध्येय था।

समाज मे चलते पुरजे और अपने ज्ञान से अधिकतम लाभ प्राप्त करने (बेशक, "सार्वजनिक भलाई" के लिए!) मे समर्थ "सम्मानजनक" विद्वान का उनके माता-पिता का आदर्श विद्यार्थी जीवन मे भी मार्क्स के लिए बिल्कुल हेय और नापसद था। न जाने कितने ऐसे "विद्वान" वह विश्वविद्यालय और जीवन मे देख चुके थे। (न जाने ऐसे कितने ही पूजी के "डिग्रीधारी चाकरो" को वह उनकी योग्यताओ के अनुसार "पुरस्कृत" कर चुके थे!)

मानो "विद्वानो के बीच तूफान" बचाने के अपने पिता के अनुनयो के उत्तर मे युवा मार्क्स ने अपनी एक कविता मे लिखा:

कैसे मैं निष्क्रिय, बेपरवाह रहूं उस चीज से
आत्मा की खातिर जो बिजली-सी बेचैन।
चैन से और काहिली से भला क्या लेना मुझे
मैं वहां हूं, जिस जगह यह अलगार है, तूफान है

रह न जाये आधी-अधूरी कोई तृष्णा
ईश्वरीय वरदानों को समझने के लिए यत्नवान् हूं मैं।
ज्ञान की गहराइयों में कर रहा हूं गवेषणा
आलमे गीत और कला में आत्मविभोर हूं मैं।

काश जुर्रत और हिम्मत अब हमारा साथ दे
ये नहीं अपना मुकद्दर, सुलहेकुल सब की उम्मीद।
और कितने दिन रहेंगे बेजबां बस रह लिये
बस हुआ बेअक्ल और बेकार जीना बस हुआ।

ये न हो हम बुजदिलों की तरह से हों लाचार
जब्र से दबे-डरे, कराहते जुए के बोझ से।
कुव्वते हर आरजू और कुव्वते अफकारोंकार
आप से शर्मिंदा होकर दिल की दिल में ही रहे।

बेशक, मार्क्स के काव्यात्मक प्रयोग पूर्ण हरगिज नहीं थे और इस चीज को स्वयं युवा कवि भी बहुत अच्छी तरह समझता था। लेकिन फिर भी, ये कविताएं अत्यंत दिलचस्प हैं, वे उनके आत्मिक जोश का दर्पण हैं, वे उनके विश्व-दृष्टिकोण, उनकी सामाजिक पसंद-

नापसदो और उनकी बढती सामाजिक चेतना को प्रतिबिंबित करती है।

आम तौर से कला और खास तौर से काव्य राजनीतिक वातावरण में घट रहे परिवर्तनो के प्रति हमेशा सवेदनशील होते है और सामाजिक उथल-पुथलो की नब्ज़ है, विशेष रूप से तब, जब अन्य रूपो मे राजनीतिक कार्रवाई फिलहाल असभव होती है। १६वी सदी के चौथे दशक के अत मे जर्मनी मे वस्तुत. यही स्थिति थी, जहा "हर आदोलन धीरे-धीरे विलुप्त हो गया" *, लेकिन यह तूफान आने के पूर्व की शाति थी।

नयी हवा के पहले झोको के स्फूर्तिकारी स्पर्श का अनुभव होने लगा था। १८३५ से युवा लेखको की आवाज क्रमश जोर-शोर से गूज उठी, वे तरुण जर्मनो के दल के सदस्य थे और उन्होने प्रेस और धर्म की स्वतत्रता तथा एक सविधान की माग की। हाइने की तीक्ष्ण व्यग्य से भरी वीणा की झकार जर्मनी मे झंकृत हो रही थी, प्लाते और फ्रेइलिग्राथ की स्वतत्रता-प्रेमी कविताए प्रकट हो रही थी और ग्योर्ग हेर्वेग ने अपना काव्यात्मक जीवन आरभ कर दिया था। मेधावी कवि तथा जन-प्रवक्ता और प्रचारक लुडविग बेर्ने विदेश से प्रशियाई निरकुशतावाद पर जबर्दस्त प्रहार कर रहे थे।

अत , काव्य मे असाधारण दिलचस्पी, जो इन वर्षो मे युवा मार्क्स और एगेल्स का लक्षण थी, बिल्कुल

---

* फ्रे० एगेल्स, 'जर्मनी की स्थिति', १८४६।

स्वाभाविक है। उन्होने अपने रचनात्मक कार्यकलाप कवियो के रूप में शुरू किये उनकी पहली प्रकाशित पुस्तके कविताएं ही थी। एक लंबे अर्से तक मार्क्स के मन मे पेशेवर लेखक बनने की आकाक्षा बनी रही।

युवा मार्क्स के काव्यात्मक प्रयोग एक तूफान की आशा और विद्रोहात्मक भावनाओ से ओत-प्रोत है। इन प्रयोगो मे हम इर्द-गिर्द की दुनिया का निपेध और इसे एक चुनौती साफ-साफ देखते है। उनकी फतासी ने तूफानी, उन्मत्त भावनाओ, उस त्रासिक नायक की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रतिमा को जन्म दिया, जो "आग के चक्के से बधा हुआ" है और इस ससार की "निर्मम सत्ता" को धर दबाने और इसे अपने "भारी अभिशाप" से नष्ट कर डालने का स्वप्न देखता है (त्रासदी 'ओउलानेम')। हाइने की तरह, जिन्होने कहा "मैं ही तलवार हू, मैं ही आग हू!", मार्क्स अपने शब्द को "कार्य और आग" बनाने की उत्कठा करते है।

मानव नियतियों के संयोग भी कैसे-कैसे होते हैं! जहा १६वी सदी के पाचवे दशक के मध्य में मार्क्स के साथ भेंट हाइने के जीवन की एक बडी घटना थी – उनके काव्यात्मक तीरो ने अधिक राजनीतिक तीक्ष्णता प्राप्त की थी, वही कुछ समय पहले, चौथे दशक के उत्तरार्द्ध मे हाइने के काव्य के साथ मार्क्स के परिचय ने मार्क्स के रचनात्मक विकास में उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका अदा की।

यह सुविदित है कि १८३७ तक १६-वर्पीय मार्क्स हाइने की रचनाओ से परिचित हो चुके थे, हालाकि उस

समय जर्मनी मे उनका नाम लेना भी जुर्म माना जाता था। अपने पिता को लिखे उसी पत्र में, जिसका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, मार्क्स जानबूझकर निर्वासित कवि की सुप्रसिद्ध कविता, 'शांति' से स्प्री के गंदे जल के बारे में एक पंक्ति उद्धृत करते है, "जिसमें आत्माए नहाती है और जो चाय को हल्का करता है"।

निस्सदेह, जर्मन काव्य के विद्रोही हाइने उस समय मार्क्स के एक "आराध्य व्यक्ति" थे और यह उनकी कविताओ मे भी प्रतिबिंबित हुआ है। हमे उनमे मार्क्स की "विद्रोही आत्मा" के विस्वरो के सदृश लयबद्ध विस्वरो से युक्त हाइने की नयी शैली का अनुभव होता है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि हम उनमें रोमासवाद और "सासारिक" यथार्थवाद, आत्मीय गीतिकव्य और नागरिक भावना से संपृक्त हाइने का व्यग्य पाते हैं।

"देव-जैसी इस दुनिया" को सामने मुकाबले को आने के लिए ललकारते हुए मार्क्स कटूक्ति और व्यग्य के खड्ग से "मुनीमी नैतिकता और मोटी तोंद वालो के गुण" पर कुछ और जबर्दस्त प्रहार करने से नही चूकते। इस सबंध मे जर्मन कूपमडूकता, "खामोश कुछ सोये जर्मन लोगो" का मजाक उडाने वाली सूक्तियां बहुत दिलचस्प है।

बैठकर आराम कुर्सी पर जरा खोये हुए
जर्मनी के लोग थे, खामोश कुछ सोये हुए
इस तरफ तूफान था और उस तरफ आधी की धूम
काले-काले बादलो का आसमा पर था हुजूम

माप-सी फनकारती थी बिजलियो पर बिजलिया
ये सब ऐसा क्या था, जिस पर वो खपाते अपनी जान।
जब मगर तूफा ठहरा और हवा मद्धिम हुई
और हल्के नरम सूरज की झलक दिखायी दी
तब तो सब एकबारगी उठ बैठे जांबाज और जरी
और लिख डाली किताब अपनी "बला सर से टली"।

किस कदर वजहे मसर्रत है कल्पना के पखो पर बैठ कर उडना
पहले जो कुछ हो चुका उसकी उडा दो धज्जिया
फिर कर दो ये फैसला इस सब मे कुछ मानी नही
वो हुजूमे मेघ था भोडा मज़ाक और कुछ नही
काम है लोगों का ये ऊपर से ले नीचे तक अब
शासन एक पैदा करे और ढूंढ लाये भेद सब।

छोटे और नादा बच्चो की तरह है ढूढना
उसको जो बिल्कुल हमेशा के लिए गुम हो गया
आज की तामीर मे मसरूफ होना है उन्हे
इस ज़मीन और आसमा को भूल जाना है उन्हे
इनको छोडो हाल पर इनके यो ही चलते रहे
और अर्से तक चट्टाने मौजो का तोडा करे।

मार्क्स कूपमंडूक के आत्मसतोष की मज़ाक उडाते हैं, जो यह नही समझ पाता कि अगर आदमी की थैली अच्छी तरह मे भरी हुई और सुरक्षित है तो उसके मन मे कैसा अतर्द्वद्व हो सकता है। 'वृश्चिक और फेलिक्स'

शीर्षक उपन्यास मे मार्क्स प्रतिक्रियावादी व्यक्तियों और उदारतावाद के विरुद्ध योद्धाओं की खिल्ली उड़ाते हुए "सच्चे जर्मन", एक "बहुत अधिक ईसाई" परिवार का व्यग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करते है। इसमे हम मार्क्स की प्रौढ कृतियो जैसे ही तीक्ष्ण बुद्धि-चातुर्य का पुट पाते है। वह लिखते हैं कि हर बडी चीज का अपना एक विलोम होता है, जो अपने मूल को अपदस्थ कर देता है, उसी तरह जैसे बौना महाकाय को, दकियानूस कूपमडूक प्रतिभाशाली को, नाट्य-अभिनेता ओक्टेवियानस वीर सीज़र को, बुर्जुआ राजा लुई फिलिप सम्राट नेपोलियन को, पर्यक-वीर ऋग दार्शनिक काट को, परामर्शदाता राऊपाख कवि शिलर को और वोल्फ का क्लासरूम लीबनिज़ के स्वर्ग को अपदस्थ कर देता है। उसी तरह, समुद्र मे हर तूफान हमेशा अपने पीछे कीचड-कचरा छोड जाता है।

बाद मे, 'लुई बोनापार्त की अठारहवी ब्रूमेर' (१८५१–१८५२) मे मार्क्स अपनी जवानी में निर्मित व्यग्यात्मक चित्र की ओर पुन: लौटते हैं. "हेगेल ने एक जगह कहा है कि विश्व इतिहास मे वे सभी अत्यत महत्वपूर्ण घटनाए और हस्तिया, कहा जा सकता है, दो बार आविर्भूत हुई है। वह इतना और कहना भूल गये: पहली बार दु खात नाटक के रूप मे और दूसरी बार प्रहसन के रूप में। जैसे, दातो की जगह कोसीदियेर, रोबेस्पियेर की जगह लुई ब्ला, १७९३–१७९५ के पर्वत दल की जगह १८४८–१८५१ का पर्वत दल; चाचा की जगह उसका भतीजा। इसी प्रकार 'अठारहवी ब्रूमेर' का द्वितीय

सस्करण जिन परिस्थितियो मे हुआ है, वे उसे प्रथम सस्करण का कार्टून बना देती है!"*

कूपमडूक हमेशा मूल की जगह इसके कार्टून को ही तरजीह देता है। तूफान से तो वह भय खाता है, लेकिन तूफान अपने पीछे जो कीचड-कचरा छोड जाता है, उसमे उसे स्वर्गिक सुख की अनुभूति होती है। वह पुन. सपूर्ण तूफान को सुव्यवस्थित ढग से पुस्तको मे उतार लेने की कोशिश करता है, जिनके खरीदार भी आसानी से मिल जाते हैं। युवा मार्क्स अपनी सूक्तियो मे इस विषय पर प्रायः लौट कर आते हैं·

एक बार ऐसा हुआ जब जर्मनी वाले तमाम
जैसे-तैसे आ गये, बरमंजिल फतहे अवाम
जब सुनाते फिर रहे थे कामयाबी की खबर
देखते क्या है कि लिखा है हर मोड़ पर
"एक चमत्कार चारों तरफ देखा गया
तीन टागे होंगी सबकी आज से ये तय हुआ!"
देखते ही देखते सब हो गये चेहरे उदास
खुद से शर्मिंदा थे सब और दिल मे था खौफोहरास
"हद से ज्यादा हो गया जल्दी के इस बेचैन मे

---

* यहा मार्क्स अठारहवी सदी की फ्रासीसी क्राति के महान नेताओं दातो और रोबेस्पियेर की व्यग्यात्मक तुलना अन्यमनस्क टुटपुंजिया बुर्जुआ राजनीतिज्ञों कोसीदियेर और लुई ब्ला से कर रहे है, जिन्होंने १८४८ की क्राति मे प्रमुख भूमिका अदा करने का प्रयास किया।

अब समझ की बात पडने लगी है कान मे
एक किताब अब तो लिखें नासमझियों को सोच के
उसके ग्राहक ढूढ लेगे देखते ही देखते।"

इन रचनाओ मे युवा मार्क्स अपनी राजनीतिक भावनाओ – प्रतिक्रिया के प्रति असहिष्णुता, क्रातिकारी तूफान की आशा, जनता की जीत, राजनीतिक कायरता और उदासीनता की आलोचना, वास्तविक जीवन मे नही, बल्कि किताबो मे क्राति लाने की जर्मनो की असाधारण प्रतिभा के प्रति व्यग्यात्मक रुख – को व्यक्त करते है।

फ्राज मेहरिग का यह कहना बिल्कुल ठीक नही है कि कलादेवियो ने मार्क्स के पालने मे जो विपुल प्रतिभाए रखी, उनमे लयात्मक वाक्शक्ति की प्रतिभा नही थी। हालाकि मार्क्स की अनेक कविताए अनुकरणात्मक और, जैसा कि स्वय युवा कवि ने माना, विस्तृत तथा अस्पष्ट हैं, उनमे एक "दूरस्थ परीमहल की तरह" उज्ज्वल काव्य के बीज भी है। ये "प्रिय, सदा प्रिया जेनी को" समर्पित गीतात्मक कविताओं और विशेष रूप से व्यग्यात्मक कविताओं दोनों मे विद्यमान हैं, जिनमे उनके तीक्ष्ण विचार और रोष-भावना अपनी प्रचड शक्ति के साथ प्रकट होते है। जहा उनके प्रारभिक काव्य-प्रयोगो मे शिलर के भावात्मक रोमासवाद का प्रभाव देखा जा सकता है, वही बाद की कविताओ पर गेटे और खास तौर से हाइने की छाप है।

मार्क्स अपने तीखे व्यंग्य से चर्च पादरियो, कूपमडूको के आत्मिक उपदेशको के पाखडपूर्ण उपदेशो की आलोचना करते है। वह लूथरमतवादी पादरी पुस्टकुखेन पर अनेक सूक्तिया लिख डालते है, जिसने १९वी सदी के तीसरे दशक मे गेटे के 'विल्हेल्म मेइस्टेर' पर एक बाजारू पैरोडी लिखी थी और महान जर्मन कवि पर "अनैतिकता" का दोष लगाया था।

बेहतर तो यह होता कि पादरी पुस्टकुखेन चर्च के बावर्चीखाने मे अपने श्रद्धालु भक्तजनो के लिए असार उपदेशो से समोसे पकाता। लेकिन "बौनो" को महत्वोन्माद का मर्ज लगा होता है और वे "महाकाय" से अपनी बराबरी करने का व्यर्थ प्रयास करते है। वे उसे अपने ही चश्मे से देखते है, लेकिन वे उसके विराट बूटो पर कीचड के अलावा और कुछ भी नहीं देख पाते। तब बौने अहकारपूर्वक कृपाशील बन जाते हैं और "महाकाय" के "गुणो" को ही "दोष" मान लेते हैं और उन्हें उन चीजो से रहित पाते है, जो स्वय बौनों की नजर में महत्वपूर्ण होती हैं। किस चीज के लिए उनका आदर-सम्मान किया जाता है? अपनी आत्मिक सादगी में इतना पवित्र पुस्टकुखेन पर व्यग्य करते हुए मार्क्स कहते है: भला गेटे का उतना कद्र क्यों किया जाये, जबकि उन्होंने एक भी प्रवचन नहीं लिखा? उन्होंने तो केवल प्रकृति का अध्ययन किया, जबकि उन्हें मूसा के उपदेशों का अध्ययन करना और उन पर अभिभाषण लिखना चाहिए थी।

गेटे पढ़ना बिल्कुल ही अश्लील है औरत के लिए,
और अगर सीनदार हो तो फिर उसके लिए बेमूद है ये।
प्रकृति को तो उसने लिया जैसी भी उसके हाथ लगी,
लेकिन कुछ गिरजे के प्रवचनों से उसकी सजावट न की।
चाहिए तो ये था उसको लूथर के बमूलों को लेता,
और उन्हीं की बुनियादों पर अच्छी-अच्छी नज़्में कहता।
आह गेटे सच है, उसने सौदर्य की कुछ सृष्टि भी की,
भूल गया लेकिन ये कहना "ये सब उसकी कृपा थी"।

जी हा, उनकी रचनाओ में क्या कोई काम की भी चीज़ है? आखिरकार, "मदरसे के सबक तक मे उसको मुश्किल थी!"

अजीब है न ये साहिबा कि सर चढ़ायेगें,
कि आसमा पर गेटे को हम बिठायेंगे।
कभी तो ऐसी इबारत न उससे लिखी गयी,
कि 'पर्वत-प्रवचन' पर कुछ जिससे रोशनी पड़ती है।
है उसके पास कोई एक ऐसा रेखा भी,
किसान जिस पर ललच जाये या मुदर्रिस ही।
न उसको मरज़िये हक की कभी समझ आयी,
कि मदरसे के सबक तक मे उसको मुश्किल थी।

और 'फाउस्ट' के बारे मे क्या कहा जाये? यह इस चीज़ के बारे मे एक शिक्षाप्रद कहानी का उत्तम विषय हो सकता है कि कैसे "पाप मनुष्य को शैतान

के पास ले जाता है" और कैसे हमे अपनी आत्मा को बचाने की चिंता करनी चाहिए। लेकिन गेटे ने इसे बिल्कुल गलत ढग से चित्रित किया। उनके फाउस्ट ने "ईश्वर और ससार पर सदेह करने का दुस्साहस किया" और "नासमझ युवती को उससे प्रेम करना बदा है, बजाय इसके कि वह उसके अत करण को जगाती" और "उसे शैतान की धूर्त्ततापूर्ण चालों और कयामत के दिन की याद दिलाती"।

किस्सए 'फाउस्ट' लिखा इस तरह कर लो यकीन,
सब दरोग और झूठ शायर का है और कुछ भी नहीं।
असल मे फाउस्ट पापी और उस पर काहिली
मस्त था, गाफिल खुदा के खौफ से थी जिंदगी।
उसको ऊपर से मदद कोई न इतनी भी मिली,
शर्मनाक एक मौत आती, खत्म होती जिंदगी।
इसलिए बस बेतहाशा खौफ था दिल [illegible],
मुलजिर था खत्मे जहमत आलमे-[illegible]
और लगा फिर सोचने क्या चीज है [illegible],
इल्म क्या है और फना क्या है, [illegible]।
और एक अबार शब्दो, [illegible],
जिनके मानी का सिरा [illegible]।
काश शायर ने सबाग [illegible],
और कहता ये कि [illegible]।
फिर कभी भी [illegible]-
उससे कहते [illegible]।

जहा तक शिलर का संबंध है, वह एक भिन्न मामला है। "शिलर, उसकी राय मे, थोडा कम उबाऊ हुए होते, बशर्ते उन्होने बाइबिल और ज्यादा पढी होती।"

गेटे की महानता पुस्टकुखेन जैसे आत्मसतुष्ट "बौनो" को आहत करती है, यह उनकी धार्मिक भावना को चोट पहुचाती है और वे सहर्ष उन्हे कम से कम सिर से तो "छोटा करना" चाहेंगे ही।

पुस्टकुखेन की घिनौनी, पुराणपथी दुनिया की आलोचना ऐसे व्यक्तियो को पोषित करने वाली धार्मिक कट्टरता की भी आलोचना थी और इसने अनिवार्यत स्वय धर्म को कटघरे मे खडा कर दिया।

१८३७ की अपनी सूक्तियों में पादरियो की आक्रामक मूर्खता के विरुद्ध युद्ध घोषित करते हुए मार्क्स स्वय "ठडे ईश्वर"–इस परम पाखडी और सबसे बडे तानाशाह के विरुद्ध भी युद्ध घोषित कर रहे थे।

धर्म के साथ अतिम रूप से नाता तोडे बिना टुटपुजिया बुर्जुआ, कूपमडूकी विश्व-दृष्टिकोण से नाता नही तोडा जा सकता। इसी तरह, भाववादी स्थिति से धर्म की सुसगत और निर्मम आलोचना असभव थी, यह यथार्थ की आलोचना पर आधारित थी। ऐसा ही था उस मार्ग का अनिवार्य तर्क, जिसे कार्ल मार्क्स ने अपनाया।

१९वी सदी के चौथे दशक के अत मे उनके निकटतम मित्रो 'डाक्टर्स क्लब' के तरुण हेगेलवादियो की तरह मार्क्स का ध्यान मुख्यतया धर्म की आलोचना पर सकेद्रित हुआ। धर्म के विरुद्ध दार्शनिक आक्रमण १८३५ मे प्रकाशित

डेविड स्ट्रॉस की पुस्तक 'ईसा का जीवन' द्वारा शुरू हुआ, जिसमें इजील की "दिव्य अमोघता" को गलत ठहराया गया था। 'डाक्टर्स क्लब' के मार्क्स के निकटतम मित्र ब्रूनो बावेर ने और भी आगे बढ कर कहा कि चारो इजीलों में लेशमात्र भी ऐतिहासिक सत्य नही है।

इसी समय लुडविग फायरबाख ने *Hallische Jahrbücher* में अपने लेखो के साथ धर्म और दर्शन की एकता पर हेगेलीय शोध-कृति की आलोचना ऐसी स्थितियो से शुरू की, जिन्होंने उन्हें तेजी से भौतिकवाद की ओर मोड दिया।

मार्क्स के एक दूसरे वरिष्ठ मित्र फ्रेडरिक कोपेन ने १८वी सदी के फ्रासीसी और जर्मन प्रबोधन की परपराओ की पुनर्स्थापना के लिए संघर्ष किया। कोपेन ने १८४० मे प्रकाशित अपने पैम्फलेट को "त्रियेर के मेरे मित्र कार्ल हेनरिख मार्क्स को" समर्पित किया।

मार्क्स 'डाक्टर्स क्लब' के सबसे नौजवान सदस्य थे। लेकिन इसके बावजूद उन्होंने शीघ्र ही प्रोफेसरो और सहायक प्रोफेसरो के बीच एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया। वे उनकी असाधारण बुद्धि, उनकी रचनात्मक शक्ति और विचार-स्वातत्र्य से भली-भाति अवगत थे। वे मार्क्स की बहुत ही व्यापक आत्मिक दिलचस्पियों, निर्णय की निर्भीकता और उनके व्यग्य की भी सराहना किये बिना नही रह सके। सहायक प्रोफेसर और तरुण हेगेलवादी आदोलन के मान्य नेता ब्रूनो बावेर विद्यार्थी मार्क्स को बोन से दोस्ताना पत्र लिखा करते थे, जो

उनकी प्रतिभा के प्रति आदर से भरे होते थे। इन पत्रों में उन्होंने लिखा कि 'डाक्टर्स क्लब' की "बौद्धिक दिलचस्पी" अतुलनीय है और मार्क्स से स्वीकार किया कि "बर्लिन मे मैंने जितना हंसा है उतना कभी नहीं, चाहे यह तुम्हारे साथ बस सड़क पार करने की बात थी।"

कार्ल मार्क्स ने तरुण हेगेलवादियों द्वारा धर्म के विरुद्ध चलाये जा रहे संघर्ष में सक्रिय हिस्सा लिया। उन्होंने धर्मशास्त्र के एक प्रोफेसर के खिलाफ एक विवादीय पुस्तक भी लिखी, लेकिन उसे प्रकाशित नहीं किया। फिर भी, ऐसा नहीं कि उनके विचार उस पुस्तक में ही बंद रह गये उनके वरिष्ठ सहयोगियों ने उन विचारों को उठाया और विकसित किया। कोपेन ने मार्क्स को लिखे पत्र मे जो बात स्वीकार की है, उससे यह साफ है। अपने पर व्यंग्य करते हुए कोपेन ने १८४१ में लिखा कि जब से कार्ल बोन चले गये, तब से उन्होंने अतत. "कुछ अपने" यानी मार्क्स से उधार न लेकर "मौलिक रूप से सुचिंतित कुछ विचार" पाये। कोपेन लिखते हैं कि *Hallische Jahrbücher* में प्रकाशित ब्रूनो बावेर के लेख के विचार मूलतया मार्क्स के ही थे। अपने पत्र में वह लिखते है· "जैसा कि साफ है, तुम विचार-निधि, कर्मशाला या एक बर्लिनवासी के शब्दो में, विचारों की खान हो"।

अपने विद्यार्थी जीवन मे ही मार्क्स ने युवा बुद्धिजीवियों के बीच एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया था। वह वामपंथी हेगेलवादियों के भी सबसे "वाम" थे

और उनके मित्र भी उन्हे एक "अतिवादी क्रातिकारी" मानते थे।

बेशक, यह अभी मात्र सैद्धातिक क्राति का, सबसे पहले धर्म के प्रति क्रातिकारी रुख का एक प्रश्न था। इस सबध मे मार्क्स वस्तुत बावेर, कोपेन और उनकी मडली से बहुत आगे गये। विद्यार्थी के रूप मे अपने अतिम तीन वर्षो मे वह धार्मिक आडबर के खिलाफ प्रतिवाद से बिल्कुल धर्म की ही अस्वीकृति तक आगे बढ गये। तरुण हेगेलवादी गेओर्ग युग ने १८४१ मे आर्नोल्द रूगे को लिखा कि मार्क्स ने कहा कि ईसाई धर्म "अनैतिक" है और कि वह बावेर और फायरबाख के साथ पुराने प्रभु ईश्वर को स्वर्ग से बाहर निकालने और उसे अदालत मे घसीट लाने जा रहे है।

ईश्वर को स्वर्ग से बहिष्कृत करने, धर्म की प्रतिमाओ को अपदस्थ करने की अपनी तैयारी मे १८३८ से ही मार्क्स ने अपने समर्थन मे प्राचीन काल के महान अनी-श्वरवादियो एपिक्यूरस और लुक्रेशियस कारुस का गहन अध्ययन किया। ईश्वरो को उनकी साहस-भरी चुनौती ने उस अवधि मे मार्क्स के अन्वेषण को गम्भीर रूप से प्रभावित किया और वह "मानव-मस्तिष्क को धर्म की मजबूत पकड से मुक्त करने"* और इस प्रकार "ईश्वर के दास" को स्वर्ग तक उठाने की उनकी आकांक्षाओं से पूर्णतया सहमत थे।

---

* का० मार्क्स, 'एपिक्यूरियन दर्शन पर नोटबुक', १८३९

अपने डाक्टर की डिग्री संबंधी शोध-प्रबंध में वह "यूनानी प्रबोधन के महानतम प्रतिनिधि" एपिक्यूरस के बारे में लुक्रेशियस की भव्य पंक्तियों को उद्धृत करते हैं*

उस वक्त कि जब सब देख रहे थे बेबस-से मजबूर खड़े,
लोगों का जीवन अजीरन था धर्म के भारी बोझ तले
एक नश्वर और वीर इंसान उस वक्त उठा सबसे पहले,
जो खड़ा हुआ बागी बन कर और धर्म को ललकारा जिसने।
किस्सों से खुदाओं के न डरा, सहमा नहीं बिजली और
गरज से जो,
स्वर्ग का सारा गुस्सा भयभीत नहीं कर पाया जिसको।
यह यश है उसकी हिम्मत का कि धर्म है उसके पाँव
तले, और विजय खुद ही हमको—स्वर्ग का हम
पल्ला हैं किये।

एपिक्यूरस के युग और १६वीं सदी के चौथे दशक के अंत में जर्मनी में धर्म पर 'तूफान और आक्रमण' के युग के बीच बहुत-सी बातें मिलती-जुलती हैं। प्राचीन यूनान में एपिक्यूरस के अलावा दूसरे लोगों ने भी धर्म पर प्रहार किया, लेकिन उन्होंने यह कायरतापूर्वक और ऊलजलूल ढंग से किया। मिसाल के लिए, स्टोइक दार्शनिकों

---

* का० मार्क्स, 'प्रकृति के डेमोक्रिटियन और एपिक्यूरियन दर्शन के बीच अंतर', १८३६-४१।

ने प्राचीन धर्म को अपनी ही चिंतन-प्रणाली के उसी तरह अनुकूल किया, जिस तरह तरुण हेगेलवादियो ने। मार्क्स ने एपिक्यूरस की इस बात के लिए भूरि-भूरि प्रशसा की कि उन्होंने कोई रूरियायत नही बरती, कि वह "चालाक" या "धूर्त" नहीं थे, बल्कि उन्होंने "दुनिया के प्रति एक खुला अनीश्वरवादी" रुख अपनाया और "सीधे इसके धर्म पर प्रहार किया", जिसके फलस्वरूप वह सदियो तक चर्च पादरियो का कोप-पात्र बने रहे।*

जर्मनी मे स्वय हेगेल सहित ऐसे अनेक धार्मिक दार्शनिक थे, जिन्होंने महान यूनानी परमाणुवादियो की निन्दा की। हेगेल का बडा प्रभाव युवा मार्क्स को आगे बढने से तनिक भी नही रोक पाया, हालांकि वह उस समय हेगेलवादियो के निकट थे। वह हमेशा अन्य सभी सोच-विचारो के मुकाबले सत्य की प्रामाणिकता को ही तरजीह देते थे। विज्ञान के आत्म-सतुष्ट देवों और प्रतिमाओ तथा अपने विचारो की नाभि पर ही सारा ध्यान केंद्रित करने वाले आत्मा के "ब्राह्मणो" को धराशायी करने वाले इस व्यक्ति के लिए तो सत्य ही एकमात्र आराध्य देव था।

अपने शोध-प्रबध की प्रस्तावना मे मार्क्स ने कहा कि हेगेल के परिकल्पनात्मक रुख ने ही इस "महाकाय चितक" को एपिक्यूरियन, स्टोइक और सदेहवादी प्रणा-

---

* का० मार्क्स, फ़े० एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा'।

लियो का यूनानी दर्शन के इतिहास और सामान्यतया यूनानी मस्तिष्क के लिए जो महान महत्व है, उसे मानने नही दिया।*

आगे प्लुटार्क के बारे मे बात करते हुए, जिन्होंने दर्शन को धर्म के न्यायालय मे ला खडा किया, मार्क्स वस्तुत हेगेल के साथ, बल्कि उनके दक्षिणपंथी समर्थकों के साथ वादानुवाद करते है।

"ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाणों" के सबध मे भी मार्क्स हेगेल की आलोचना करते हैं। काट ने इन "प्रमाणो" का पहले ही खडन कर दिया था। लेकिन हेगेल ने उन्हे सिर के बल खडा कर दिया है यानी उन्होंने उनका औचित्य सिद्ध करने के उद्देश्य मे उन्हे अस्वीकार कर दिया है। मार्क्स ने व्यग्यात्मक ढग से टिप्पणी की, "वे किस तरह के मुवक्किल है, जिन्हे पैरवी करने वाला वकील स्वय उनकी हत्या करके ही सजा पाने से बचा सकता है?"**

मार्क्स ने दर्शाया कि "ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण" वस्तुत परम मानवीय चेतना के अस्तित्व के प्रमाण, और इसलिए "ईश्वर के अनस्तित्व" के ही प्रमाण है। वास्तव मे, एक प्रमाण कहता है कि चूकि प्रकृति सुनिर्मित है, इसलिए ईश्वर का अस्तित्व है। लेकिन प्रकृति का

---

* का० मार्क्स, ' के . और एपि-क्यूरियन दर्शन के

** वही।

"बुद्धिसगत" सगठन तो उल्टे ईश्वर की फिजूलता, ईश्वर की अनावश्यकता को ही सिद्ध करता है।

"ईश्वर के अस्तित्व के सही प्रमाणों" को यह दर्शाना चाहिए "चूकि प्रकृति खराब ढग से बनी है, इसलिए ईश्वर का अस्तित्व है", "चूकि ससार बुद्धिरहित है, इसलिए ईश्वर का अस्तित्व है", "चूकि कोई चिंतन नही है, इसलिए ईश्वर है"।

"लेकिन क्या इसका यह अर्थ नही है कि जिस व्यक्ति के लिए संसार बुद्धिरहित है... उसी के लिए ईश्वर का अस्तित्व है? अथवा बुद्धि-अभाव ही ईश्वर का अस्तित्व है।"*

यह निष्कर्ष अपने समय के लिए बहुत चुनौतीपूर्ण था।

मार्क्स ने दृढतापूर्वक मानवीय आत्म-चेतना को "उच्चतम देवत्व" बताया और कहा कि "इसके साथ और कोई देवत्व नही होगा"। "सच तो यह है कि मैं देव-मडली को घृणा करता हू"—प्रोमीथियस की इस साहसपूर्ण आत्मस्वीकृति को उन्होंने सभी स्वर्गिक और सासारिक देवो के खिलाफ" मोड दिया। यह चुनौती-भरा वक्तव्य केवल धर्म-विरोधी ही नही, बल्कि राजनीतिक स्वरूप का भी था।

विद्यार्थी जीवन से विदा लेते हुए मार्क्स ने "डरपोक शशको", सत्ताधारियो के नीच चाकरो को चुनौती दी।

---

* का० मार्क्स, 'प्रकृति के डेमोक्रिटियन और एपिक्यूरियन दर्शन के बीच अतर'।

एस्खीलस के प्रोमीथियम के साथ, जिसने ज़ीयस के सेवक हेर्मेस के जजीर मे बधे विद्रोही मे "अक्लमदी से काम लेने" और बात मानने के परामर्श को गौरवपूर्ण ढग से ठुकरा दिया, मार्क्स ने उनसे कहा:

समझ लो अच्छी तरह मुझसे हो नही सकता
मैं दुर्भाग्य के बदले मे चाकरी कर लूं।
पिता ज़ीयस का खिदमतगुजार बनने से
मुझे ये अच्छा है चट्टान से बंधा रहना।*

"डरपोक शशक" वास्तव मे मार्क्स के अत्यधिक "वामपथी" रुख से स्तभित थे। आर्नोल्ड रूगे ने मार्क्स की क्रातिकारिता के बारे में लिखा। यहा तक कि बावेर भी, जिन्होने सिद्धात के आतकवाद की माग की, मार्क्स की चुनौती से भयभीत थे। उन्होने मार्क्स को अपने शोध-प्रबध की चुनौती-भरी प्रस्तावना की तीक्ष्णता को कम करने के लिए राजी करने की कोशिश की, सुझाव दिया कि उन्हे प्रतिक्रियावादी मत्री एइखहोर्न से माफी माग लेनी चाहिए और उन्हे सघर्ष में सतर्क रहने तथा सरकार की आलोचना से बाज आने की सलाह दी।

लेकिन ऐसी सलाह पर ध्यान देना मार्क्स के स्वभाव में नही था, चाहे यह उनके पिता या उनके दोस्तो ने

---

* का० मार्क्स, 'प्रकृति के डेमोक्रिटियन और एपिक्यूरियन दर्शन के बीच अतर'।

ही क्यो न दी हो। स्वर्गिक और सामारिक देवो को बेरोक-टोक चुनौती देने के बाद उन्होने अपने को मात्र इसी तक सीमित रखने की हरगिज नही कोशिश की। एक बार सघर्ष का मार्ग अपना लेने पर मार्क्स अत तक लडाई करने के लिए तैयार थे और उनका कोई भी निकट परिचित यह जरा भी अनुमान नही लगा सकता था कि वह इस सघर्ष मे कितनी दूर जायेगे।

युवा एगेल्स ने १८४१ के अत मे लिखी गयी अपनी व्यग्यात्मक वीरोचित कविता 'विश्वास की विजय' मे उनकी अदम्य योद्धा की प्रकृति का सुवर्णन किया। शुरु मे वह ब्रूनो बावेर का चित्रण करते है

बक रहा है तैश मे वह मरियल शैतान-सा सब्जपोश,
उसके कुटिल चेहरे से जाहिर है क्रोध, अशाति व-जोश।
बाइबिल पर एतराजो का है एक सैलेरवा,
हाथ मे परचम लिये करता है सैरे-आसमा।

इसके बाद मार्क्स आते है

और फिर तूफान की मानिद ये कौन आ गया?
त्रियेर का बाशिदा काले बाल गुस्से मे भरा।
उसकी आमद जैसे एक पर्वत-सा आ फटा,
जिसकी आखो से टपकता है उन्मत्त हौसला।
हाथ बेबाकी से है इस तरह से आगे बढ़े,
फेक देगा आसमानो की तनावे नोच के।

भविष्य ने दिखा दिया कि मार्क्स और ब्रूनो बावेर के जीवन-मार्ग, जो १८४१ में धर्म की आलोचना पर उनके साथ-साथ काम करने के दौरान परस्पर मिले, बाद में अलग हो जाने वाले थे। समय के गुजरने के साथ बावेर का सैद्धांतिक "आतंकवाद" सरकार के प्रति अधिकाधिक वफादार बनता गया और फिर तर्कसंगतत बिस्मार्क के अत्यंत स्वामिभक्तिपूर्ण समर्थन में रूपांतरित हो गया, जिसने जर्मन सामाजिक-जनवादियों के खिलाफ बुर्जुआ आतंक-शासन का नेतृत्व किया।

१८४३ में ही मार्क्स धर्म की आलोचना में बावेर से बहुत आगे बढ़ गये थे। *Deutsch-Französische Jahrbücher* में प्रकाशित लेखों में उन्होंने दिखाया कि धर्म की मूलभूत आलोचना के लिए महज धर्म का दार्शनिक खंडन ही काफी नहीं है।

बादलों में उड़ कर "आसमानों के खंभे गिराना" असंभव है। इसके लिए तो उसे जमीन पर खड़ा होना चाहिए। धर्म की जड़ें मूलतया "सांसारिक" हैं। धर्म की दयनीयता सामाजिक संबंधों की वास्तविक दयनीयता की ही एक अभिव्यक्ति है। वे ही इसके जन्मदाता हैं।

ईश्वर के समक्ष "ईश्वर के दासों" की विनम्रता मात्र समाज में मनुष्य की हेय, उत्पीड़ित, पराधीन स्थिति की एक अभिव्यक्ति है, इस तथ्य की अभिव्यक्ति है कि सामाजिक संबंध अभी वस्तुतः मानवीय नहीं बने हैं।

"धर्म एक ऐसे मनुष्य की आत्म-चेतना और आत्मबोध है, जिसने या तो अभी अपने को पाया नहीं

है या अपने को पुन खो दिया है।"* यह अमानवीय दुनिया की उपज है, जहा मनुष्य ऐसी शक्तियों द्वारा शासित होता है, जिन्हे वह समझ नही सकता।

"सिर के बल खड़ी दुनिया" "सिर के बल खड़े" विश्व-दृष्टिकोण को जन्म देती है। आसुओं की घाटी में वह आदमी, "जिसने अभी अपने को पाया नही है," परलोक के भ्रामक सपनों में सात्वना की तलाश करता है। चूकि वह पृथ्वी पर सुखी नही है, इसलिए स्वर्गसुख के बारे में उपदेशों मे ही अपने को आश्वस्त करता रहता है।

अपनी मुक्ति के लिए सघर्ष और प्रकृति के साथ सघर्ष मे अपने को दुर्बल और असहाय पाकर मनुष्य ईश्वर को सर्वशक्ति-सपन्न मान लेता है। उसका जीवन इतना दीनता-भरा है कि वह ईश्वर मे ही कुछ सतोष पाने की कोशिश करता है। यही वजह है कि उस काल का धर्म केवल "हृदयविहीन दुनिया का हृदय" और "आत्माविहीन परिस्थितियों की आत्मा" ही नही, बल्कि इस दुनिया और इन परिस्थितियो के विरुद्ध एक प्रतिवाद भी था।

लेकिन यह प्रतिवाद एक निष्क्रिय प्रतिवाद है। यह मात्र एक दास, "उत्पीडित प्राणी की आह" है। दयनीयता (सामाजिक और व्यक्तिगत) कोई ऐसी चीज नही है, जो ईश्वरीय का विलोम हो, बल्कि यह तो उसका एक

---

* का० मार्क्स, 'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास', १८४३-४४।

अनिवार्य गुण है। एक दूसरे को जन्म देता और निर्धारित करता है।

धर्म के खिलाफ उग्र सघर्ष "उस दुनिया" के खिलाफ सघर्ष की अपेक्षा करता है, "जिसकी आत्मिक सात्वना धर्म है"। यह अलगाव के सभी रूपो से मनुष्य की मुक्ति के लिए सघर्ष, उसके पूर्ण विकास के लिए सघर्ष है।

ब्रूनो बावेर और लुडविग फायरबाख भी धर्म की आलोचना पर रुक गये, जबकि "धर्म की आलोचना सभी आलोचना का पूर्वाधार है"*।

यदि, जैसा कि फायरबाख का विचार था, मनुष्य स्वय ही मनुष्य के लिए ईश्वर है, तो मार्क्स ने यह तर्कसगत निष्कर्ष निकाला कि उन सभी **संबंधों को**, जिनमे मनुष्य हेय, पराधीन, असहाय और घृणित प्राणी है, *समाप्त कर दिया जाना चाहिए*, ऐसे सबध, जिनका वर्णन एक फ्रासीसी के उस उद्‌गार से बेहतर ढग से नही किया जा सकता, जो उसने तब व्यक्त किये थे, जब कुत्तो पर कर लगाया जाना तय हुआ था "बेचारे कुत्तो! तुमसे भी मनुष्यो जैसा वर्ताव किया जाने लगा है!"**

अपने डाक्टर की डिग्री सबधी शोध-प्रबध मे मार्क्स

---

* का० मार्क्स, 'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास'।

** वही

ने ईश्वरो को जो साहस-भरी चुनौती दी, उसके परिणामो को दर्शाने मे हम कुछ आगे निकल आये है। शोध-प्रबध के इस निष्कर्ष से कि "अबुद्धि ही ईश्वर का अस्तित्व है", "बुद्धिरहित" दुनिया के क्रांतिकारी रूपातरण की आवश्यकता सबधी निष्कर्ष पर पहुचने के लिए बस एक डग ही भरना था। लेकिन यही डग था, जिसने उग्र तरुण हेगेलवादी को क्रातिकारी से अलग किया।

धर्म की आलोचना तो मात्र एक दिशा थी, जिसमे युवा मार्क्स के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ। बाद के विद्यार्थी जीवन मे उनकी मुख्य दिलचस्पी दर्शन मे थी। धर्म के प्रति मार्क्स का आलोचनात्मक रुख मुख्यतया उनके दार्शनिक विकास द्वारा निर्धारित हुआ।

अनिवार्य गुण है। एक दूसरे को जन्म देता और निर्धारित करता है।

धर्म के खिलाफ उग्र सघर्ष "उस दुनिया" के खिलाफ सघर्ष की अपेक्षा करता है, "जिसकी आत्मिक सात्वना धर्म है"। यह अलगाव के सभी रूपो से मनुष्य की मुक्ति के लिए सघर्ष, उसके पूर्ण विकास के लिए सघर्ष है।

ब्रूनो बावेर और लुडविग फायरबाख भी धर्म की आलोचना पर रुक गये, जबकि "धर्म की आलोचना सभी आलोचना का पूर्वाधार है"*।

यदि, जैसा कि फायरबाख का विचार था, मनुष्य स्वय ही मनुष्य के लिए ईश्वर है, तो मार्क्स ने यह तर्कसगत निष्कर्ष निकाला कि उन सभी संबंधों को, जिनमे मनुष्य हेय, पराधीन, असहाय और घृणित प्राणी है, समाप्त कर दिया जाना चाहिए, ऐसे सबध, जिनका वर्णन एक फ्रासीसी के उस उद्गार से बेहतर ढग से नही किया जा सकता, जो उसने तब व्यक्त किये थे, जब कुत्तो पर कर लगाया जाना तय हुआ था "बेचारे कुत्तो! तुमसे भी मनुष्यो जैसा बर्ताव किया जाने लगा है!"**

अपने डाक्टर की डिग्री सबधी शोध-प्रबध मे मार्क्स

---

* का० मार्क्स, 'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास'।

** वही

ने ईश्वरो को जो साहस-भरी चुनौती दी, उसके परिणामो को दर्शाने मे हम कुछ आगे निकल आये है। शोध-प्रबध के इस निष्कर्ष से कि "अबुद्धि ही ईश्वर का अस्तित्व है", "बुद्धिरहित" दुनिया के क्रांतिकारी रूपातरण की आवश्यकता सबधी निष्कर्ष पर पहुचने के लिए बस एक डग ही भरना था। लेकिन यही डग था, जिसने उग्र तरुण हेगेलवादी को क्रातिकारी से अलग किया।

धर्म की आलोचना तो मात्र एक दिशा थी, जिसमे युवा मार्क्स के वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ। बाद के विद्यार्थी जीवन मे उनकी मुख्य दिलचस्पी दर्शन मे थी। धर्म के प्रति मार्क्स का आलोचनात्मक रुख मुख्यतया उनके दार्शनिक विकास द्वारा निर्धारित हुआ।

५

"दर्शन के बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती"

दार्शनिक अन्वेषण की पहली आवश्यकता एक साहसी, स्वतत्र मस्तिष्क है।

कार्ल मार्क्स*

मार्क्स के इस वक्तव्य को, जो उनके डाक्टर की डिग्री सबधी शोध-प्रबध की प्रारभिक नोटबुको से लिया गया है, पदान्वित किया जा सकता है, क्योंकि दार्शनिक जानकारी एक साहसी, स्वतत्र मस्तिष्क के लिए यानी स्वतत्र सैद्धातिक चितन के लिए उतना ही आवश्यक आधार है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण स्वय मार्क्स है।

हम पहले देख चुके है कि न्यायशास्त्र के क्षेत्र में स्वतत्र सैद्धातिक अध्ययन शुरू करते ही उन्होंने पाया कि वह दार्शनिक ज्ञान मे पूरी तरह से लैस नही है। उन्होंने अनुभव किया कि वह सिद्धात के उन सामान्य रूपो में पारगति प्राप्त किये बिना ठोस क्षेत्र मे कोई प्रगति नही कर सकते, जिनमे सैद्धातिक चितन आगे बढने और

---

* का० मार्क्स, 'एपिक्यूरियन दर्शन पर नोटबुक'।

एक विकासमान विषय की विश्वसनीय प्रतिकृति प्रस्तुत करने मे समर्थ है।

हेगेल की सुप्रसिद्ध उक्ति के अनुसार, मिनर्वा का उल्लू – बुद्धिमत्ता और दर्शन का प्रतीक – झुटपुटे मे, जीवन के सूर्यास्त के समय उडान भरता है, जबकि रोज़मर्रा के सभी कार्य सपन्न कर लिये जा चुके होते है और विचार आत्म-चेतना के शिखरो तक उठता है, ताकि वहा आत्मा के सुप्त जगत के ऊपर अपनी निश्शब्द उडाने भरे। इस अवधारणा की व्याख्या इस अर्थ मे की जा सकती है कि दर्शन का अध्ययन बूढे लोगो का एक विषय है, जो जीवन के अपने अनुभव से बुद्धिमान बन गये है। लेकिन वस्तुस्थिति यह नही है।

कहा जा सकता है कि मानव सस्कृति की महान प्रयोगशाला मे, जो युवा मस्तिष्क को प्रौढता मे ढालती है, दो क्षेत्र विशिष्ट भूमिका अदा करते है। ये कला और दर्शन है।

भौतिक विज्ञान को जाने बिना गणितशास्त्र का अध्ययन किया जा सकता है (हालाकि यह सर्वोत्तम विधि नही है), पदार्थों के प्रतिरोध के बारे मे जानने का कोई कष्ट किये बिना डाक्टर बना जा सकता है और खगोल विज्ञान की कोई धारणा के बिना मशीनो का आविष्कार किया जा सकता है। लेकिन कला और दर्शन के ज्ञान के बिना सुसस्कृत आदमी नही बना जा सकता। मैं इससे भी स्पष्ट रूप मे कहूगा कि उनके बिना तो कार्यकलाप के किसी भी ठोस क्षेत्र मे कोई वस्तुत रचनात्मक सफलता नहीं प्राप्त की जा सकती।

यह बात कुछ विचित्र-सी लग सकती है। हमें पृथ्वी की सभ्यता प्राप्त है, जो पूर्ववर्ती पीढियों और वर्तमान पीढियो के श्रम का फल है। ये नगर – इन्हे निर्माताओ और वास्तुकारो ने बनाया है। ये नहरे, पुल और सडके – इनका निर्माण मजदूरो और इजीनियरो ने किया है। ये फैक्टरिया, मशीने, धमन-भट्ठिया, मशीन-औजार, कारे और लारिया, विमान, राकेट – ये सभी वैज्ञानिको, डिजाइनरो, तकनीशियनो और मजदूरो के कार्यरत मस्तिष्क और कठिन परिश्रम की उपज हैं। ये पकती हुई फसलें – इन्हें कृषिविज्ञानियो और किसानो ने उगाये है। ये सभी मानवजाति के गौरव और आनद की चीजे है। यह मानव-जीवन का केन्द्र और मर्म है। लेकिन इन सब मे हम दार्शनिको का श्रम कहा पाते है?

दर्शन का "व्यावहारिक" उपयोग क्या है? क्या यह दुनिया मे खाली हाथ नही आता है? अनुप्रयुक्त विज्ञानो के विपरीत, इसके परिणाम नयी मशीनो अथवा अधिक सुदक्ष टेक्नोलाजिकल प्रक्रियाओ मे साकार नही होते। यह ऊर्जा के शक्तिशाली स्रोतो की खोज नही करता और न ही संश्लिष्ट पदार्थो अथवा नये औषधीय नुसखो की रचना करता है।

स्पष्टतया, दर्शन पर उनमे भिन्न कसौटियों से विचार किया जाना चाहिए, जो प्राकृतिक विज्ञानो पर लागू की जाती है। उपयोगितावादी दृष्टिकोण यहा उसी तरह अस्वीकार्य है, जिस तरह यह, उदाहरणार्थ, कला-कृतियो के सामाजिक महत्व के मूल्याकन मे अस्वीकार्य है।

यह पूछना बिल्कुल हास्यास्पद है कि किसी कलाकृति का क्या व्यावहारिक उपयोग है?

कला हमें उदात्त और सुसस्कृत बनाती है, सौदर्यात्मक सुख प्रदान करती है, प्रेम और घृणा करना, रगो और बिम्बो में दुनिया को देखना-समझना सिखलाती है। यह सही है। यही स्थिति दर्शन के साथ है। जहा कला हमारी भावनाओं को परिष्कृत करती है, दुनिया के बारे मे हमारी सौदर्यात्मक अनुभूति को विकसित करती है, वहा दर्शन (इसके अन्य महत्वपूर्ण कार्यकलापो के अलावा) बुद्धि, सैद्धांतिक चिंतन की योग्यता को परिष्कृत करता है। जहा कला सौंदर्य को हृदयगम करना सिखलाती है, वहा दर्शन द्वद्वात्मक स्तर पर सोचना सिखलाता है।

जहा कला का अध्ययन चितन के सौदर्यात्मक पहलू, इसकी कल्पना-सृष्टि करने, अनपेक्षित सपर्क-सूत्रो और साहचर्यो की खोज करने की क्षमता को विकसित करता है, वहा दर्शन का अध्ययन उच्चतम कोटि के सामान्यीकरण करने की हमारे चितन-मनन की क्षमता, अवधारणाओं के द्वद्वात्मक लचीलेपन की क्षमता को विकसित करता है। यह हमें किसी वस्तु को अलग-थलग रूप में नही, बल्कि निरतर बदलते सबधो की बहुमुखी प्रणालियों की दुनिया के एक अभिन्न अग के रूप मे देखना सिखलाता है।

दर्शन चूंकि मानव के सैद्धातिक विकास का सारतत्त्व है, जो ज्ञान मे अब तक की प्रगति के परिणामो को सश्लेपित करता है, तो इस नाते ही दर्शन व्यक्ति की

केवल कूपमडूक मस्तिष्क के भोडेपन को ही दर्शन एक बेकार पेशा नजर आता है। दर्शन के प्रति कूपमडूक रुख की तुलना सुकरात की चिडचिड़ी पत्नी, अमर क्सान्थिप्पे के अपने पति—"दुनिया की प्रतिमा और शिक्षक" (मार्क्स) — के प्रति रुख मे की जा सकती है। क्सान्थिप्पे घर-गृहस्थी का ध्यान नही रखने और "बेहूदी बातो" की खातिर अपने परिवार की सुख-समृद्धि की चिता करने से इन्कार करने के लिए सुकरात को गाली देने और उन पर कीचड फेकने मे भी कभी नही बाज आयी। वह इस बात से बहुत चिढी हुई थी कि जबकि दूसरे कम योग्य और कम चतुर पतियों ने उच्च पद, सम्मान और धन-दौलत प्राप्त कर लिया था, उसका सुकरात पैवद लगे कुर्ते मे नगे पाव जाता था और अपने शिष्यो द्वारा दिये गये अत्यल्प अध्यापन-शुल्क को भी लेने से इन्कार कर देता था।

"सहज बुद्धि" को इस बात मे कोई श्रेय नही दिखायी देता कि मूर्त विज्ञानो और कलाओ के विपरीत दर्शन का विशेष उद्देश्य मनुष्य को चिंतन करना सिखाना है। उल्टे, कूपमडूक तो इसमे दोष ही देखता है, क्योकि उसके लिए सैद्धातिक चिंतन का कोई उपयोग नही होता। उसकी नजर मे यह व्यक्ति को सनकी, "इस दुनिया का नही" बनाता है।

अपने शोध-प्रबध सबधी नोटबुको मे मार्क्स लिखते है कि मानव सहज बुद्धि "मानती है कि इसे दार्शनिको के मुकाबले अपनी बेहद मूर्खतापूर्ण तुच्छ और घिसी-पिटी

वातो को *terra incognita*" ('अज्ञात प्रदेश' – सं०) "के रूप मे रखने का अधिकार है। चूंकि यह अडो को सीधा खडा कर सकती है, इसलिए अपने को कोलम्बस सोचने लगती है।"

कूपमडूक समझता है कि दर्शन झाड़ने से अधिक आसान कुछ भी नही है और वह स्वयं भी "छिछले स्थानो मे गूढ दर्शन" झाडने को तैयार रहता है, जो नैतिक उपदेश देने और सूर्य तले सभी चीजों के बारे मे मेज-वार्ता के अलावा और कुछ नही होता।

अच्छी से अच्छी दशा मे दर्शन के प्रति "बुद्धिसंगत" दृष्टिकोण सामान्यतया कतिपय दार्शनिक अवधारणाओं मे पारगति प्राप्त करना और नियमो तथा प्रवर्गों को कठस्थ करना है, ठीक वैसे ही जैसे कोई भौतिक विज्ञान या गणितशास्त्र मे नियमो और फार्मूलो को कठस्थ कर लेता है। लेकिन यह "ज्ञान" तो उच्चतर गणितशास्त्र के क्षेत्र मे अनुसधान के लिए गुणन-सारणी के ज्ञान से भी कम उपयोगी है।

यथातथ्य विज्ञान वहा शुरू होते हैं, जहां निश्चित, निर्विवाद, आनुभविक रूप मे सिद्ध सत्यो का प्रश्न उठता है। दर्शन वहा समाप्त होता है, जहा यह अंतिम सत्यों की घोषणा आखिरी दृष्टात मे करने का प्रयास करता है।

किसी एक दर्शन प्रणाली के बने-बनाये परिणामों का अध्ययन करके तो सैद्धांतिक रूप मे सोचना नही सीखा जा सकता। अपने अमूर्त रूपो मे मानव-चिंतन

के विकास के इतिहास के रूप मे दर्शन के सपूर्ण इतिहास का अध्ययन करना आवश्यक है।

लेनिन ने लिखा कि हेगेल के सपूर्ण 'तर्कशास्त्र' का सम्यक् अध्ययन किये और समझे बिना मार्क्स की 'पूंजी' को समझना असंभव है। लेकिन इसी तरह, शेल्लिंग, फिख्ते, काट, लीबनिज, स्पिनोजा, अरस्तू, प्लेटो, सुकरात, डेमोक्रिटस और हेराक्लिटस के दर्शन के बिना हेगेल के 'तर्कशास्त्र' को भी सपूर्ण रूप से समझना असभव है।

इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि दार्शनिक और सामाजिक चिंतन के संपूर्ण इतिहास का पूर्ण ज्ञान प्राप्त किये बिना हेगेल के 'तर्कशास्त्र' पर काबू पाना, हेगेल से आगे बढ जाना, एक नये विश्व-दृष्टिकोण का सृजन करना असभव था। हेगेलीय प्रणाली के ढांचे के भीतर ही चक्कर काटते हुए, इसकी प्रस्थापनाओ की व्याख्या करते हुए, उनके सिद्धात के कभी इस पहलू और कभी उस पहलू पर विचार करते हुए १८३० के दशक के युवा हेगेलवादियो ने अपने को एक दुष्चक्र मे फसा पाया और वे आगे की ओर एक भी महत्वपूर्ण डग नही भर पाये। उन्होंने इस प्रश्न पर गभीरतापूर्वक वाद-विवाद किया कि हेगेलीय दर्शन में "विश्व-चित्त" के अपने लक्ष्य—आत्मज्ञान पर पहुंच जाने के बाद दुनिया का क्या होगा।

मार्क्स कभी भी कट्टर हेगेलवादी नही थे। हम पहले ही देख चुके है कि शुरू मे हेगेल के सिद्धात के प्रति उनका



गेओर्ग विल्हेल्म फ्रेडरिक-हेगेल 65

जिसमे एक नये विश्व-दृष्टिकोण का अन्वेषण हो रहा था।

भाववाद के ढाचे के भीतर हेगेल को परास्त नही किया जा सकता था और कोई भी भाववादी सिद्धात इस मामले मे सहायता नही कर सकते थे। यहा तो मात्र भौतिकवाद से ही काम लिया जा सकता था।

डाक्टर की डिग्री सबधी शोध-प्रबंध अभी भी भौतिकवादी दृष्टिकोण की ओर मार्क्स के सक्रमण का प्रमाण नही है, लेकिन यह भाववाद से उनके असतोष को स्पष्ट कर देता है, जिसने दर्शन को यथार्थ से अलग कर दिया और इसे परिकल्पना के दायरे मे डाल दिया। परिणाम यह हुआ कि दर्शन और "ससार" के बीच, विचारो और यथार्थ के बीच एक खाई बन गयी। "ससार" दर्शन के लिए और दर्शन "ससार" के लिए पराया था। "अपने को साकार करने की आकाक्षा से अनुप्राणित" दर्शन का "शेष ससार से तनावपूर्ण सबध" बन जाता है।

जैसे-जैसे "ससार" दार्शनिक बनता जाता है, वैसे-वैसे दर्शन "सासारिक" हो जाना चाहता है। इसका अर्थ यह है कि हेगेलीय दर्शन मे अन्तर्निहित "आतरिक आत्म-सतोष और पूर्णता" भग की जा चुकी है।

हेगेलीय दर्शन हेगेलवादियो के विभिन्न सिद्धातो मे विभक्त होकर ढहने लगता है। "वह चीज, जो आरभ मे दर्शन और ससार के बीच एक प्रतिलोमित सबध

और विरोधी प्रवृत्ति के रूप में प्रकट होती है, बाद में अलग दार्शनिक आत्म-चेतना का अपने में विच्छेद बन जाती है और अंत में दर्शन के बाह्य पृथक्करण और द्वैत के रूप में, दो परस्पर-विरोधी दार्शनिक प्रवृत्तियों के रूप में प्रस्तुत होती है।"*

मार्क्स हेगेल के चाटुकार और पराश्रित अनुयायियों पर मर्मांतक कटूक्तियों की झड़ी लगा देते हैं। ये छुटभैये, जिनका अपना कोई व्यक्तित्व नहीं होता, प्राय. "अतीत के किसी दार्शनिक महाकाय की पीठ के पीछे अपने को छिपाते हैं, लेकिन शेर की खाल में गीदड़ का भेद तुरत ही खुल जाता है। आज या कल के किसी पुतले की गिड़गिड़ाती आवाज युग-युगों से गूंजती ओजस्वी आवाज की भोंडी नकल मात्र प्रतीत होती है।"**

तीक्ष्ण प्रहार करते हुए मार्क्स दो-दो चश्मों से लैस किसी बौने का व्यंग्यचित्र खींचते हैं, जो एक महाकाय के अवशिष्ट पदार्थ के पर्वत पर खड़ा होकर दुनिया को यह बता रहा होता है कि यहां से कितना अनूठा क्षितिज दिखायी देता है और यह समझाने के प्रयास में अपने को हास्यास्पद बना लेता है कि आर्किमिडीज़-बिंदु प्रवाही हृदय में नहीं, बल्कि उस "ठोस वास्तविक आधार" में पाया गया है, जिस पर वह खड़ा है। "इस तरह,

---

* का॰ मार्क्स, 'प्रकृति के डेमोक्रिटियन और एपिक्यूरियन दर्शन के बीच अंतर'।

** वही।

वालो, नाखूनो, अंगुलियों और मल के दार्शनिक तथा दूसरी ऐसी ही हस्तिया पैदा होती है." *

यहा मार्क्स एक ओर, दक्षिणपथी हेगेलवादियो के दरिद्रतापूर्ण दृष्टिकोण के खिलाफ और दूसरी ओर, हेगेल की पूजा, उनकी शिक्षा को परम विचार का दर्जा देने के खिलाफ, उस तर्क के खिलाफ प्रहार कर रहे हैं कि दर्शन का अनुवर्ती विकास मात्र हेगेलीय दर्शन के विभिन्न लक्षणो और पहलुओ की व्याख्या के मार्ग पर आगे बढा।

इस सबध मे हेगेल के दर्शन के भाग्य की तुलना अरस्तू के दर्शन के ऐतिहासिक भाग्य से की जा सकती है, जिसे मध्ययुगीन टिप्पणीकारो ने बिल्कुल नपुंसक बना दिया। अरस्तू के विचारो को एक प्रकार की प्रार्थना-पुस्तक मे बदल दिया गया, उनकी प्रतिष्ठा का इस्तेमाल धार्मिक विश्वास के प्रभुत्व को बढावा देने के लिए किया गया। उनकी अचूकता मे विश्वास बेहूदेपन की चरम सीमा तक पहुच गया। मिसाल के तौर पर, कहा जाता है कि जब १७वी सदी मे एक जेसुइट प्रोफेसर को टेलीस्कोप से खुद यह देखने के लिए बुलाया गया कि सूर्य पर धब्बे हैं, तो उसने खगोलज्ञ किर्खेर को उत्तर दिया: "यह बेकार है, वत्स। मैंने अरस्तू को आदि से अत तक दो बार पढा है और मुझे सूर्य पर धब्बे होने का ज़रा भी

---

* का० मार्क्स, 'प्रकृति के डेमोक्रिटियन और एपिक्यूरियन दर्शन के बीच अतर'।

सकेत नही मिला। अत. ऐसे धब्बे नही है।"

दर्शन के प्रति इस "भक्तिमय" दृष्टिकोण ने, चाहे यह "महाकायो" का ही दर्शन क्यो न हो, मार्क्स के आलोचनात्मक मस्तिष्क को सतुष्ट नही किया। उनके शब्दो मे, "कोई भी हस्ती या सद्विश्वास तो यह मानने का सबसे कम आधार हो सकता है कि यह या वह दर्शन सच्चा है, भले ही यह हस्ती सारी जनता हो या यह विश्वास सदियो से चला आ रहा हो"।* इसीलिए, मार्क्स कहते है कि दार्शनिक अन्वेषण की पहली आवश्यकता एक साहसी, स्वतत्र मस्तिष्क है, जो प्राप्त कामयाबियो से सतुष्ट होकर बैठ नही जाता, बल्कि अतीत की विरासत का रचनात्मक ढग से विश्लेषण करता है तथा नयी कामयाबियो के लिए प्रयास करता है।

अत, धर्म के साथ दर्शन की तुलना नही की जा सकती। दर्शन अध-श्रद्धा या विश्वास पर आधारित कोई सर्वोच्च प्रतिष्ठा की पूजा को बर्दाश्त नही कर सकता।

मार्क्स हेगेल मे अरस्तू की बराबरी का ही एक चितक और अरस्तू के बाद के दर्शन (एपिक्यूरियन, स्टोइक और सदेहवादी) के भाग्य तथा हेगेलीयोत्तर दर्शन के भाग्य के बीच कुछ मिलती-जुलती चीज देखते है। जहा दक्षिणपथी हेगेलवादियो ने दर्शन के मुकाबले धर्म की सर्वोच्चता को सिद्ध करने की कोशिश की और "प्रतापी" प्लुटार्क की भाति दर्शन को "धर्म के न्यायालय" मे ला खड़ा किया,

---

* का० मार्क्स, 'एपिक्यूरियन दर्शन पर नोट

वहा मार्क्स दर्शन की "सर्वोच्च प्रतिष्ठा" की हिमायत करते है। "जब तक दर्शन के विश्व-विजयी और पूर्णतया मुक्त हृदय मे खून का एक कतरा भी स्पदित होता रहेगा, तब तक यह एपिक्यूरस के इन शब्दों से अपने विरोधियो को हमेशा उत्तर देता रहेगा· 'भीड जिन देवताओ की पूजा करती है, उनको अस्वीकार करने वाला आदमी अपवित्र नही है, बल्कि वह आदमी वास्तव मे अपवित्र है, जो देवताओ के बारे मे भीड़ के विश्वास को पुष्ट करता है।'"*

अरस्तू के बाद का दर्शन यूनानी दर्शन का शीर्ष-बिंदु था। इसने दास-स्वामित्व वाली दुनिया के पतन और एक नये युग के आरंभ की सूचना दी। हेगेलीयोत्तर दर्शन भी उसी ऐतिहासिक स्थिति मे था। इसके सामने "टुकडे-टुकडे हो चुकी दुनिया" थी। इसके "हार्प" "एओलसी हार्प" थे, जिनके तारो को तूफान झकझोर रहा था। "किंतु इस तूफान से, जो एक महान दर्शन, एक विश्व-दर्शन का अनुगमन कर रहा है, अपने को गुमराह नही होने देना चाहिए।"**

तूफान की यह प्रत्याशा, एक नये "महाकाय" युग की प्रत्याशा १९वी सदी के चौथे दशक के अंत और पाचवे दशक के प्रारभ मे मार्क्स की मनोदशा को बहुत

---

* का० मार्क्स, 'प्रकृति के डेमोक्रिटियन और एपिक्यूरियन दर्शन के बीच अतर'।

** का० मार्क्स, 'एपिक्यूरियन दर्शन पर नोटबुक'।

ही लाक्षणिक ढग से अभिव्यक्त कर देती है, जब जर्मनी अपनी निद्रा से जगने लगा था और इसके आर्थिक, राजनीतिक और बौद्धिक जीवन का पुनरुत्थान शुरू हो गया था, जिसने १८४८ की क्रातिकारी उथल-पुथल की पूर्वसूचना दी।

इसमे सदेह नही कि शोध-प्रबध लिखने के दौरान मार्क्स की "तूफान-पूर्व" मनोदशा अभी भी बहुत अस्पष्ट तथा वास्तविक राजनीति से दूर थी। यह मात्र भाववादी दर्शन के विस्तीर्ण प्रवर्गो मे ही अभिव्यक्त हो पायी थी। किंतु यह एक पलीते की तरह था, जो धीरे-धीरे जलते हुए एक विस्फोट पैदा करता है।

यह अभिलाक्षणिक है कि एक "तूफान" की भविष्यवाणी करने मे मार्क्स उन हेगेलवादियो की कायरतापूर्ण स्थिति पर प्रहार करते है, जो "हमारे शिक्षक को गलत ढग से समझते है," जो सोचते है कि "अनुपता ही परम आत्मा की सामान्य अभिव्यक्ति है"। वह "अधकचरे दिमागो" के विचारो की आलोचना करते है, जो सोचते हैं कि दर्शन और "ससार" के बीच कलह को "वास्तविक आवश्यकताओ से शाति-सधि द्वारा," "सशस्त्र फौजो को कम करके, उन्हे पृथक् करके" मिटाया जा सकता है।"*

यह "पृथक्करण" खास तौर से महत्वपूर्ण समस्याओ से आत्म-चेतना की दुनिया मे दर्शन के हटने मे व्यक्त

---

* का० मार्क्स, 'एपिक्यूरियन दर्शन पर नोटबुक'।

होता है। यह स्थिति भी अरस्तू के बाद की स्थिति से मिलती-जुलती है। इस प्रकार, मिसाल के लिए, मार्क्स एपिक्यूरियन, स्टोइक दर्शन की तुलना पतगे से करते हैं। "सबके लिए साझे सूर्य के अस्त हो जाने के बाद पतंगा वैयक्तिक, अपने लिए जलते लैम्प की रोशनी का आश्रय ढूंढता है।"*

परतु यहा मार्क्स न केवल नकारात्मक, बल्कि एक अत्यधिक आकर्षक पहलू भी देखते हैं – व्यक्ति में, उसके आत्मिक जगत् में, नीतिशास्त्र की समस्याओं में गहरी रुचि – यानी वह सब, जो यूनानी मानवतावाद के लिए अभिलाक्षणिक था।

इस दृष्टि से उन्होंने सुकरात के व्यक्तित्व पर जितना बडा ध्यान दिया, वह बहुत दिलचस्प है। युवा मार्क्स सुकरात में बुद्धिमत्तापूर्ण पुरुष के "आदर्श" से आकर्षित हुए, जिन्होंने दर्शन को सफलतापूर्वक रोजमर्रा के जीवन से जोडा और उसे प्राचीन एथेन्स की सडकों और चौकों पर ला खडा किया। "सुकरात की इतनी बडी महत्ता का कारण यह है कि उन्होंने अपने रूप में यूनानी जीवन से यूनानी दर्शन के सबध और अत इसकी आतरिक सीमा को प्रतिबिम्बित किया।"**

सुकरात ने प्रकृति और ब्रह्माड को समझने के लिए चिंतन-मनन पर बहुत कम ध्यान दिया। जब आदमी

---

* का० मार्क्स, 'एपिक्यूरियन दर्शन पर नोटबुक'।
** वही।

अपने ही बारे मे कुछ नही जानता, तो वह विश्व और ब्रह्माड के बारे मे कुछ कैसे जान सकता है?" अपने को जानो" – यही सुकरात के दर्शन का मूलमत्र है।

आदमी को जिन सबसे महत्वपूर्ण चीज़ो के बारे में जानना-समझना चाहिए, वे ये है· अच्छाई क्या है और बुराई क्या है? सौदर्य क्या है? न्याय क्या है? जीवन क्या है और मृत्यु क्या है? प्रेम क्या है और आनद क्या है?

लोगो के विचार मे, ये बहुत मामूली और सीधी-सादी बाते है, जो दार्शनिक चितन-मनन के बिल्कुल उपयुक्त नही है। लेकिन ठीक यही पर सुकरात अपने व्यग्य और अपनी द्वंद्वात्मक पद्धति को काम मे लाते है। वह किसी भी तर्क-प्रेमी के साथ तर्क-वितर्क करने के लिए तैयार रहते है और बुद्धू बन कर दूसरो से ज्ञान पाने के बहाने सीधे-सादे किंतु चतुराई से भरे ऐसे सवाल करते हैं, जो उनके आत्म-सतुष्ट विवादी के अज्ञान, द्वद्वात्मक ढग से सोचने और यह समझने की उसकी अयोग्यता की कलई खोल देते है कि एक ही कार्य दृष्टिकोण और परिस्थितियों के अनुसार अच्छा या बुरा हो सकता है।

मार्क्स के ही शब्दो मे, सुकरात का व्यग्य (मार्क्स और एगेल्स ने अपने वादानुवाद युद्धो मे उसे अक्सर इस्तेमाल किया) वह "प्रसूतिविद्या" है, जिसकी सहायता से सैद्धातिक विचार पैदा होते और परिपक्व बनते हैं।

सुकरात का व्यंग्य अपने "आत्म-सतुष्ट सर्वज्ञान" के साथ "मानव सहज-बुद्धि" के लिए "द्वद्वात्मक फदा"

है। मार्क्स के विचार मे, यह व्यग्य "साधारण चेतना" को चुनौती देने वाले सारे दर्शन का विशेष लक्षण है।*

सुकरात "दर्शन का मूर्त रूप" हैं, पहले तो इस अर्थ मे कि उनके रूप में हम दर्शन को कार्यान्वित, व्यवहार मे, जीवन में मूर्तित हुआ पाते हैं। ठीक इसी वजह से मार्क्स इसकी ऐतिहासिक रूप से प्रतिबधित सीमितता, इसकी "आत्मगतता", इसके निज मे प्रवृत्त होने को देखते है। लेकिन स्पष्टतया व्यक्तिगत, मानवीय स्तर पर यह सुकरात ही थे, जो युवा मार्क्स के लिए बुद्धिमत्तापूर्ण पुरुष का आदर्श, एक ऐसा सुसगत और ईमानदार दार्शनिक थे, जिन्होने वस्तुत. खुद अपने को मौत की सजा देने का निर्णय किया, क्योकि यह निर्णय उनके आतरिक विश्वास का तर्कसंगत परिणाम था।

मार्क्स का यह विचार सुकरात पर किसी भी दूसरे दार्शनिक से ज्यादा लागू होता है कि "दार्शनिक स्वय जीवत प्रतिमाए, जीवत कलाकृतिया है"**, उनके द्वारा सर्जित प्रणालियो और सिद्धातो के जीवत व्याख्याता हैं। युवा मार्क्स के विचार मे, दार्शनिक के व्यक्तित्व को उसकी शिक्षाओ से पृथक नही किया जा सकता।

इस दृष्टि से यह देखना बहुत दिलचस्प है कि कैसे मार्क्स अपने डाक्टर की डिग्री सबधी शोध-प्रबध तथा इसके लिए तैयार किये गये नोटो मे डेमोक्रिटस, एपिक्यूरस

---

* का० मार्क्स, 'एपिक्यूरियन दर्शन पर नोटबुक'।
** वही।

और प्लुटार्क के बारे मे वर्णन करते है। इन दार्शनिको के प्रति उनके रुख मे तथा इनमें वे जिन चीजो को पसद-नापसद करते है, उनमे युवा मार्क्स के व्यक्तित्व के लक्षण साफ-साफ व्यक्त होते हैं।

डेमोक्रिटस और एपिक्यूरस दो ऐसे दार्शनिक है, जिनके सिद्धातों को हमेशा समान या लगभग समान माना जाता रहा है। लेकिन मार्क्स दिखाते है कि यह सही नही है। हालाकि दोनो ने ही परमाणुवादी सिद्धात का एक ही विधि द्वारा प्रतिपादन किया, फिर भी जहा तक सत्य, प्रामाणिकता और इस सिद्धात के प्रयोग का सवाल है, वे एक दूसरे के एकदम विपरीत थे। यहा तक कि ज्ञान के प्रति भी उनका दृष्टिकोण एक दूसरे के विपरीत था।

डेमोक्रिटस ने अपने जीवन और अन्वेषणों के सिद्धात को निम्नलिखित रूप में व्यक्त किया. "फ़ारसी ताज पाने के बजाय मैं एक नये कार्य-कारण सबंध की खोज करना पसद करूगा।"*

---

* का० मार्क्स, 'एपिक्यूरियन दर्शन पर नोटबुक'।

डेमोक्रिटस यूनानियो के बीच पहले प्रकाड मस्तिष्क थे। वह परमाणुवादी दर्शन के एक संस्थापक थे। डेमोक्रिटस के अनुसार दो मूल तत्व – परमाणु और परिशून्यता – है। हालाकि सज्ञान के लिए सभी सामग्री इंद्रियो से प्राप्त होती है, फिर भी वे वस्तुओं के "धुधले" ज्ञान के अलावा और कुछ नही प्रदान करती। इससे भी उत्कृष्ट एक दूसरा, "उज्ज्वल", अधिक सूक्ष्म ज्ञान, बुद्धि के द्वारा ज्ञान है। यह ज्ञान अपने विश्लेषण मे परमाणुओं और परिशून्यता की खोज पर पहुचता है।

वह सभी चीजो मे कार्य-कारण के सबंध ढूढते हैं और सयोग को इन्कार करते हैं, जो "युक्तियुक्त चितन से लेशमात्र मेल नही खाता"। उन्हे अपने प्राप्त ज्ञान से निरतर असतोष बना रहता है। वह रेखागणित का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मिस्र और फारस में कैलडिया के निवासियो की यात्रा करते हैं। कुछ लोगो का तो यह भी विचार है कि उन्होंने हिन्दुस्तान की भी यात्रा की थी और योगियो से ज्ञान प्राप्त किया था।

अपने युग के इस प्रकाड मस्तिष्क ने ब्रह्मांड के सबसे विश्वसनीय परिकल्पनात्मक सिद्धात – परमाणुवादी सिद्धात – की रचना की, जिसके मूल लक्षणों को सदियो के दौरान ज्ञान के सपूर्ण विकास ने पुष्ट कर दिया है। फिर भी, उन्हे अपने ज्ञान से कभी सतोष नही हुआ। कहा जाता है कि उन्होंने स्वयं अपनी आखे फोड ली, ताकि आख का ऐंद्रिय प्रकाश बुद्धि की तीक्ष्णता को धुंधला न करने पाये।

एपिक्यूरस एक मूलतया भिन्न व्यक्ति थे और दर्शन के प्रति भी उनका एक अलग ही दृष्टिकोण था। जहा डेमोक्रिटस ने सभी से ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया, वहां एपिक्यूरस को अपने पर इस बात का गर्व था कि उनका कोई शिक्षक नही है, कि वह स्वयशिक्षित है और किसी की सहायता के बिना ही सत्य का अपना मार्ग खोजा है। डेमोक्रिटस की बेचैन आत्मा उन्हे दुनिया के सभी भागो मे ले गयी और उन्होंने ८० साल विदेशो मे विताये, जबकि एपिक्यूरस एथेन्स मे अपनी वाटिका

से मुश्किल से दो-तीन बार ही बाहर गये होंगे और वह भी अपने दोस्तो मे मिलने के लिए। वह दर्शन मे शांति और खुशी पाते थे और डेमोक्रिटस के विपरीत, उन्होंने यथातथ्य ज्ञान को जरूरी नही समझा। सभी चीजों का ज्ञान प्राप्त करने मे अपने को असमर्थ पाकर डेमोक्रिटस ने निराशा मे अपनी आखे फोड ली, लेकिन जब एपिक्यूरस को लगा कि उनका अत समय निकट आ रहा है, तो उन्होने गर्म जल से स्नान किया, शुद्ध शराब का पान किया और अपने दोस्तो से दर्शन के प्रति निष्ठावान् बने रहने का अनुरोध किया।

एपिक्यूरस को परिघटना-आभास की ऐद्रिय अनुभूति मे पूरा विश्वास था। इसी वजह से जहा डेमोक्रिटस को सूर्य बृहत् प्रतीत हुआ, वहा एपिक्यूरस को यह लगभग दो फुट बडा प्रतीत हुआ यानी जितना बडा यह **दिखायी** देता है।

जिस आवश्यकता को डेमोक्रिटस सभी चीज़ो मे देखने की आशा करते हैं, उसे एपिक्यूरस अस्वीकार करते है। वह आवश्यकता को मनुष्य को उत्पीडित करने वाली अनिवार्य नियति, भाग्य की एक अभिव्यक्ति मानते हैं। वह इसे धर्म और देवताओ से सूत्रबद्ध करते है, जो मनुष्य के सभी कार्यकलापो को पूर्वनिर्धारित करते है। मनुष्य का व्यवहार स्वय उस पर, **संयोग** पर निर्भर होना चाहिए, न कि आवश्यकता पर।

एपिक्यूरस के अनुसार, आवश्यकता मे जीना दुर्भाग्य है, लेकिन ऐसा जीवन एक आवश्यकता हर्गिज नही है।

स्वाधीनता के मार्ग सभी दिशाओं में खुले हैं, वे अनेकानेक, छोटे और आसान हैं, केवल हमें आवश्यकता को "दबाना" चाहिए। उनके विचार में, हमें "संयोग को, न कि ईश्वर को" मानना चाहिए। इसके ठीक अनुरूप एपिक्यूरस डेमोक्रिटस के विपरीत अपने परमाणुवादी सिद्धांत में अणुओं का सांयोगिक विचलन लागू करते हैं।

मार्क्स ने पहली बार दिखाया (और इसमें उनके शोध-प्रबंध का शाश्वत वैज्ञानिक मूल्य निहित है) कि एपिक्यूरस के अणुओं का सांयोगिक विचलन उपहासास्पद सनक नहीं, जैसा कि बहुतों ने सोचा, बल्कि एक ऐसा नवाचार है, जिसने परमाणुवादी सिद्धांत में महत्वपूर्ण सुधार किया और इसके विकास में सहायता की। जिस चीज की ओर मार्क्स ने अपने द्वंद्वात्मक अंतर्ज्ञान से शासित होते हुए ध्यान खींचा, वह प्रायोगिक रूप से आधुनिक अवपरमाण्विक भौतिकी द्वारा, जिसने अनिश्चितता का सिद्धांत पेश किया, पुष्ट की जा चुकी है।

दार्शनिक दंभियों और कूपमंडूकों ने एपिक्यूरियन दर्शन को—अनीश्वरवाद और यूनानी प्रबोधन के दर्शन को, जिसने जीवन की सहज और नैसर्गिक खुशियों में मस्त रहने वाले स्वतंत्र व्यक्ति की सराहना की—अपनी कटु आलोचना का विषय बनाया।

इन आलोचकों में सबसे आगे "प्रतापी" प्लुटार्क हैं, जो मार्क्स के लिए "आत्म-संतुष्ट मूढ़ता", "अपने को बुद्धि का भंडार समझने वाली अहम्मन्यतापूर्ण सद्‌गुणता" का जीता-जागता उदाहरण हैं।

मार्क्स तिरस्कारात्मक ढंग से एपिक्यूरस के सुसंगत, सच्चे और साहसी तर्क—एक ऐसा तर्क, जो अपने निष्कर्षों से तनिक भी भयभीत नहीं होता, भले ही वे धर्म की अस्वीकृति की ओर ही क्यों न ले जायें—की तुलना प्लुटार्क के कायरतापूर्ण, अधकचरे, सारसंग्रहवादी दृष्टिकोण, उसकी धार्मिक, उपदेश से भरी बातों, उनकी आडंबरपूर्ण चाटुकारिता से करते हैं।

प्लुटार्क का तर्क अधकचरे दिमाग के बाजारू "दर्शन" का श्रेष्ठ उदाहरण है, जो अपनी "धार्मिकता", "सद्गुणों" में परलोक में भलाई और "शाश्वत सुख" की चिंता में ही संतोष प्राप्त करने की चेष्टा करता है, एक ऐसा "दर्शन", जो अपने तुच्छ "अहम्" की दरिद्रता और अध.पतन पर नैतिकता का चर्कीला खोल चढ़ाता है। प्लुटार्क की छवि मार्क्स को एक ऐसे व्यक्ति का स्मरण दिलाती है, जो भय से आक्रांत रहता, चाटुकारितापूर्वक गिड़गिड़ाता है और दूसरों को यह उपदेश देता है कि "यह बात कितनी अन्यायपूर्ण है कि अच्छे लोग मृत्यु के साथ अपने जीवन के फलों से वंचित हो जाते हैं"।* स्वभावतया, प्लुटार्क चिंतन के क्षेत्र में "शालीनता" के सभी उल्लंघनों की निन्दा करते हैं। प्लुटार्क को पढ़ते हुए हमें ऐसा लगता है मानो हम किसी दमघोटू "क्लास-रूम" में बैठे हों। "विश्व के नये, प्रखर, काव्यात्मक शिक्षक" एपिक्यूरस और लुक्रेशियस को पढ़ते हुए हमारे

---

* का० मार्क्स, 'एपिक्यूरियन दर्शन पर नोटबुक'।

सामने रंग-बिरंगे वस्त्रों में एक साहसी कलाबाज़ की छवि प्रस्तुत होती है और हम अपने को भूल जाते हैं, अपने से ऊपर उठ जाते हैं, आगे देखने और अधिक स्वतंत्रतापूर्वक सांस लेने लगते हैं।

ख़ैर, हर कोई अपनी बुद्धि से काम करता है। "जिस व्यक्ति को अपनी शक्ति से जगत् का निर्माण करने, जगत् का स्रष्टा होने की अपेक्षा अपने अंत जगत् को कुरेदने में ही अधिक संतोष प्राप्त होता है, उस पर आत्मा का अभिशाप होता है, वह बहिष्कृत होता है, लेकिन विपरीत अर्थ में, वह मंदिर से निकाला गया होता है और एक शाश्वत आत्मिक आनंद से वंचित होता है और उसे अपने व्यक्तिगत सुख-चैन के सोच से ही अपना मन बहलाना पड़ता है और रात को अपने ही सपने देखने पड़ते हैं।" *

निस्संदेह, प्लुटार्क के साथ मार्क्स का वादानुवाद दर्शन में उनके सभी आत्मिक अनुयायियों के साथ भी वादानुवाद था, जिनकी संख्या कोई कम नहीं थी। विज्ञान के "प्रतापी" छंटे हुए बदमाशों, प्लुटार्क के उन अनुयायियों का शब्दाडंबर जो जीवंत, स्पंदनशील विचार को अपनी लोरियों से बहला कर सुलाने के लिए नैतिक निषेधों और देशभक्तिपूर्ण उपदेशों का प्रपंच रचते थे, मार्क्स के स्वभाव से लेशमात्र मेल नहीं खाता था। अपनी

---

* का० मार्क्स, 'एपिक्यूरियन दर्शन पर नोटबुक', १८३६।

तेज कलम से उन्होंने प्लुटार्क मार्का "नैतिकता-भरी आलोचना और आलोचनात्मक नैतिकता" की सभी अभिव्यक्तियों को इतिहास के कटघरे में खड़ा कर दिया।

१६वीं सदी में टुटपुंजिया बुर्जुआ जनवादी कार्ल हेइज़ेन एंगेल्स के साथ वादानुवाद में उसी तरह की "आलोचना" का उतना ही ज्वलंत रूप था, जितना कि दो हज़ार साल पहले प्लुटार्क एपिक्यूरस के साथ वादानुवाद में। मार्क्स ने हेइज़ेन के रूप में "आलोचनात्मक कूपमडूकता" को निर्मम वाग्विदग्धता और व्यंग्य के तीरों से खूब अच्छी तरह भेदा है, जो बड़े गर्व के साथ डींग मारती है कि उसका मत दर्शन या ज्ञान नहीं, बल्कि "जीवन की पूर्णता" है, जो "महज़ बुद्धि" का उपदेश झाड़ती है, "आत्म-संतुष्ट सद्‌गुणी कूपमडूक की ईमानदारी-भरी चेतना" का प्रदर्शन करती है, कुछ "स्वल्प, थोथे" सत्यों को अडिग जड़सूत्रों में रूपांतरित करती है और "धर्म के ऐसे प्रतीक के विरोधियों के 'अंधेपन', 'मूढ़ता' और 'दुष्टता' के बारे में अपना नैतिक रोष बरसाती है"।*

मार्क्स ने प्लुटार्क के सभी अनुयायियों का यह जो तीव्र नकारात्मक मूल्यांकन किया है, उससे विज्ञान के प्रति उनका वास्तविक दृष्टिकोण और सच्चे दार्शनिक चिंतन के कार्य और भूमिका की उनकी समझदारी बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है।

---

* का० मार्क्स, 'नैतिकता-भरी आलोचना और आलोचनात्मक नैतिकता', १८४७।

जडसूत्र से, अपरिवर्तनीय, जडीभूत प्रस्थापनाओ से दर्शन लेशमात्र मेल नही खाता। यह हेगेलीय प्रणाली की अंतिमता, पूर्णता, परम और "परिकल्पनात्मक" स्वरूप ही था, जिसने मार्क्स को सतुष्ट नही किया। हम पहले ही देख चुके है कि कैसे उन्होने अपने डाक्टर की डिग्री सबधी शोध-प्रबध मे "ससार", यथार्थ से हेगेलीय दर्शन के अलगाव के खिलाफ अपनी आलोचना की पूरी शक्ति लगा दी।

उनके प्रारभिक दार्शनिक दृष्टिकोण के इस मूल विचार की तह मे एक विस्फोटक पलीता था और इसने शीघ्र ही मार्क्स को दर्शन के बारे मे दूरगामी निष्कर्षों पर पहुचा दिया।

चूकि अभी प्राकृतिक विज्ञान अल्प विकसित थे, इसलिए दर्शन कुछ समय के लिए यथातथ्य विज्ञानों के स्थान पर काम करने के लिए विवश था। इसने विश्व का एक सार्विक सिद्धात, विज्ञानो का राजा होने का दावा किया। हेगेलीय दर्शन मे इस दावे की पूर्णतम अभिव्यक्ति हुई। और इसीलिए हेगेलीय प्रणाली पुराने अर्थ मे दर्शन का समापन, इसका शीर्ष, इसका कुल योग और इसका निष्कर्ष थी।

मार्क्स ने अपने छात्र-जीवन के अतिम वर्षों मे यह भली-भाति समझ लिया था कि चित् के अगम्य राज्यो मे शासन करने वाले दर्शन, "विज्ञानो के इस राजा" के समक्ष जमीन पर उतरने की आवश्यकता प्रस्तुत हो गयी है। लेकिन उस समय वह अभी न तो कम्युनिस्ट,

न क्रांतिकारी जनवादी थे और न ही उन्होंने अभी राजनीति मे अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया था। स्वभावत, "ससार" के बारे मे उनका विचार और दर्शन को "ससार" मे सूत्रबद्ध करने के तरीके कुछ अमूर्त थे।

कोई तीन साल बाद ही हम मार्क्स को अपने 'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास' पर काम करते हुए पाते है। इसकी भूमिका मे उन्होंने क्रांतिकारी विश्व-दृष्टिकोण की सपूर्ण दृढता के साथ "संसार" मे दर्शन के सबध पर अपनी प्रस्थापना को सूत्रबद्ध किया।

मार्क्स के शब्दो मे, क्राति उस "दार्शनिक के मस्तिष्क मे शुरू होती है," जो उभरते हुए अतर्विरोधो को प्रतिबिम्बित करता है। परतु सैद्धातिक आलोचना का अस्त्र "अस्त्रो द्वारा आलोचना" का स्थान नही ले सकता। ज्योही सिद्धात जनसाधारण के मन में घर कर जाता है, त्योही यह भौतिक शक्ति बन जाता है।* अत, भौतिक शक्ति बनने के लिए दर्शन को अनिवार्यत क्रांतिकारी वर्ग अर्थात सर्वहारा के दर्शन के रूप मे काम करना चाहिए।

"जिस तरह दर्शन सर्वहारा मे अपना भौतिक अस्त्र पाता है, उसी तरह सर्वहारा दर्शन मे अपना आत्मिक अस्त्र पाता है और जैसे ही जनसाधारण की अछूती धरती पर विचार का तडित-आघात होगा, वैसे ही

---

* का० मार्क्स, 'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास'।

जर्मनों की मुक्ति हो जायेगी और वे मनुष्य बन जायेगे"।*

लेकिन "विद्यमान" दर्शन, अर्थात हेगेलीय दर्शन मे उस यथार्थ के सभी दोष है, जिसका उन्मूलन किया जाना चाहिए। इसलिए, "जब तक स्वय दर्शन का ही उन्मूलन नही किया जाता, तब तक दर्शन को यथार्थ मे नही बदला जा सकता।"** मार्क्स और एगेल्स ने वास्तव मे पूर्ववर्ती दर्शन का उन्मूलन किया। इस उन्मूलन का अर्थ मात्र अस्वीकृति नही था, बल्कि इसका अर्थ तो एक ऐसी क्राति था, जिसके परिणामस्वरूप सपूर्ण क्लासिकीय दर्शन, सर्वप्रथम हेगेल और फायरबाख की विरासत के आधार पर घातक "निबेलुगो की तलवार", भौतिकवादी द्वद्वात्मक पद्धति की रचना की गयी। इस पद्धति ने वैज्ञानिक कम्युनिज्म के सिद्धात मे उत्कृष्ट अभिव्यक्ति पायी, जो सर्वहारा का सच्चा सघर्ष-नारा, मानवजाति के मुक्ति-सघर्ष और मानवोचित समाज के निर्माण मे एक जबर्दस्त अस्त्र बन गया है।

मार्क्स की भविष्यवाणी के अनुसार २०वी सदी का सर्वहारा उत्पीडित, निर्धन वर्ग के रूप मे अपना उन्मूलन कर रहा है और मार्क्सवादी दर्शन को यथार्थ मे परिणत कर रहा है।

---

* का० मार्क्स, 'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास'।

** वही।

लेकिन आइए हम युवा मार्क्स की ओर लौट चलें और बर्लिन विश्वविद्यालय से पास होने के समय तक उनके आत्मिक विकास का सार प्रस्तुत करें।

युवा मार्क्स के डाक्टर की डिग्री संबंधी शोधप्रबंध से उनकी अनीश्वरवादी धारणा स्पष्ट हो जाती है। सुसंगत अनीश्वरवाद, जैसा कि हम जानते हैं, भाववाद से लेशमात्र मेल नही खाता। यह अनिवार्यतः भौतिकवाद की ओर लाता है। हालांकि अपने शोधप्रबंध में मार्क्स ने अभी भी भाववादी दर्शन से अपना नाता नहीं तोड़ा है, फिर भी उनका ध्यान यूनानी दर्शन के भौतिकवाद और प्रबुद्ध मानवतावाद की ओर मोड़ लिया गया है।

यहा यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि मार्क्स अपने शोध-प्रबंध के प्रकाशन की तैयारी कर रहे थे और सेसरशिप की वजह से अनेक बातों को अपने ढंग से खुल कर नही व्यक्त कर सके।

अपने आत्मिक विकास में मार्क्स अन्य हेगेलवादियों से बहुत आगे बढ़ गये थे। हालांकि वह अभी भी एक अज्ञात युवा विद्यार्थी थे और उन्होंने अभी तक भी सैद्धांतिक कृति प्रकाशित नहीं की थी, फिर भी तरुण हेगेलवादी आंदोलन की प्रमुख हस्तियों ने भी उनकी कुशाग्र बुद्धि का लोहा माना।

इस संबंध में मोज़ेस हेस – जर्मन "सच्चे समाजवादी" – का साक्ष्य विशेष रूप से दिलचस्प है। उस समय तक हेस एक सुप्रसिद्ध पत्रकार और दार्शनिक बन

६

"विद्यमान अवस्थाओं की निर्मम आलोचना"

जनता मे साहस का सचार करने के लिए आवश्यक है कि वह अपनी स्थिति की बीभत्सता पर दहल उठे।

कार्ल मार्क्स*

पी-एच० डी० की चिर-प्रतीक्षित डिग्री प्राप्त करने के बाद मार्क्स १८४१ के वसत मे अपने जन्म-नगर त्रियेर और वहा से बोन गये, जहा आने के लिए ब्रूनो बावेर उन्हे लबे अर्से से बुलावे पर बुलावा भेज रहे थे।

त्रियेर मे मार्क्स का अपने रिश्तेदारो और माता से सबध टूट गया। उनकी माता ने, जो अपने पुत्र को फिजूलखर्च और असफल मानती थी, उन्हे उनके पिता की पैतृक सपत्ति मे हिस्सा देने से इन्कार कर दिया। मार्क्स की माता और वेस्टफालेन परिवार के बीच भी झगडा खडा हो गया। इससे जेनी बडी मुसीबत मे फस गयी। मार्क्स को यह जान कर घोर क्लेश पहुचा कि

---

* का० मार्क्स, 'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास'।

चूंकि उनके पास परिवार के समर्थन के लिए कोई साधन नही है, इसलिए वह जेनी के साथ अपना भाग्य नही जोड सकते।

इन भावुकतापूर्ण घटनाओ के बावजूद, जो जेनी के साथ मार्क्स के परिणय-सूत्र मे बधने तक चलती रही, वह शक्ति, ओज और उत्साह से भरे हुए थे। वह अपनी प्रतिभा और ज्ञान का उपयुक्त प्रयोग करने के लिए अत्यंत उत्कठित थे और राजनीतिक जीवन मे सक्रिय भूमिका अदा करना चाहते थे।

मार्क्स २३ साल के हो गये थे, लेकिन पी-एच० डी० की श्रद्धास्पद डिग्री ने इस प्रफुल्ल नौजवान को, जो भाग्य के उतार-चढाव पर सदा मजाक और चुहलबाजी करने को तैयार रहता था, कोई "प्रतिष्ठा" प्रदान करती नही प्रतीत हुई।

पहले की भाति मार्क्स उल्लास-भरी मित्र-मडली के जान थे, एक ऐसे व्यक्ति, जिनसे कोई अपना दुखडा सुना कर मन हल्का कर सकता था और मर्मभेदी व्यंग्य-बाणो की, (जो हमेशा अहानिकर नही होते थे) "निर्मम बौछार" से आहत होने का खतरा मोल लेते हुए जी भर कर हस सकता था। नैतिक भ्रष्टता, चाटुकारिता और नीचता की लेशमात्र अभिव्यक्ति पर भी उनका व्यग्य निर्मम बन जाता था। और तब तो वह अपने "अच्छे से अच्छे दोस्त" को भी नही बख्शते थे।

मार्क्स ने स्वतत्र कार्यकलापो की विभिन्न योजनाए बनायी। १८४१ के वसंत मे उन्होंने ब्रूनो बावेर के साथ *Archiv des Atheismus* नामक उग्र पत्रिका निकालने

का विचार पेश किया। उदारतावादी बुर्जुआ वर्ग के एक नेता आर्नोल्ड रूगे ने, जो उस समय वामपथी पत्रिका *Deutsche Jahrbücher* निकाल रहे थे, इस सबध मे सितम्बर, १८४१ मे लिखा: "मेरा अब बुरा हाल है, क्योकि ब० बावेर, कार्ल मार्क्स, क्रिस्तियासेन और फायरबाख क्रातिकारिता की घोषणा करने जा रहे हैं अथवा कर चुके है और अनीश्वरवाद तथा आत्मा की नश्वरता का ध्वज फहरा दिया है। ईश्वर, धर्म और अनश्वरता पदच्युत कर दिये जायेगे और लोगो को ईश्वर घोषित किया जायेगा। एक अनीश्वरवादी पत्रिका निकलने वाली है और यदि पुलिस स्थिति को चरमावस्था तक पहुचने देती है, तो होहल्ला मचेगा, जिससे मगर बचा नही जा सकता।"*

लेकिन यह योजना कार्यान्वित नही हो पायी। बोन मे प्रोफेसरी प्राप्त करने की मार्क्स की आशाए भी पूरी नही हो सकी, क्योकि प्रतिक्रियावादी आलोचना के दबाव के कारण ब्रूनो बावेर को उनके अध्यापन-पद से हटा दिया गया और यह साफ हो गया कि वहा मार्क्स के लिए जगह पाने की सभावना और भी क्षीण हो गयी थी।

प्रत्यक्षत मार्क्स इस सबसे खास विचलित नही हुए। अपनी पोथियो मे मग्न रहने वाले विद्वान की लीक पर चलने वाला जीवन उन्हे पसद नही था। मार्क्स ने लुडविग

---

* ओ० कोर्नू, 'कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एगेल्स। जीवन और कार्य'।

फायरबाख के उदाहरण से कोई प्रेरणा नही ली, जो अपनी प्रिय पत्नी के साथ ग्रामीणक्षेत्र की एकातता मे जा कर बस गये थे और अपने को प्रकृति के शातिपूर्ण चितन-मनन तथा गीतात्मक दर्शनबाजी मे लगाने के लिए ब्रुकबेर्ग दुर्ग की मोटी दीवारो के पीछे बद होकर शेष दुनिया से नाता तोड लिया था, हालाकि वह शीघ्र ही कुछ समय के लिए फायरबाख के "नृवैज्ञानिक" भौतिकवाद के एक उत्कट समर्थक बन गये थे।

मार्क्स व्यवहार मे दर्शन और यथार्थ की एकता को बढाने वाले कार्यकलापो की चेष्टा करते थे। सैद्धातिक ज्ञान को "स्वय जीवन मे सक्रिय भागीदारी" से जोडने की यह चेष्टा पेशे के चुनाव पर उनके स्कूली निबध मे भी प्रतिबिम्बित हुई और विश्वविद्यालय में अध्ययन के वर्षो के साथ निरतर बढती गयी। इसे मार्क्स के राजनीतिक दृष्टिकोण के विकास, उनके बढते और गहन होते इस विश्वास से बल मिला कि विद्यमान सामाजिक यथार्थ अतर्कसगत, कुत्सित है और इसे क्रातिक .T परिवर्तन की आवश्यकता है।

आम तौर से लोग यह सोचते है कि अपने विश्वविद्यालय वर्षो में मार्क्स राजनीति से दूर रहे तथा "शुद्ध" सिद्धात के अध्ययन मे दिन-रात जुटे रहे। केवल विश्वविद्यालय से पास होने के बाद जाकर ही वह अचानक जीवत राजनीतिक प्रश्नो की ओर मुडे। लेकिन स्पष्टतया बात यह नही थी। हम पहले ही देख चुके हैं कि १८३७ मे लिखी गयी उनकी अनेक कविताए कूपमंडूक दुनिया से

उनके निर्णायक सबध-विच्छेद को प्रतिबिम्बित करती है। इसी अवधि में उन्होंने एडुआर्ड हान्स के व्याख्यानो को बडे मनोयोग से सुना, जिन्होंने खुलेआम सेंट-सीमोन के विचारो का प्रचार किया और श्रम की मुक्ति की माग की। मार्क्स ने शीघ्र ही हान्स से व्यक्तिगत परिचय कायम किया। १८३७ मे ही मार्क्स ने आडोल्फ़ रुटेनबेर्ग को अपना एक बहुत घनिष्ठ मित्र बताया। आडोल्फ़ रुटेनबेर्ग एक बार तरुणो के एक सगठन Burschenschaft के सदस्य के रूप मे गिरफ्तार किये जा चुके थे और "दुर्भावनापूर्ण लेखो" के लेखक के रूप में पुलिस की निगरानी मे थे।

ब्रूनो बावेर के साथ मार्क्स की बढती आत्मीयता का भी कारण यह था कि ब्रूनो बावेर इतिहास-क्रम को प्रभावित करने मे समर्थ "कार्य के दर्शन" का प्रतिपादन करने का प्रयास कर रहे थे। मार्क्स ने बावेर और फायरबाख द्वारा की जा रही धर्म की आलोचना को उस समय राज-नीतिक आलोचना का एकमात्र सभव रूप माना।

पर जिस सैद्धातिक आलोचना से बावेर सतुष्ट थे, वह मार्क्स को अपने अतिम विद्यार्थी वर्षों में भी अक्सर अपर्याप्त प्रतीत होती थी। प्रत्यक्षतया, दोनो के बीच यह अतर ३१ मार्च, १८४१ को मार्क्स को लिखे बावेर के पत्र के दिलचस्प वाक्यो को स्पष्ट कर देता है: "अपने को एक व्यावहारिक पेशे मे लगाना तुम्हारे लिए पागलपन होगा। सिद्धात ही अब सबसे शक्तिशाली व्यवहार है और हम अभी भी यह भविष्यवाणी नही कर सकते

कि यह किस अर्थ मे व्यावहारिक बनेगा।"

इस बीच मे जर्मनी मे ऐतिहासिक घटनाए इस ढग से विकसित हो रही थी कि राजनीतिक समस्याए सिद्धात और स्वय जीवन में प्रधानता प्राप्त करने लगी थी।

१८४० की गर्मी मे प्रशा की गद्दी पर एक नया राजा – फ्रेडरिक विल्हेल्म चतुर्थ – बैठा, जिससे सभी लोग उदारतावादी सुधारो और एक सविधान की आशा करते थे। अच्छी-अच्छी बाते बनाने और उदारहृदयता का दिखावा करने के अपने शौक से उसने जनता के मन मे स्वतत्रता की एक मरीचिका खडी कर दी। लेकिन करनी मे राजतत्र और ईसाई चर्च की सत्ता को मजबूत बनाने मे दिलचस्पी लेते हुए राजा ने "प्रतिक्रियावादी रोमासवाद" की नीति का अनुसरण किया।

मार्क्स ने, जैसा कि उन्होंने स्वय बाद में लिखा, शीघ्र ही नये सम्राट के मूल्य और उसकी भूमिका को समझ लिया "कूपमडूको के इस राजा" ने अपने राज्याभिषेक पर "घोषणा की कि उसका मन-मस्तिष्क ही भावी मूलभूत कानून होगा"।* उसने बडे सनकी ढग से प्रशा को "अपने घर का राज" और जर्मन लोगो को ऐसे बच्चे कहा, जिन्हे पिटाई और मिठाई से अक्ल सिखायी जानी चाहिए।

---

* का० मार्क्स, *Deutsch-Französische Jahrbücher* से पत्र, १८४३।

"पिटाई" मुख्यतया साहसी तरुण हेगेलवादियो के लिए सुरक्षित कर दी गयी, जिन्होंने धर्म के विरुद्ध मर्म चलाने का बीडा उठाया था। प्रमुख तरुण हेगेलवादियो को विश्वविद्यालयो से निकाल दिया गया। अर्ध-क्षीण मस्तिष्क, भाववादी दार्शनिक शेल्लिग को बर्लिन बुलाया गया, ताकि हेगेलवाद का सैद्धातिक खंडन किया जा सके।

लेकिन जिस तेजी से मरीचिका खडी की गयी थी, उतनी ही तेजी से वह गायब भी हो गयी। तरुण हेगेलवादियो ने, जो अब तक प्रशा के राजा के सयत विरोधी रहे थे, स्वय तेजी से वाम की ओर बढना शुरू किया, क्योकि अब उन्हें इस बात की कोई आशा नही रह गयी थी कि राजतत्र कभी वाम की ओर जायेगा।

देश मे उदारतावादी जनवादी आंदोलन दिन-प्रतिदिन मजबूत होता गया और जनता की राजनीतिक चेतना जागृत होने लगी। जैसे-जैसे जर्मनी मे उद्योग विकसित होता गया और राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग मजबूत होता गया, वैसे-वैसे राजतत्र की पुरातन सामती आकांक्षाएं कालातीत बनती गयी।

इस समय मार्क्स एक नये प्रकार के कार्य की तैयारी कर रहे थे। १८४१ के अत में उन्होने लिखा कि "एक मूलतया भिन्न प्रकृति के राजनीतिक और दार्शनिक अन्वेषण अब मुझे" यूनानी दर्शन के अध्ययन के क्षेत्र मे पहले की योजनाओं के कार्यान्वयन के बारे में "सोचने की अनुमति नही देते"।

ये कार्यकलाप क्या थे? सबसे पहले, मार्क्स धर्म के साथ निपटारा कर लेने के लिए चिंतित थे और ईसाई कला पर एक पुस्तक लिख रहे थे। लेकिन उनकी राजनीतिक आकाक्षाए राज्य व्यवस्था की हेगेलीय अवधारणा की आलोचना को समर्पित एक कृति मे सुनिश्चित ढंग मे अभिव्यक्त हुई, जिसे मार्क्स ने इस समय मे लिखना शुरू किया था।

जहा स्वय हेगेल और तरुण हेगेलवादियों के लिए भी आदर्श सवैधानिक राजतत्र था, वहा मार्क्स ने, उनके ही शब्दो मे, इस "पाजी" के विरुद्ध युद्ध घोषित किया, जो "शुरु से अत तक स्वय अपना खडन और उन्मूलन करता है"*।

मार्च, १८४२ के प्रारभ मे दिया गया यह वक्तव्य मार्क्स की राजनीतिक उग्रता का प्रमाण है। उन्होंने समाधान विद्यमान राजतत्रीय व्यवस्था के उदारीकरण में नही, अपितु इसके उन्मूलन मे देखा। मार्क्स राजनेताओं के बारे मे, इन "दंभी बदमाशों," "सजे हुए बाके-छैलो" के बारे मे घृणापूर्वक लिखते हैं, जिनकी सरकारी नीति "इसानो को हैवान बनाने"** के सिद्धात पर आधारित है।

मार्क्स ने प्रशियाई राजतत्र के साथ अपनी पहली खुली लडाई प्रेस की स्वतत्रता पर अपने लेखो से शुरू

---

* का० मार्क्स, आ० रूगे को, १८४२।
** वही।

की ('नवीनतम प्रशियाई सेंसरशिप आदेश पर टिप्पणियां' और 'प्रेस की स्वतंत्रता पर वाद-विवाद')। इस प्रश्न पर मार्क्स का ध्यान इस वजह से आकर्षित हुआ कि प्रेस की स्वतंत्रता सामान्यतया राजनीतिक स्वतंत्रता की सूचक है और प्रेस की स्वतंत्रता के बिना "सभी अन्य स्वतंत्रताएं मरीचिका बन जाती हैं"*।

१८४१ के अंत में एक नया सेंसरशिप आदेश प्रकाशित किया गया। इस दस्तावेज ने राजा की उन नीतियों के मिथ्या उदारतावादी ढोंग को सुस्पष्ट कर दिया, जो कथनी में प्रगतिशील होने का दम भरती थी, लेकिन करनी में प्रतिक्रियावादी थी।

जबकि इस आदेश के प्रकाशन पर बुर्जुआ उदारतावादियों के शिविर में जश्न मनाया जा रहा था, मार्क्स ने इस पर अच्छी-अच्छी बातों का जो आवरण डाला गया था, उसे फाड़ दिया और निर्ममतापूर्वक "दिव्य सत्ता" द्वारा दी गयी स्वतंत्रताओं की "दयनीय दरिद्रता" को बेनकाब कर दिया।

मार्क्स ने बुर्जुआ यथार्थ की अपनी आलोचना के सिद्धांतों को निम्नलिखित रूप में सूत्रबद्ध किया: "मैं यहां सभी विद्यमान अवस्थाओं की निर्मम आलोचना की बात कर रहा हूं। यह आलोचना दो अर्थों में निर्मम होनी चाहिए: यह स्वयं अपने ही निष्कर्षों से भयभीत नहीं

---

* का० मार्क्स, 'प्रेस की स्वतंत्रता पर वाद-विवाद', १८४२।

होती और सत्ताधारियो से टकराव से बचने की कोशिश नही करती।"*

मार्क्स के इन वक्तव्यो से केवल उनका राजनीतिक लक्षण ही नही, नैतिक लक्षण भी स्पष्ट हो जाता है। ये हम उन मापदडो का अदाजा लगाने मे समर्थ बनाते है, जिन्हे युवा मार्क्स ने अपने अनुसधान कार्य और सैद्धातिक अध्ययन मे प्रयोग किया।

मार्क्स सत्य की गहन और सुसगत अभिव्यक्ति, वस्तुओ के तर्क के साहसी और दृढ अनुसरण, ऐसे "स्वतत्र विचार" के लिए प्रयास कर रहे थे, "जो प्रत्येक वस्तु को उसकी मूलभूत प्रकृति के रूप मे लेता है"**। सत्यान्वेषी को किसी भी बाह्य विचारो से विचलित नही होना चाहिए। "क्या दाये-बाये देखे बिना सत्य पर अर्जुन-दृष्टि रखना सत्यान्वेषी का पहला कर्तव्य नही है? यदि मैं इसके लिए विवश हू कि मामले के सारतत्व को निर्धारित रूप मे व्यक्त करना न भूलूं, तो क्या मैं मामले के सारतत्व को ही नही भूल जाऊंगा?"***

वैज्ञानिक अनुसधान मे केवल परिणाम ही नही,

---

* का० मार्क्स, *Deutsch-Französische Jahrbücher* मे पत्र, १८४३।

** का० मार्क्स, 'नवीनतम प्रशियाई सेमरशिप आदेश पर टिप्पणिया', १८४२।

*** वही।

बल्कि वह मार्ग भी महत्वपूर्ण है, जिसके जरिये यह परिणा प्राप्त होता है, और इसमे विद्वान के आंतरिक दृष्टिको को भी ध्यान मे रखा जाता है: जिस साध्य के लि अनुचित साधनो की आवश्यकता होती है, वह उचि साध्य नही है। विज्ञान में कायरता, अधकचरापन विज्ञा के साथ गद्दारी है।

प्रेस की स्वतंत्रता पर वाद-विवाद संबंधी लेख मार्क्स इस विचार की ओर और भी सुनिश्चित रूप लौटते है।

विज्ञान आम लेखन की तरह एक "पेशा" नही है इसे पेशे के स्तर पर नही उतरना चाहिए। "बेशक लेखक को जीने और लिखने के लिए कमाना चाहिए लेकिन उसे कमाने के लिए कदापि नही जीना और लिखन चाहिए। जब बेराजे गाते है:

मै तो जीता हू गीत लिखने को,
और अगर आप ने निकाल दिया,
तब मै लिखूंगा गीत जीने को,

तो इस चुनौती मे यह व्यग्यात्मक स्वीकृति है कि जब काव्य कवि के लिए एक साधन बन जाता है, तो वह अपने वास्तविक क्षेत्र को त्याग देता है।

"लेखक अपने कार्य को एक साधन बिल्कुल नही मानता। यह तो निज मे एक साध्य है। यह स्वय उसके लिए और औरो के लिए भी इस हद तक साधन नही

है कि आवश्यकता पडने पर वह इसके अस्तित्व पर अपने अस्तित्व की आहुति दे देता है।"

इन शब्दों मे मार्क्स ने अपना सृजनात्मक विश्वास व्यक्त किया। उन्होंने अपने सपूर्ण जीवन द्वारा यह पुष्ट कर दिया कि उन्होने कभी भी "जीने के लिए गीतो की रचना नही की", बल्कि वैज्ञानिक सत्य की खोज के लिए अपना सर्वस्व जीवन अर्पित कर दिया।

मार्क्स ने अपने को नये राजा के आदेशों के मिथ्या उदारतावाद का मात्र व्यग्यपूर्वक मजाक उडाने तक ही सीमित नही रखा। उन्होंने उस प्रणाली के सामाजिक सारतत्व को भी बेनकाब किया, जिसमे लोगो को उनके मात्र "सोचने के ढंग के लिए" सजा देने वाले कानून हो सकते है। वह दिखाते है कि ये कानून केवल जनविरोधी शासन मे, एक ऐसे समाज मे ही सभव हो सकते है, "जिसमे एक अवयव अपने को राजकीय बुद्धि और राजकीय नैतिकता का एकमात्र, अनन्य मालिक मान लेता है, एक ऐसी सरकार मे ही सभव हो सकते हैं, जो सिद्धात रूप मे जनता की विरोधी है"*।

केवल "एक भ्रष्ट राजनीतिक दांवपेच चलाने वाले गुट का बुरा अतकरण" ही प्रतिशोध-कानूनो, लोगो के मात्र उनके "सोचने के ढंग" के लिए सजा देने वाले कानूनो का आविष्कार कर सकता है। "लोगो को मात्र

---

* का० मार्क्स, 'नवीनतम प्रशियाई सेसरशिप आदेश पर टिप्पणिया'।

उनके सोचने के ढग के लिए सजा देने वाले कानून सिद्धांत-विहीन सोचने के ढग पर, राज्य के अनैतिक, और भौतिकवादी दृष्टिकोण पर आधारित होते हैं"।*

मार्क्स इस क्रांतिकारी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि जन-विरोधी कानून जारी करके "राजनीतिक दांवपेंच चलाने वाला गुट" अपने को क़ानून की परिधि से बाहर रख रहा है, कि उसकी कार्रवाइयां, जो राज्य को मजबूत बनाने के उद्देश्य से की जाती है, वस्तुत: राज्य-विरोधी स्वरूप की है।

मार्क्स यहां राज्य की आलोचना अमूर्त दार्शनिक दृष्टिकोण से कर रहे हैं। वह अभी केवल इसके वर्ग-ऐतिहासिक सारतत्व की समझदारी के समीपतर आना शुरू ही कर रहे है। इस समझदारी की दिशा में एक पग राज्य के वस्तुगत स्वरूप पर, जो अलग व्यक्ति पर निर्भर नहीं है, उनके ध्यान का संकेन्द्रण था।

राज्याधिकारियों की कार्रवाइयों का असल कारण, जैसा कि मार्क्स दर्शाते हैं, इस या उस व्यक्ति की खामियों में नहीं निहित होता है, बल्कि यह तो "सिर के बल खड़ी दुनिया" की एक अभिव्यक्ति है।

यदि सरकार जन-विरोधी होती है, तो इसकी सभी कार्रवाइयां, यहां तक कि अच्छी कार्रवाइयां भी बुरी कार्रवाइयों में बदल जाती हैं। कानून की पुष्टि करने का

---

* का० मार्क्स, 'नवीनतम प्रशियाई सेंसरशिप आदेश पर टिप्पणियां'।

प्रयास करते हुए यह कानून के उल्लघन का सहारा लेने के लिए विवश हो जाती है। यह मनमानेपन को ही कानून का दर्जा दे देती है। प्रेस को आलोचना के अधिकार से वचित करके यह सरकारी अधिकारियो पर आलोचना का कार्य थोप देती है।

"अलग व्यक्तियो" की रक्षा करने के नाम पर यह व्यक्तियों को अपमानित करती है, उन्हे अपने स्वतत्र विचार के अधिकार से भी वचित कर देती है। राष्ट्रीय भावना का उत्थान करने के प्रयास के नाम पर ऐसी सरकार स्वय "राष्ट्र को हेय बनाने वाले विचार पर आधारित होती है"।

सरकारी आदेश "अधिकारियो मे असीमित विश्वास" की माग करता है "और गैर-अधिकारियो मे असीमित अविश्वास पर आधारित होता है"।

प्रशियाई अधिकारी "सरक्षक" की भूमिका अदा करता है, उसे "मस्तिष्को के नियत्रण" का काम सौपा गया है। इस चीज के बारे मे लेशमात्र भी संदेह नही किया जाता कि उसके पास सभी प्रकार की वैज्ञानिक योग्यता पर निर्णय देने की वैज्ञानिक योग्यता है या नही।*

मार्क्स इस नौकरशाही सिद्धात की आतरिक विडबना को बेनकाब करते है। चिंतनशील लोगो को जांचने के

---

* का० मार्क्स, 'नवीनतम प्रशियाई सेसरशिप आदेश पर टिप्पणिया'।

लिए अधिकारी को सभी क्षेत्रों मे उनसे श्रेष्ठ होना चाहिए। सभवत , प्रशा में "सरकार को ज्ञात सार्विक मेधावियो की भीड" वास्तव में रहती है? लेकिन यदि यही बात है तो ये "प्रकाड मस्तिष्क" लेखको और वैज्ञानिको के रूप मे आगे क्यो नही आते? अपनी संख्या मे बहुत अधिक और अपने वैज्ञानिक ज्ञान के कारण शक्तिशाली ये अधिकारी सामाजिक मच पर क्यों नही चढ जाते और अपने भार से कलमघिस्सुओ का गला क्यो नही घोटे देते?

लेकिन उन अधिकारियो की प्रतिभा कितनी श्रेष्ठ होनी चाहिए, जो विचार के क्षेत्र मे शाति के रक्षको को चुनते और स्वय ही उन पर निगरानी रखते है। "बुद्धि की इस नौकरशाही मे हम जितना ही ऊपर की ओर चढते है, उतने ही असाधारण मस्तिष्को से हमारी मुलाकात होती है।"*

वास्तव में, नौकरशाही, पुलिस राज्य मे सेसरशिप पर सेसरशिप लगी होती है और हरेक अधिकारी का मनमानापन उसके ऊपर बैठे अधिकारी के मनमानेपन से प्रतिबधित होता है। लेकिन यह अनिवार्य है कि ऐसी व्यवस्था मे "तीसरी या ९९वी मजिल मे कानून का उल्लघन शुरू होता है"**। नौकरशाही राज्य इस क्षेत्र

---

* का० मार्क्स, 'नवीनतम प्रशियाई सेसरशिप आदेश पर टिप्पणिया'।

** वही।

को इतना ऊंचा रखने की कोशिश करता है कि यह आखो से ओझल रहता है।

यह विश्लेषण मार्क्स को इस स्वाभाविक निष्कर्ष पर पहुचा देता है कि "सेंसरशिप का मूलभूत इलाज इसका उन्मूलन होगा, क्योंकि स्वय इसका सस्थापन एक बुरा सस्थापन है. "*।

मार्क्स यहा बुर्जुआ राज्य की सपूर्ण "नौकरशाही" मशीन को नष्ट करने की आवश्यकता का निष्कर्ष अभी सूत्रबद्ध नही करते, लेकिन वह इस विचार के समीप आ जाते हैं।

मार्क्स ने अपने प्रौढ वर्षो में सेंसरशिप आदेश पर लेख को बहुत मूल्यवान माना, जैसा कि यह इस बात से स्पष्ट है कि उन्होंने इसे अपनी रचनाओं के उस संग्रह मे प्रारंभिक लेख का स्थान दिया, जो १८५१ में प्रकाशित किया जाने लगा (सरकारी दवाव के कारण इस सस्करण को पहले खंड के प्रकाशन के बाद बंद कर दिया गया)।

निस्संदेह, यह लेख ऐसी विस्फोटक शक्ति से भरा था कि इसे जर्मनी मे प्रकाशित किये जाने का प्रश्न ही नही उठता था। जैसा कि मार्क्स ने पहले ही देख लिया था, लेख पर प्रतिबंध लगा करके सेंसरशिप ने इसमें अपने बारे में दिये गये वर्णन की सत्यता को पुष्ट करने मे जरा भी समय नष्ट नही किया। यह लेख पहली बार १८४३ मे स्विट्जरलैड मे प्रकाशित हुआ।

---

* का० मार्क्स, 'नवीनतम प्रशियाई सेसरशिप आदेश पर टिप्पणिया'।

लेकिन १८४२ के वसत में मार्क्स ने *Rheinische Zeitung* ('राइनी समाचारपत्र') में राइन प्रातीय असेम्बली में प्रेस की स्वतत्रता पर वाद-विवादो के सबध मे उपर्युक्त लेख को प्रकाशित किया, जहा उन्होने इस समस्या पर एक भिन्न दृष्टिकोण से विचार किया।

मार्क्स का नया रुख इस बात मे था कि उन्होंने प्रेस की स्वतत्रता पर प्रतिनिधियो के विभिन्न विचारो और उनकी सामाजिक तथा वर्ग स्थिति के बीच प्रत्यक्ष सबध की ओर इगित किया। यह आगे का एक महत्वपूर्ण कदम था। प्रेस की स्वतत्रता पर बहस में सामाजिक श्रेणियो के हित इतने परस्पर-विरोधी ढग से टकराते है कि यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि "सामान्यतया" कोई स्वतत्रता नही है, हर श्रेणी "अपनी" स्वतत्रता की रक्षा कर रही है।

मार्क्स दर्शाते है कि शहरी टुटपुंजिया बुर्जुआ वर्ग और कृषक वर्ग ने भी प्रेस की स्वतत्रता के लिए अपनी मागो की सीमितता को प्रदर्शित कर दिया है। मार्क्स प्रेस की बुर्जुआ स्वतंत्रता को, उस रूप मे भी जिस रूप मे वह उस समय फ्रास मे विद्यमान थी, पर्याप्त रूप मे स्वतत्र नही मानते थे। हालाकि [illegible] "आत्मिक सेंसरशिप के [illegible] . यह [illegible] की शक्ल मे भी [illegible] के [illegible] "बडी व्यापारिक सट्टे[illegible]"।

[illegible]

यहा हम स्पष्ट रूप से एक नये विचार यानी "आत्मिक सेसरशिप" की "भौतिक सेसरशिप" पर, बुर्जुआ समाज के व्यापारिक और मुद्रा सबधो पर निर्भरता के विचार का आविर्भाव देखते है। मार्क्स की हर नयी कृति मे हम इस विचार का विकास पायेगे।

मार्क्स के इस पहले अखबारी लेख से ही यह साफ-साफ प्रकट है कि वे बुर्जुआ स्वतत्रताए, जो उदारतावादी जर्मन बुद्धिजीवी वर्ग के लिए आदर्श थी, मार्क्स के लिए कदापि आदर्श नही थी। उन्होंने शुरू से ही सबसे उग्र बुर्जुआ उदारतावादियो से अधिक गहन और सुसगत ढग से जर्मन यथार्थ की आलोचना करते हुए एक क्रांतिकारी जनवादी के रूप मे अपना राजनीतिक कार्यकलाप आरभ किया।

मार्क्स प्रेस की स्वतत्रता पर वाद-विवाद पर अपने लेख का समापन हेरोडोटस के इस उद्धरण से करते है कि एक बार स्वतत्रता का आस्वाद चखने के बाद इसके लिए "न केवल भालो से, बल्कि कुल्हाडियो से भी लड़ना चाहिए"।

Rheinische Zeitung मे मार्क्स की देदीप्यमान पहली शुरूआत ने एक वास्तविक सनसनी पैदा कर दी। उनके मित्रो को, जो एक लबे अर्से से मार्क्स से उनकी असाधारण प्रतिभा के ठोस प्रमाण की आशा कर रहे थे, बडा सतोष हुआ। आ० रूगे ने लिखा कि इससे पहले प्रेस की स्वतत्रता के बारे में और इसकी रक्षा मे इतनी गहन और सुतर्कित कोई चीज कभी नही लिखी गयी।

लेकिन १८४२ के वसंत में मार्क्स ने *Rheinische Zeitung* ('राइनी समाचारपत्र') में राइन प्रांतीय असेम्बली में प्रेस की स्वतंत्रता पर वाद-विवादों के संबंध में उपर्युक्त लेख को प्रकाशित किया, जहां उन्होंने इस समस्या पर एक भिन्न दृष्टिकोण से विचार किया।

मार्क्स का नया रुख इस बात में था कि उन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता पर प्रतिनिधियों के विभिन्न विचारों और उनकी सामाजिक तथा वर्ग स्थिति के बीच प्रत्यक्ष संबंध की ओर इंगित किया। यह आगे का एक महत्वपूर्ण कदम था। प्रेस की स्वतंत्रता पर बहस में सामाजिक श्रेणियों के हित इतने परस्पर-विरोधी ढंग से टकराते हैं कि यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि "सामान्यतया" कोई स्वतंत्रता नहीं है, हर श्रेणी "अपनी" स्वतंत्रता की रक्षा कर रही है।

मार्क्स दर्शाते हैं कि शहरी टुटपुंजिया बुर्जुआ वर्ग और कृषक वर्ग ने भी प्रेस की स्वतंत्रता के लिए अपनी मांगों की सीमितता को प्रदर्शित कर दिया है। मार्क्स प्रेस की बुर्जुआ स्वतंत्रता को, उस रूप में भी जिस रूप में वह उस समय फ़्रांस में विद्यमान थी, पर्याप्त रूप में स्वतंत्र नहीं मानते थे। हालांकि फ़्रांसीसी प्रेस "आत्मिक सेंसरशिप के अधीन नहीं है... यह बड़ी नकद प्रतिभूतियों की शक्ल में भौतिक सेंसरशिप के अधीन है", इसे "बड़ी व्यापारिक सट्टेबाजियों की परिधि में खींचा जाता है"*।

* का० मार्क्स, 'प्रेस की स्वतंत्रता पर वाद-विवाद'।

यहा हम स्पष्ट रूप से एक नये विचार यानी "आत्मिक सेसरशिप" की "भौतिक सेसरशिप" पर, बुर्जुआ समाज के व्यापारिक और मुद्रा सबधो पर निर्भरता के विचार का आविर्भाव देखते है। मार्क्स की हर नयी कृति मे हम इस विचार का विकास पायेंगे।

मार्क्स के इस पहले अखबारी लेख से ही यह साफ-साफ प्रकट है कि वे बुर्जुआ स्वतत्रताए, जो उदारतावादी जर्मन बुद्धिजीवी वर्ग के लिए आदर्श थी, मार्क्स के लिए कदापि आदर्श नही थी। उन्होने शुरू से ही सबसे उग्र बुर्जुआ उदारतावादियो से अधिक गहन और मुसगत ढग से जर्मन यथार्थ की आलोचना करते हुए एक क्रांतिकारी जनवादी के रूप मे अपना राजनीतिक कार्यकलाप आरभ किया।

मार्क्स प्रेस की स्वतत्रता पर वाद-विवाद पर अपने लेख का समापन हेरोडोटस के इस उद्धरण से करते है कि एक बार स्वतत्रता का आस्वाद चखने के बाद इसके लिए "न केवल भालो से, बल्कि कुल्हाडियो से भी लडना चाहिए"।

Rheinische Zeitung मे मार्क्स की देदीप्यमान पहली शुरूआत ने एक वास्तविक सनसनी पैदा कर दी। उनके मित्रो को, जो एक लबे अर्से से मार्क्स से उनकी असाधारण प्रतिभा के ठोस प्रमाण की आशा कर रहे थे, बडा सतोष हुआ। आ० रूगे ने लिखा कि इससे पहले प्रेस की स्वतत्रता के बारे मे और इसकी रक्षा मे इतनी गहन और सुतर्कित कोई चीज कभी नही लिखी गयी।

Rheinische Zeitung के संपादकीय कार्यालय मे मार्क्स का प्रभाव, जो पहले भी वहुत अधिक था, इतना वढ गया कि वह व्यावहारिक रूप से इसके एक सचालक बन गये और कुछ समय बाद मुख्य सपादक वना दिये गये।

अक्तूवर, १८४२ मे इस अखबार ने राइन प्रातीय असेम्बली मे इस बार वन की चोरी पर कानून पर वाद-विवादो के सबध मे एक नयी लेखमाला प्रकाशित की।

ये लेख मार्क्स की सृजनशील जीवनी मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पहली बार वह सिद्धात के स्वर्ग से "ठोस भूमि" पर उतरने अर्थात उन भौतिक हितो का अध्ययन करने के लिए विवश हुए, जिन पर हेगेलीय दार्शनिक प्रणाली ने कोई चितन-मनन नही किया था।

इसके बाद मार्क्स का चितन एक ऐसी दिशा मे अग्रसर हुआ, जो शीघ्र ही उन्हे समाज के वर्ग और आर्थिक सरचना के विश्लेपण पर ले गयी। वन की चोरी पर वाद-विवाद पर लेख को पढते हुए हम पहली "बिजली की कौधो" की कल्पना कर सकते है, जिन्होने नये विचारो के "उपा-काल" की सूचना दी।

आर्थिक जीवन के एक निजी और महत्वहीन लगने वाले प्रश्न – वन की चोरी और आखेट तथा वन-रक्षा पर कानूनो का उल्लघन – से सबद्ध परिस्थितियो के उनके अध्ययन ने निर्धन जन-साधारण की गरीबी और अधिकार-हीनता को पूरी तरह प्रकट कर दिया।

मार्क्स ने देखा कि कैसे निर्लज्जतापूर्वक बड़े जमीदारो के हित मे मूल मानवाधिकारो का उल्लघन किया जा रहा है, कैसे ज़रा भी सोचे-विचारे विना लोगो को "काष्ठ-मूर्तियो" पर वलि चढाया जा रहा है, वशर्ते कि वे मूर्तिया निजी स्वामित्व थी।

उन्हे यह विल्कुल साफ़ हो गया कि "निजी स्वामित्व" मानव-विरोधी और व्यक्ति-विरोधी है, यह व्यक्ति के विरुद्ध सभी प्रकार के अपराधों को उचित ठहराता है और इसान को हैवान बना देता है।

जहा प्राकृतिक प्राणि जगत् मे कर्मी मधुमक्खिया काम न करने वाली मधुमक्खियो को मार डालती है, वहा मानव "प्राणि जगत्" मे उल्टे "काम न करने वाली मधुमक्खिया कर्मी मधुमक्खियो को वस्तुत. कडी मशक्कत द्वारा मार डालती है"*।

सपत्ति सबधो के सामाजिक अन्याय पर प्रचंड रूप से क्रुद्ध मार्क्स दृढतापूर्वक "निर्धन, राजनीतिक और सामाजिक रूप से सपत्तिविहीन जनसाधारण"** के हितो की रक्षा करते है।

वह "चालू" वन-मालिको की कलई खोलते हैं, जो "विद्वानो और जीहुजूर शिक्षार्थियो की चाटुकारिता" की सहायता से हर नीच दावे को "अधिकार के शुद्ध

---

* का० मार्क्स, 'वन की चोरी सबधी कानून पर वाद-विवाद', १८४२।

** वही।

स्वर्ण" मे बदल देते है, जबकि वन-मालिको की हुक्मबरदार असेम्बली श्रमजीवी लोगो के अधिकारो को और भी कम करने के लिए सभी प्रकार की कपटी चालो की शरण लेती है।

जब वन-कानूनो के उल्लघको के हितो का प्रश्न उठता है, तो असेम्बली गिरी हुई लकडियों को एकत्रित करने, वन-कानूनो के उल्लघन और वन की चोरी के बीच अतर को नजरदाज कर देती है। लेकिन "जब वन-मालिकों के हितों का प्रश्न उठता है, तो यह इस अतर को मान लेती है"।*

निजी हित चालू, स्वार्थी और कायर होता है। चूकि यह अधिकारहीनता पर आधारित होता है और इसके पास जो कुछ है, उसे खो देने के खतरे से भयभीत रहता है, इसलिए यह कायर है। विधायक की भूमिका अदा करते हुए निजी हित को केवल उन "दुष्कर्मियों" से भय होता है, जिनके खिलाफ यह कानून जारी करता है। "निर्ममता कायर द्वारा थोपे गये कानूनो का एक खास लक्षण है, क्योंकि कायर मात्र निर्मम हो कर ही शक्तिशाली हो सकता है।"**

वन-मालिको के औजार के रूप मे राइन प्रातीय असेम्बली की दयनीय भूमिका को प्रकट करते हुए मार्क्स

---

* का० मार्क्स, 'वन की चोरी सबधी कानून पर वाद-विवाद'।

** वही।

समाज मे राज्य की भूमिका को एक मूलतया भिन्न दृष्टिकोण से देखे बिना नही रह सके। मनुष्य के कवायली सारतत्व की अभिव्यक्ति के रूप मे राज्य की हेगेलीय जडसूत्र से सवद्ध उनके शेष भ्रम ही जाते रहे।

मार्क्स के शब्दों में, "स्वार्थपरता के तर्क से कुछ भी अधिक भीषण नही है!" यह तर्क राज्य की सत्ता को वन-मालिक के एक अनुचर में बदल देता है। "राज्य के सभी अवयव कान, आख, वाह, पैर वन जाते है, जिनके द्वारा वन-मालिक का हित सुनता, देखता, मूल्याकन करता, रक्षा करता, पकडता और दौडता है।"*

स्वार्थपरता के "कुतर्क" ऐसे है कि वे वस्तु को एक "अनोखा गुण" प्रदान करते है। वन-मालिक से चुरायी गयी लकडी तुरत उसे राज्य का मूर्तरूप बना देती है, क्योकि वह चोर पर एक राजकीय अधिकार प्राप्त कर लेता है। इस तरह, यह प्रकट है कि "वन-मालिक ने चोर का इस्तेमाल स्वयं राज्य को हडपने के लिए किया है"**। एक लकडी के टुकडे पर अधिकार खो करके वन-मालिक मनुष्य से मनमरजी करने का अधिकार प्राप्त कर लेता है, ठीक उसी तरह, जिस तरह शेक्सपियर के 'वेनिस का व्यापारी' मे सूदखोर शाइलाक अपने कर्जदार

---

* का० मार्क्स, 'वन की चोरी सबधी कानून पर वाद-विवाद', १८४२।

** वही।

से कर्ज न चुका पाने की स्थिति मे उसके शरीर के एक पौड गोश्त से कर्ज चुकाने का अधिकार प्राप्त कर लेता है।

जैसा कि हम देखते है, मार्क्स पुन सिर के बल खडी दुनिया के विचार पर लौट रहे है, एक ऐसा विचार, जो बाद मे श्रम के अन्यसक्रामण और माल-पूजा के प्रवर्गो मे विकसित किया जाने वाला था। जहा युवा मार्क्स लकडी की चोरी पर अपने लेख का समापन इस निष्कर्ष के साथ करते है कि लकडी "राइन प्रदेशवासियो" की जडपूजा है, वहा 'पूजी' मे वह दिखाते हैं कि कैसे माल का "काष्ठ मस्तिष्क" पूजीवादी सबंधो की सपूर्ण दुनिया का शासन करता है।

मार्क्स ने माना कि वन की चोरी के बारे मे लेख पर उनका काम सुखद नही था, कि उन्होने प्रतिनिधियो के उबाऊ और तुच्छ वाद-विवादो का घृणापूर्वक अनुसरण किया, फिर भी उनके इस कार्य ने उनकी दिलचस्पियो को एक नयी दिशा मे मोड दिया। वह दरिद्र और अधिकार-विहीन जनसाधारण की स्थिति के एकदम आमने-सामने आ गये, जिसके बारे मे अखबारो के सवाददाता लिख रहे थे। उन्होने "निर्धनता की निर्मम आवाज" किताबो मे नही, किसी तीसरे व्यक्ति से नही, बल्कि सीधे स्वय मोजेल के किसानो से सुनी। मार्क्स इसे अपना "राज-नीतिक कर्तव्य" मानते थे कि वह अखबार के पृष्ठो पर "जन-वेदना के स्वर मुखरित करे, जिसे देश की परिस्थितिया भुलाने नही देती'" और "जनसा-

धारण की आवाज को ईमानदारी से सप्रेषित करे"।*

बुर्जुआ मार्क्सवादवेत्ताओ को (जब उन्हे मार्क्सवाद के खिलाफ कोई और तर्क नही मिल पाता) मार्क्स के "शुष्क बुद्धिवाद" के बारे मे, इस चीज के बारे मे लिखने का शौक चर्रा उठता है कि मार्क्स के लिए, जैसा कि वे सोचना चाहते हैं, व्यक्ति मात्र एक अमूर्त अवधारणा, एक प्रकार का "आर्थिक मानव" था और वह जनसाधारण की वास्तविक मुसीबतो से कम ही प्रभावित थे।

ऐसे दावे केवल वे लोग ही कर सकते है, जो मार्क्स के बारे मे मात्र सुनी-सुनाई बातो से जानते है। न केवल उत्पीडित जनसाधारण की रक्षा मे उनके "बुद्धिसगत तर्कों" की शक्ति का, बल्कि उनकी भावनाओ की शक्ति का, मानव के अपमान, मानवाधिकारो और गरिमा के उल्लघन की हरेक वास्तविक घटना से उत्पन्न उनके क्लेश और आक्रोश का भी अनुभव करने के लिए मार्क्स की कृतियो 'मोजेल के सवाददाता की सफाई' (१८४३ के आरभ मे), '१८४४ की आर्थिक और दार्शनिक पाडुलिपिया' या 'पूजी' के पहले खड को पढ लेना ही काफी होगा।

निजी स्वामित्व के सबधो के यात्रिक स्पदन के पीछे मार्क्स ने, उन्ही के शब्दो मे, "मानव हृदय का स्पदन"**

---

* का० मार्क्स, 'मोजेल के सवाददाता की सफाई', १८४३।

** का० मार्क्स, 'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास'।

गुना। ठीक उसी तरह हम मार्क्स की कृतियो मे उनवे हृदय का स्पदन महसूस करते है, एक ऐसा हृदय, जे करुणा से विगलित और क्रोध तथा घृणा मे संकुचित हे उठता था।

यह कहना अतिशयोक्ति नही है कि यदि मार्क्स वे मस्तिष्क ने मानव-सस्कृति की सपूर्ण सपदा को आत्मसात किया, तो उनका हृदय मानवजाति की सभी मुसीबतों के प्रति अत्यत सवेदनशील था। हेनरिख मार्क्स की आशंका निर्मूल थी· उनके पुत्र के हृदय और मस्तिष्क के बीच पूरा मेल था।

प्रसगवश, 'मोजेल के सवाददाता की सफाई' मे जहा मार्क्स "जन-वेदना के स्वर" को मुखरित करते हैं, वह स्पष्टतया वैरिस्टर के रूप मे अपने पिता के कार्य की ओर, न्याय की रक्षा मे उनकी कार्रवाइयो की ओर इगित कर रहे है, जब वह अपने जन्म-नगर त्रियेर मे अधिकारियो के मनमाने व्यवहार के उदाहरण प्रस्तुत करते है।

यदि मार्क्सवाद की जड को स्वय जीवन के शक्ति-दायी अमृत से नही सीचा गया होता, तो यह एक वैज्ञानिक विश्वदृष्टिकोण मे नही विकसित हो सका होता। लेकिन "स्वय जीवन" के तथ्यो का साधारण आनुभविक सामान्यी-करण ही काफी नही था। मार्क्स का शुभ लक्षण यह था कि उनमे सैद्धातिक विचार की बुलदी से "आनुभविक यथार्थ" पर प्रकाश डालने और विपरीतत, ठोस यथार्थ के ठोस विश्लेषण को सामान्यीकरण की नयी ऊचाइयो

की ओर अग्रसर होने तथा एक सगत सिद्धात की खोज का आधार बनाने की योग्यता थी।

गलत ढग से सगठित दुनिया और जनसाधारण की मुसीबतो के उनके भावुक अनुभवो ने उन्हे इस गलत सगठन के कारण की खोज करने, दुनिया के अतर्विरोधो को प्रकट करने, उन "परिस्थितियो के प्रभाव को समझने के लिए प्रोत्साहित किया, जहा पहली दृष्टि मे केवल व्यक्ति काम करते हुए प्रतीत होते है"।*

जनवादी प्रेस के बारे मे मार्क्स का वक्तव्य स्वय मार्क्स पर लागू होता है, जिसे लोगो की जीवन-परिस्थितियो के प्रति "न केवल बुद्धि पर आधारित, बल्कि वैसे ही भावना पर भी आधारित" रुख अपनाना चाहिए और जो विद्यमान सबधो का अवलोकन करते समय "केवल निर्णय की चतुर भाषा मे ही नही, बल्कि स्वय जीवन की भावपूर्ण भाषा मे भी बोलता है"।**

नौकरशाही निरकुशता और राजतत्र के मिथ्या उदारतावादी हावभावो के खिलाफ अखबार मे अपने लेखो के बाद वस्तुओ के तर्क ने मार्क्स को राजतत्र और नौकरशाही की सामाजिक स्थिति और भूमिका की एक सैद्धातिक व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया। इसने उन्हे राज्य के हेगेलीय सिद्धात, राजतत्र के प्रति हेगेल की वफादारी और सवैधानिक निरकुशता के उनके

---

* का० मार्क्स, 'मोजेल के सवाददाता की सफाई'।
** वही।

आदर्श से निपटने के लिए प्रोत्साहित किया।

'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास' की बडी पाडुलिपि १८४३ की गर्मी मे पूरी हो गयी। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होने १८४१ के उत्तरार्द्ध मे मानी विश्वविद्यालय से पास होने के बाद ही इस पर काम शुरू किया। इसमे हम सवैधानिक राजतंत्र के "पाजी" की वही आलोचना पाते है, जिसके बारे मे मार्क्स ने रूगे को मार्च, १८४२ मे लिखा। प्रत्यक्षतया मार्क्स *Rheinische Zeitung* के लिए लेख लिखने के साथ-साथ हेगेल के विधि-दर्शन के बारे मे अपने लेख पर भी काम कर रहे थे। लेख मे व्यक्त अनेक विचार उस काल के उनके अखबारी लेखो के विचारो से लगभग शब्दश मिलते है।

जहा समाचारपत्र के पृष्ठो पर मार्क्स ने कार्यरत प्रशियाई राज्य मशीन के विभिन्न ठोस पहलुओं को विनाशकारी आलोचना का विषय बनाया, वहा हेगेल के कानून-दर्शन पर अपनी पाडुलिपि में वह राजतत्रीय और नौकरशाही राज्य के **सिद्धांत** की आलोचना करते है। वह प्रशियाई निरकुशता के अलग-अलग अवयवो पर प्रहार नही करते, बल्कि इसके मर्म, निजी स्वामित्व पर सीधे आघात करते है, जिसे अफसरशाही वर्ग समर्थन प्रदान करता और पवित्र बनाता है।

हेगेलीय दर्शन की भाषा से अनभिज्ञ पाठक के लिए हेगेल के विधि-दर्शन पर इस कृति को पढना कठिन कार्य है। लेकिन इसमे व्यक्त अत्यधिक गहन और दिलचस्प

विचार गागर मे सागर समान है, जिनका महत्व वर्तमान समय मे भी बना हुआ है।

आइए, हम मार्क्स की आलोचना के केवल मुख्य-मुख्य मुद्दो पर विचार करे।

इसके मर्म मे राजतत्र और सम्राट की आलोचना है। हेगेल का सम्राट राज्य का मूर्तरूप है। हेगेल उसे एक सच्चे "ईश-मानव", राज्य के विचार के सच्चे मूर्तरूप की शक्ल मे प्रस्तुत करने का प्रयास करते है। राज्य हेगेल के अनुसार, देश के सभी नागरिको के हित का प्रतिनिधित्व करने, "सामान्य हित" को सिद्ध करने के लिए विद्यमान रहता है।

यहा हेगेल बडे ही हास्यास्पद ढग से स्वय अपना खडन कर देते है। यदि एक आदमी सपूर्ण राज्य का मूर्तरूप है, तो क्या इसका यह अर्थ नही है कि सभी अन्य नागरिक व्यक्तित्व मे वचित है? चूकि शासन की प्रभुसत्ता एक व्यक्ति मे सकेद्रित है, इसलिए सभी अन्य लोग प्रभुसत्ता से वचित है। जब एक व्यक्ति को "ईश-मानव" का दर्जा प्रदान किया जाता है, तो इसका अर्थ यह है कि सपूर्ण समाज अमानव, प्राक्-मानव, पशु स्थिति मे है, ठीक उसी तरह जिस तरह धर्म मे ईश्वर की प्रभुसत्ता आदमी को "ईश्वर के दास" मे बदल देती है।

"सम्राट की प्रभुसत्ता या जनता की प्रभुसत्ता—यही तो असली सवाल है।"

हेगेलीय अवधारणा का बेतुकापन इस तथ्य मे प्रकट होता है कि भाववादी सिद्धात का सुसगत रूप से

करने की इच्छा करते हुए वह अत्यंत भोंडे "भौतिकवाद" मे बह जाते है।

राज्य का विचार सम्राट के रूप मे मूर्तित होता है। परतु सम्राट ही इस विचार द्वारा क्यो चुना जाता है? आनुवशिकता के आधार पर, शरीर के आधार पर, अपने वंश के पुनरुत्पादन का कार्यकलाप शरीर का उच्चतम कार्य है। "अत राजा का उच्चतम सवैधानिक कार्य उसका यौन कार्यकलाप है, क्योकि इसके जरिये वह राजा बनाता है और अपने शरीर को शाश्वतत्व प्रदान करता है। उसके पुत्र का शरीर उसके अपने शरीर का पुनरुत्पादन, एक राजा के शरीर की सृष्टि है।"

इस तरह, "अपने सर्वोच्च कार्यकलापो मे राज्य एक पाशविक यथार्थ प्राप्त करता है"। इस प्रकार, "प्रकृति हेगेल से अपने तिरस्कार का बदला चुका लेती है"।

निरकुश शासन, जैसा कि मार्क्स दिखाते है, नौकरशाही पदसोपानक्रम पर आधारित होता है। राज्याध्यक्ष मात्र नौकरशाही के पिरामिड का शीर्ष-बिंदु होता है। हेगेल ने इस परिघटना की प्रकृति को नही प्रकट किया और वैसा वह अपने राजनीतिक विचारो के कारण ही नही कर सके। मार्क्स निरकुश राज्य के अतरतम पूजा-गृह मे घुस कर इस गलती को दूर कर देते है।

नौकरशाही "राज्य की चेतना", "राज्य की इच्छा", "राज्य की शक्ति" है। यह बाह्यत "सामान्य हित" के प्रतिनिधि और सरक्षक के रूप मे काम करती है,

हालाकि यह काल्पनिक सामान्यता है, जिसके पीछे एक निश्चित विशेषाधिकृत समूह का हित या, जैसे कि मार्क्स हेगेल के शब्दो को दुहराते हुए कहते है, "निगमो की प्रवृत्ति" होती है।

नौकरशाह राज्य के पुरोहित, इसके जेमुइट, इसके धर्मविज्ञानी होते हैं। उनके लिए हर चीज का दोहरा अर्थ—वास्तविक और गुप्त होता है, जो भोले-भाले लोगो की नजरो से ओझल रहता है। अत "नौकरशाही की सामान्य प्रवृत्ति गोपनीयता, रहस्यमयता है"।

इस रहस्यमयता का पालन बाह्य दुनिया से पृथक्ता और "निगम की प्रवृत्ति" मे नौकरशाही के अलगाव के द्वारा सुनिश्चित किया जाता है। लेकिन अपने परिवेश मे इस गोपनीयता का पालन इसके पदसोपानक्रम संगठन द्वारा सुनिश्चित किया जाता है। नौकरशाही को "निगम" की गोपनीयता, "स्वीकृत राजनीतिक प्रवृत्ति" का उल्लघन गद्दारी प्रतीत होती है। "इसका पदसोपानक्रम ज्ञान का पदसोपानक्रम है। शीर्षस्थ स्तर निम्नतर स्तरो को तफसील की जानकारी सौपता है, जबकि निम्नतर स्तर शीर्षस्थ स्तर की सभी सामान्य बातो की व्याख्या मे विश्वास करते है और इस तरह सभी एक-दूसरे को धोखा देते है।"

लेकिन नौकरशाही का "ज्ञान" वैज्ञानिक ज्ञान पर नही आधारित होता. नौकरशाही विज्ञान को निस्सार मानती है। नौकरशाही का "ज्ञान" प्रभुत्व मे विश्वास, अध आज्ञाकारिता और मजबूती से स्थापित औपचारिक

कार्यवाइयो, बने-बनाये सिद्धातो, विचारों और परपराओ पर आधारित होता है।

"अत, प्रभुत्व इसके ज्ञान का आधार है और प्रभुत्व का देवीकरण इसका विश्वास है।"

इस तरह, निरकुश राज्य ऐसी निश्चित नौकरशाही शक्तियो की एक प्रणाली के रूप मे कायम होता है, जो एक-दूसरे से अधीनता और अंध आज्ञाकारिता से जुडी होती है।

मार्क्स ने राज्य का यह जो विश्लेषण दिया है, वह हमे अनिवार्यत इस निष्कर्ष पर पहुचा देता है कि देश के राजनीतिक जीवन को "मानवीय" बनाने के लिए राजतत्र का तख्ता उलटना ही काफी नही है। इसके लिए सपूर्ण नौकरशाही पिरामिड को गिराना आवश्यक है, जो निजी स्वामित्व तथा सामाजिक और आर्थिक असमानता पर आधारित होता है। यह बिल्कुल साफ है कि राज्य की उनकी आलोचना की परिधि मे न केवल राजतत्र की निरकुशता, बल्कि बुर्जुआ जनवाद भी शामिल है।

मार्क्स नौकरशाही पुलिस राज्य का वर्णन एक ऐसी चीज के रूप मे करते है, जिसका जन-साधारण के जीवत कार्यकलापों से कोई सबध नही होता, एक ऐसी चीज, जो "नागरिक समाज" से पृथक और इसके ऊपर खडी होती है, जबकि राजकीय प्रणाली का मूल सिद्धात स्वय जनता, मानव होना चाहिए।

'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा' के लेखन-काल के दौरान ही आ० रूगे को लिखे पत्र मे मार्क्स "मानव

जगत् मे जनवाद के सक्रमण" की घोषणा करते है। वह साफ-साफ देखते हैं कि "व्यापार और उद्योग की प्रणाली, निजी स्वामित्व और लोगो के शोषण की प्रणाली" के कारण समाज के भीतर एक गहरी दरार पैदा हो जाती है, जिसे "पुरानी प्रणाली ठीक करने मे असमर्थ है"।

लेकिन जहा मार्क्स ने विद्यमान व्यवस्था की जीर्ण-शीर्णता को स्पष्टतया देख लिया था, जिसे नष्ट किया जाना आवश्यक था, और जहा उनके लिए यह प्रश्न कि "कहा से आगे बढे?", बिल्कुल समाप्त हो गया था, तो भी वह अभी "किधर जाये?" सवाल का उत्तर नही दे सके। अर्ध-सामंती जर्मनी मे इसका उत्तर पाना कठिन था।

एक सच्चे सघर्ष-नारे की खोज मानवजाति के सपूर्ण सामाजिक इतिहास के वैज्ञानिक, भौतिकवादी दृष्टिकोण के प्रतिपादन द्वारा ही सफल हो सकती थी।

७

सच्चे संघर्ष-नारे की खोज में

...हम ससार के सामने मताग्रहियों की तरह कोई बना-बनाया नया सिद्धात नही रखते ये रहा सत्य, बस इसके सामने नतमस्तक हो जाइए! हम स्वय ससार के ही सिद्धातो के आधार पर नये सिद्धातों को विकसित करते है।

कार्ल मार्क्स*

इतिहास के भौतिकवादी दृष्किोण के प्रतिपादन के लिए मार्क्स किन मार्गो से आगे बढे?

१८४२ के शुरू मे ही मार्क्स ने अपने एक लेख मे अनीश्वरवाद, भौतिकवाद और मानववाद के अनुप्राणित अग्रदूत लुडविग फायरबाख को "हमारे युग का परिशोधक", स्वाधीनता और सत्य के मार्ग पर "आग का दरिया"** कहा।

---

* का० मार्क्स, *Deutsch-Französische Jahrbücher* से पत्र।

** यहा मार्क्स का श्लेष "फायरबाख" के शब्दश अर्थ – "फायर" अर्थात "आग" और "बाख" अर्थात "दरिया" – पर है।

उन्होने "परिकल्पनात्मक धर्मविज्ञानियो और दार्शनिको" अर्थात पुरोहितो और भाववादियो के नाम एक अपील जारी की "यदि आप वस्तुओ तक उसी रूप मे पहुचना चाहते है, जिस रूप मे वे यथार्थ मे कायम है, तो अपने को पहले के परिकल्पनात्मक दर्शन की अवधारणाओ और पूर्वाग्रहो से मुक्त कर लीजिए।"*

मार्क्स ने १८४१ की गर्मी मे लुडविग फायरबाख की पुस्तक 'ईसाई धर्म का सार' पढी। उस समय तरुण हेगेलवादियो पर इस पुस्तक का कितना प्रभाव पडा था, उसका एगेल्स ने अत्युत्तम वर्णन किया है।

इस पुस्तक ने "एक ही प्रहार" मे उन सभी अतर्विरोधो को छिन्न-भिन्न कर दिया, जिनमे तरुण हेगेलवादी फसे हुए थे और स्पष्ट शब्दो मे भौतिकवाद की विजय की घोषणा की। "प्रकृति का अस्तित्व समस्त दर्शन से स्वतत्र है। यह वह नीव है, जिसके ऊपर हम, मानव, जो स्वय प्रकृति की उपज है, बढे और बडे हुए। प्रकृति और मानव से परे किसी चीज का अस्तित्व नही है और हमारी धार्मिक कल्पना की उडानो ने जिन उच्चतर प्राणियो की सृष्टि कर रखी है, वे हमारे अपने ही सार के कल्पनात्मक प्रतिबिम्ब मात्र हैं। जादू उतर गया, एक ही धडाके मे 'प्रणाली' की धज्जिया उड गयी, और अतर्विरोध, जो केवल कल्पना की वस्तु सिद्ध हुआ, काफूर हो

---

* का० मार्क्स, 'स्ट्रास और फायरबाख के बीच लूथर पच के रूप मे', १८४२।

गया। इसे समझने के लिए इस पुस्तक का उन्मुक्तकारी प्रभाव अनुभव करना चाहिए था। आम उत्साह का एक वातावरण छा गया, सभी फौरन फ़ायरबाख के चेले बन गये।"*

एगेल्स के इस अर्थपूर्ण वक्तव्य को मार्क्स के आत्मिक विकास पर अतिसरलीकृत ढग से यह द्योतित करने के लिए नही लागू किया जाना चाहिए कि मार्क्स को इस बात के लिए सिर्फ फायरबाख को पढना ही था कि कल का भाववादी तरुण हेगेलवादी एकदम पलटा खाकर रात ही रात मे भौतिकवादी बन जाये।

अपने जवानी के वर्षो में भी मार्क्स जैसे गभीर और स्वतत्र विचार के व्यक्ति के लिए मूलभूत सैद्धांतिक धारणाओ में परिवर्तन तत्क्षण अथवा विशुद्धतया बाह्य प्रभाव का प्रश्न नही हो सकता था।

वह उन लोगो मे से एक नही थे, जो नये सिद्धातो को सहज ही विश्वास कर लेने को तैयार रहते है, भले ही वे विश्वासोत्पादक और अनुप्राणित ढग से प्रतिपादित क्यो न किये गये हो। किसी भी सच्चे वैज्ञानिक-सिद्धातकार की भाति उन्होने दूसरे लोगो की धारणाओ को ग्रहण नही किया, बल्कि उन्हे अपनी धारणाओ के सृजन के लिए आधार बनाया। एक नये सैद्धातिक विचार को स्वीकार करने के पूर्व वह इसे अनिवार्यत अपने अन्वेषणकारी

---

* फ्रे० एगेल्स, 'लुडविग फायरबाख और क्लासिकीय जर्मन दर्शन का अत'।

और निर्मम आलोचनात्मक विचार की कसौटी पर भली-भांति परखते थे। इसके अलावा, वह नये सिद्धातो को पुराने सिद्धातो मे मात्र "जोड" नही देते थे, बल्कि सपूर्ण सचित आत्मिक ज्ञान का पुनर्मूल्याकन भी करते थे। दर्शन की सपूर्ण प्रणाली मे उनका अपना अलग-अलग स्थान निश्चित किया जाना था। पूरी प्रणाली और अलग-अलग सिद्धातो को पुनर्सगठित किया जाना था, ताकि उनकी "सगतता" परिनिष्पन्न बने।

ऐसा दृष्टिकोण हर प्रकार के विचार के सबध मे मार्क्स का लक्षण था, चाहे वह महत्वहीन से महत्वहीन विचार ही क्यो न था। अत., मार्क्स की दार्शनिक अवधारणाओ मे अत्यत महत्वपूर्ण मोड का मूल्याकन करते समय इसे सर्वोपरि ध्यान मे रखा जाना चाहिए।

भौतिकवाद की दिशा मे मार्क्स का मार्ग आसान नही था। इस मामले मे केवल फायरबाख ने ही महत्वपूर्ण भूमिका नही अदा की। लंबे और सजटिल आत्मिक विकास, सपूर्ण पूर्ववर्ती दर्शनशास्त्र की उपलब्धियों के आलोचनात्मक आत्मसात्करण, धार्मिक विश्वदृष्टिकोण के साथ युद्ध, हेगेल की तेजस्वी प्रणाली के साथ शुरू मे इसे आधुनिक बनाने के उद्देश्य से और बाद मे इसे विजित करने के उद्देश्य से सघर्ष के जरिये मार्क्स भौतिकवाद पर पहुचे।

हेगेलीय दर्शन की "परिकल्पनात्मक प्रकृति" से असतोष, "ससार" के साथ दर्शन की निकटतर एकता के लिए खोज, अनीश्वरवादी अवधारणाओ के लिए अविरो-

सम्यक सैद्धांतिक आधार के लिए खोज—इन सबने मार्क्स को डाक्टर की डिग्री वाले शोध-प्रबंध में ही भौतिकवाद पर ध्यान देने के लिए प्रेरित किया। लेकिन इसमें उन्होंने यूनानी भौतिकवाद के प्रति जो सहानुभूति प्रदर्शित की है, उसका सैद्धांतिक बोध अभी भी नहीं हुआ है।

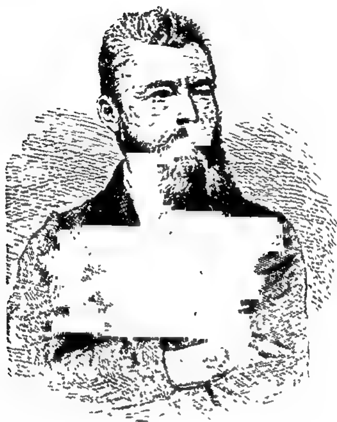
बेशक, फायरबाख की 'ईसाई धर्म का सार' और अन्य कृतियों से मार्क्स के चिंतन-मार्ग को उस दिशा में अग्रसर होने के लिए जबर्दस्त प्रेरणा प्राप्त हुई, जिस दिशा में वह पहले से ही बढ़ रहा था।

लेकिन संभवत इस दिशा में मार्क्स को सबसे बड़ी प्रेरणा *Rheinische Zeitung* में उनके अगवारी कार्य कलापों, जनता के उत्पीड़ित हिस्सों के उत्कट प्रवक्ता होने के दृष्टिकोण, राजनीतिक और सामाजिक शक्तियों, वर्ग आकांक्षाओं और भौतिक हितों के पेचीदा संघर्ष और अन्योन्यक्रिया को समझने की उनकी इच्छा से प्राप्त हुई।

इसमें उन्हें फायरबाख के भौतिकवाद से इतनी ही कम सहायता मिल सकती थी, जितनी कि हेगेल के विधि-दर्शन से। फायरबाख उस क्षेत्र में—सर्वोपरि सामाजिक संबंधों के क्षेत्र में—भाववादी बने रहे, जिसमें मार्क्स जाच-पड़ताल करना चाहते थे। यहा तो हेगेल भी फायरबाख से श्रेष्ठ थे।

यह खोज करना दिलचस्प है कि कैसे मार्क्स का अन्वेषणकारी विचार सत्य के कण टटोलते हुए सामाजिक संबधो की व्याख्या की दिशा मे अपना मार्ग बनाता है।

१८४२ के प्रारंभ मे मार्क्स लिखते हैं कि "स्वयं



लुडविग फायरबाख

वस्तु की भाषा" में बोलना, "हरेक वस्तु का उसके सार के अनुसार" विवेचन करना आवश्यक है*, कि सत्य वस्तुओं को वैसे ही समझने में है, "जैसा कि वे वस्तुत है"**।

इन वक्तव्यों की भौतिकवादी प्रवृत्ति में लेशमात्र संदेह नहीं है, लेकिन भौतिकवाद यहां अत्यंत अमूर्त रूप में प्रकट होता है और सामाजिक संबंधों का विवेचन नही करता है।

१८४२ की सरत में वन की चोरी पर लेख पर काम करते हुए मार्क्स के सामने स्वामित्व और कानून के बीच गहनतर समझदारी प्राप्त करने की आवश्यकता प्रस्तुत हुई। चूंकि निजी स्वामित्व व्यक्ति के ऊपर प्रभुत्व और निर्धनों के विरुद्ध राज्य-प्रशासनिक कार्रवाई का अधिकार प्रदान करता है, इसलिए क्या यही वह कारक है, जो राजनीतिक और न्यायिक संस्थाओं को निर्धारित करता है? यह इसी स्पष्ट निष्कर्ष की ओर इंगित करता प्रती हुआ, परंतु स्वयं मार्क्स अभी भी इसे सूत्रबद्ध नही करते

१८४३ के शुरू में मार्क्स सामाजिक संबंधों की प्रक्रिय की सही समझ के निकट अधिक निश्चित रूप से पहुंच जा है। मोजेल के अंगूर उत्पादकों की रक्षा करते हुए वह

* का० मार्क्स, 'नवीनतम प्रशियाई सेंसरशिप आदेश पर टिप्पणियां'।

** का० मार्क्स, 'स्ट्रास और फायरबाख के बीच लूथर पंच के रूप में'।

दर्शाते हैं कि सामाजिक अन्याय अलग-अलग व्यक्तियों की कार्रवाइयों द्वारा हर्गिज नहीं पैदा होता, कि ये व्यक्ति "समकालीन परिस्थितियों की सभी कठोरता" को मूर्तित करते है और यह कि ये परिस्थितिया "सामान्य, अदृश्य और अप्रतिरोध्य शक्तियां" हैं।*

ये परिस्थितिया अलग-अलग व्यक्तियों की इच्छा से उतनी ही स्वतंत्र हैं, जितनी कि "श्वसन-प्रणाली"। सद्भावना या दुर्भावना अधिकारियों के पक्ष में और निर्धनों के पक्ष मे नही खोजी जानी चाहिए, वल्कि "परिस्थितियों के प्रभाव को देखा जाना चाहिए"**।

मार्क्स इस निष्कर्ष पर पहुंच रहे है कि ऐसा दृष्टिकोण पेचीदा सामाजिक टकरावों को लगभग उसी निश्चितता से समझने में समर्थ बनाता है, जिससे रसायनज्ञ रासायनिक यौगिकों के "टकरावो" को निर्धारित करता है। "यह सिद्ध हो जाते ही कि एक परिघटना परिस्थितियों द्वारा आवश्यक बना दी जाती है, उन बाह्य परिस्थितियो को निश्चित करना बिल्कुल कठिन नही रह जायेगा, जिनके अंतर्गत यह वस्तुतः उत्पन्न होनी चाहिए थी और जिनके अंतर्गत यह नही उत्पन्न हो सकी, हालांकि इसकी आवश्यकता पहले से ही विद्यमान थी।"***

जहा अभी कुछ समय पहले ही मार्क्स ने प्रेस की

---

* का० मार्क्स, 'मोज़ेल के सवाददाता की सफाई'।

** वही।

*** वही।

स्वतंत्रता के अभाव को सामाजिक समस्याओं के समाधान में बाधा माना था, वहा अब अपने नव-प्राप्त भौतिकवादी दृष्टिकोण के अनुसार वह यह मानते है कि स्वतंत्र प्रेस की आवश्यकता मोज़ेल प्रांत में विपत्तिजनक स्थिति से उत्पन्न होती है।*

इस भौतिकवादी दृष्टिकोण से मार्क्स हेगेल के "सर्वेश्वरवादी रहस्यवाद" की आलोचना करते है, जहा "विचार राज्य की प्रकृति के अनुरूप नही होता, बल्कि राज्य बनी-बनायी विचार-प्रणाली के अनुरूप होता है" **। मार्क्स सोचते हैं कि अपने विभिन्न रूपों मे राज्य की विषय-वस्तु की व्याख्या स्वयं इससे, "राज्य के विचार" से नही, बल्कि भौतिक संबधों – परिवार और "नागरिक समाज" – के क्षेत्र से की जानी चाहिए।

प्रतीत होता है कि सामाजिक संबंधो के स्पष्टीकरण की जिस कुजी की तलाश थी, वह अब मिल गयी है, और हेगेल तथा फायरबख के मुकाबले आगे की ओर एक बडा डग भर लिया गया है। सामाजिक संबधो, आत्मगत आकांक्षाओ, वैयक्तिक मनोवेगों और विचारो के संघर्ष की उथल-पुथल मे वस्तुगत तर्क की रूपरेखाए मार्क्स की नजरो के सामने उभरने लगी है।

लेकिन फिलहाल तो मात्र रूपरेखाए ही है, जो धुधली, अस्पष्ट और अनिश्चित है। जनसाधारण को यह

---

* वही।

** का० मार्क्स, 'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास'।

बताना ही काफी नही है कि उनकी बुरी स्थिति का कारण वस्तुगत सबधो मे है, बल्कि इन सबधो की प्रकृति को बेनकाब किया जाना चाहिए, स्वाधीनता का मार्ग दिखाया जाना चाहिए और एक "सच्चा संघर्ष-नारा" प्रदान किया जाना चाहिए। वह शक्ति कहा है, जिस पर "उत्पीडित वर्ग" भरोसा कर सके?

सामाजिक समस्याओ की व्याख्या करने के कार्य के साथ मार्क्स का सघर्ष बना हुआ है, लेकिन उसके मार्ग मे एक "बाधा" आ खडी होती है: उनके सामने राजनीतिक अर्थशास्त्र, इतिहास और सामाजिक संबधो के सिद्धात के क्षेत्र मे, कल्पनावादी समाजवादियों और कल्पनावादी कम्युनिज्म के प्रतिनिधियो के सिद्धातो के क्षेत्र मे ज्ञान की कमी उपस्थिति हो जाती है।

मार्क्सवाद एक पूर्ण और सुसगत सिद्धांत है। यह एक ऐसी ही पूर्ण प्रणाली के रूप मे निर्मित भी हुआ, जिसमे कोई भी अग समष्टि के पहले आविर्भूत नही होता, बल्कि एक जीवित भ्रूण की भाति समष्टि के साथ विकसित होता और परिनिष्पन्न बनता है।

यह सोचना भोलापन होगा कि पहले द्वद्वात्मक भौतिकवाद का आविर्भाव हुआ और इसके बाद वैज्ञानिक कम्युनिज्म और राजनीतिक अर्थशास्त्र का आविर्भाव हुआ, हालाकि अपने जीवन की विभिन्न अवधियो मे मार्क्स की दिलचस्पिया इस या उस क्षेत्र मे सकेद्रित रही। यद्यपि मार्क्स ने दर्शन के साथ अपने नये विश्व-दृष्टिकोण का विकास शुरु किया, फिर भी, इस क्षेत्र मे निर्णायक मोड़

पेयत्न मार्क्सवाद के सामाजिक और आर्थिक पहलुओं के निर्माण की प्रक्रिया मे ही सभव हुआ।

यह चीज *Rheinische Zeitung* की अवधि मे ही स्पष्ट हो चुकी थी। मार्क्स का दार्शनिक ज्ञान व्यापक और प्रगाढ तो था, परतु यह आत्मिक ज्ञान स्पष्टतया वास्तविक जीवन द्वारा प्रस्तुत सवालो को हल करने और स्वयं दर्शन मे भी सही प्रगति प्राप्त करने के लिए पर्याप्त नही था। मार्क्स वास्तविक जीवन और सिद्धात मे सामाजिक सबधो के गहन अध्ययन मे लग जाने के लिए विवश थे।

उन्होने कल्पनावादी समाजवादियो, सबसे पहले, सेंट-सीमोन, फ़ुरिये और ओवेन की सैद्धातिक सरचनाओ का आलोचनात्मक विश्लेषण किया। इन कल्पनावादी समाजवादियो ने बडी कुशग्रता से कम्युनिस्ट समाज के लक्षणो का वर्णन तो किया (निजी स्वामित्व, वर्ग-विरोध और मानव द्वारा मानव के शोषण का अभाव, श्रम का एक अभिशाप से मूल मानव आवश्यकता मे रूपातरण, स्वशासन, आदि), पर भोलेपन से यह मान लिया कि पूजीवादी समाज को कम्युनिस्ट समाज मे क्राति द्वारा नही, बल्कि "उदाहरण की शक्ति" द्वारा, प्रवचनो, वैकपतियो और फैक्टरी-मालिको के विश्वास-परिवर्तन द्वारा रूपातरित किया जा सकता है, जो स्वेच्छया अपनी सपत्ति त्याग देगे और सामूहिक उपयोग के लिए निर्धनो को सौप देगे।

स्पष्टतया, अपने विद्यार्थी जीवन मे ही मार्क्स को कल्पनावादी समाजवादियो के प्रति कुछ सदेह महसूस हुआ, वह कल्पना की उनकी सुदर उडानो और अर्ध-



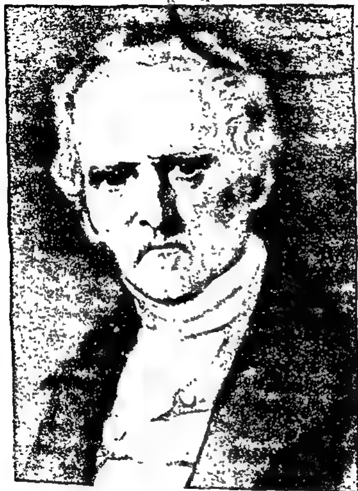
रॉबर्ट ओवेन

सामंती प्रथा के बीच कोई वास्तविक सबंध नही देखते थे। यदि हम इस बात को भी ध्यान में रखें कि जर्मनी मे कल्पनावादी समाजवादियो के विचार अव्यवस्थित और यहा तक कि रहस्यात्मक रूप मे प्रचारित किये जाते थे, तो मार्क्स का सदेह स्वाभाविक था।

फौरी व्यावहारिक कार्यो ने, जिन्हे हल करने मे मार्क्स ने अपने को पूरी तरह *Rheinische Zeitung* मे काम करते हुए लगा दिया, कल्पनावाद के प्रति उनके सतर्क रुख को और भी अधिक निश्चित बना दिया। उनके विचार में, "सही सिद्धात ठोस परिस्थितियो के अतर्गत तथा विद्यमान वस्तु-स्थिति के आधार पर स्पष्ट और विकसित किया जाना चाहिए"। उन्हे अपने पहले के मित्रो, तरुण हेगेलवादियो के दृष्टिकोण से नफरत हो गयी थी, जो "सवैधानिक ढाचे मे कदम-ब-कदम स्वाधीनता प्राप्त करने" के बजाय "कपोल-कल्पनाओ की सुखद आरामकुर्सी"* मे बैठकर आम बहसे करने मे मग्न थे।

निस्सदेह, इस ढग से स्वाधीनता प्राप्त करने की आशाए भ्रामक थी, एक ऐसा तथ्य, जिसे मार्क्स ने अभी तक महसूस नही किया था। वह सभी "स्वतत्र रूप से सोचनेवाले व्यावहारिक लोगो" को अखबार के इर्द-गिर्द ऐक्यबद्ध होने की आशा कर रहे थे और उन्हे आशका थी कि "वर्तमान राज्य प्रणाली के आधारो के खिलाफ स्पष्ट प्रदर्शन के कारण सेसरशिप और तीव्र बनायी जा

* का० मार्क्स, ड० ओप्पेनहाइम को, १८४२।



शार्ल फुरिये

सामती प्रशा के बीच कोई वास्तविक सबध नही देखते थे। यदि हम इस बात को भी ध्यान मे रखें कि जर्मनी मे कल्पनावादी समाजवादियों के विचार अव्यवस्थित और यहा तक कि रहस्यात्मक रूप मे प्रचारित किये जाते थे, तो मार्क्स का सदेह स्वाभाविक था।

फौरी व्यावहारिक कार्यो ने, जिन्हे हल करने मे मार्क्स ने अपने को पूरी तरह *Rheinische Zeitung* मे काम करते हुए लगा दिया, कल्पनावाद के प्रति उनके सतर्क रुख को और भी अधिक निश्चित बना दिया। उनके विचार मे, "सही सिद्धात ठोस परिस्थितियो के अतर्गत तथा विद्यमान वस्तु-स्थिति के आधार पर स्पष्ट और विकसित किया जाना चाहिए"। उन्हे अपने पहले के मित्रों, तरुण हेगेलवादियो के दृष्टिकोण से नफरत हो गयी थी, जो "सवैधानिक ढाचे मे कदम-ब-कदम स्वाधीनता प्राप्त करने" के बजाय "कपोल-कल्पनाओ की सुखद आरामकुर्सी"* मे बैठकर आम बहसे करने मे मग्न थे।

निस्सदेह, इस ढग से स्वाधीनता प्राप्त करने की आशाए भ्रामक थी, एक ऐसा तथ्य, जिसे मार्क्स ने अभी तक महसूस नही किया था। वह सभी "स्वतत्र रूप से सोचनेवाले व्यावहारिक लोगो" को अखबार के इर्द-गिर्द ऐक्यबद्ध होने की आशा कर रहे थे और उन्हे आशका थी कि "वर्तमान राज्य प्रणाली के आधारो के खिलाफ स्पष्ट प्रदर्शन के कारण सेसरशिप और तीव्र बनायी जा

---

* का० मार्क्स, ड० ओप्पेनहाइम को, १८४२।

सकती है और अखबार भी बंद किया जा सकता है"।*

लेकिन मामले ने एक ऐसा मोड़ लिया कि १८४२ की शरत में मार्क्स को कल्पनावादी कम्युनिज्म के विचारों पर अपने को खुलेआम व्यक्त करने के लिए विवश होना पड़ा।

उस समय *Rheinische Zeitung* ने मेविस्सेन और हेस्स की लेखमाला प्रकाशित की, जिसमें लेखकों ने समाजवादी विचार व्यक्त किये और "सापत्तिक क्रांति" के लिए भी माग पेश की। खास तौर से, मोजेस हेस्स ने निजी स्वामित्व के खिलाफ सर्वहारा के सघर्ष की तुलना सामतवाद के खिलाफ बुर्जुआ वर्ग के सघर्ष से की और घोषणा की कि इस संघर्ष ने राष्ट्रीय क्राति लाने का खतरा प्रस्तुत कर दिया है।

Rheinische Zeitung के प्रतियोगी *Augsburg Allgemeine Zeitung* ने इस मौके का लाभ अपने प्रतिद्वद्वी पर आक्रमण करने के लिए उठाया। इसने "धनी व्यापारी के बेटो" (मोजेस हेस्स व्यापारी परिवार के थे) का मजाक उडाया, जो कोलोन के दस्तकारो और गोदी-मजदूरो के साथ अपनी सपत्ति मे हिस्सा बटाने का जरा भी इरादा नही रखते हुए समाजवादी विचारो के साथ निश्छल ढग से खेलते है। इसके साथ ही, *Allgemeine Zeitung* ने तर्क पेश किया कि जर्मनी जैसे पिछड़े देश मे मध्यम वर्ग को, जो अभी-अभी स्वतत्रतापूर्वक सास लेना आरभ किया है, १७८९ के फ्रासीसी अभिजात

---

* का० मार्क्स, ड० ओप्पेनहाइम को, १८४२।



आरी सेंट-सीमोन

वर्ग की नियति से डराना-धमकाना निरा बचकानापन है।

यह कुटिल प्रहार *Rheinische Zeitung* से बुर्जुआ पाठको को डराने और अखबार को सरकार की नज़र में कम्युनिस्ट अखबार जैसा प्रदर्शित करने के उद्देश्य से किया गया था।

Rheinische Zeitung के प्रधान संपादक के रूप में मार्क्स इस आक्रमण का मुहतोड़ जवाब देने को बाध्य थे। उनके समक्ष एक पेचीदा और गूढ़ कूटनीतिक कार्य – अखबार द्वारा अपनाये गये दृष्टिकोण की रक्षा करना और साथ ही "कम्युनिज्म" से स्तंभित अखबार के ग्राहको को आश्वस्त करना – प्रस्तुत था।

मार्क्स निर्ममतापूर्वक टिप्पणी करते है कि कम्युनिज्म लच्छेदार शब्दाडम्बर के लिए दीवानखाने का विषय नही होना चाहिए। इसमे गुलाब-जल की खुशबू नही आती है और यह गंदा लिनन पहनता है, लेकिन यह इसे महत्वपूर्ण आधुनिक प्रश्न होने से नही रोकता।

मार्क्स दृढ़तापूर्वक नये वर्ग अर्थात सर्वहारा के विचार की रक्षा करते है "यह बात कि वह वर्ग जिसके पास आज कुछ नही है, मध्यम वर्गों की धन-दौलत में हिस्सेदार होने की मांग करता है, एक तथ्य है, जो स्त्रासबुर्ग की बातों के बिना और औग्सबुर्ग की चुप्पी के बावजूद मानचेस्टर, पेरिस और ल्योन में सभी लोगो को स्पष्ट है।"*

मार्क्स की कृतियो में सर्वहारा के बारे में इस प्रथम

---

* का० मार्क्स, 'कम्युनिज्म और *Augsburg Allgemeine Zeitung*, १८४२।

उल्लेख से प्रकट है कि १८४२ मे ही वह फ्रास और इगलैड मे इसकी सामाजिक मागो पर ध्यान दे रहे थे।

लेकिन मध्यम वर्ग (बुर्जुआ वर्ग) और नये वर्ग (मजदूरो) के बीच "टकराव" किस तरीके से तय होगा, मार्क्स अभी इसका निर्णय करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर नही लेते। "हमने उन समस्याओ को एक ही वाक्य मे निपटा देने की कला मे पारगति नही प्राप्त की है, जिहे दो राष्ट्र हल करने के लिए काम कर रहे हैं।"*

मार्क्स प्रश्न के दो पहलुओ – "नये वर्ग" के आदोलन के रूप मे कम्युनिस्ट आदोलन की वास्तविक समस्या और सैद्धातिक व्याख्या, कम्युनिज्म के प्रचार – के बीच स्पष्ट अतर करते है। इस दूसरे पहलू के सबध मे मार्क्स आलोचनात्मक हैं। लेकिन यहा भी वह अपने को व्यक्त करने के तरीके मे अत्यत सतर्क हैं। यह घोपणा करने मे कि *Rheinische Zeitung* कम्युनिस्ट विचारो को पक्के तौर से आलोचना का विषय बनायेगा, कि वह यह नही मानता कि उनमे सैद्धातिक वास्तविकता भी है और इसलिए उनके व्यावहारिक कार्यान्वियन की और भी कम इच्छा कर सकता है, मार्क्स "अपने वर्तमान रूप मे" कम्युनिस्ट विचारो को ही ध्यान मे रखते है।

कल्पनावादी कम्युनिज्म मे वस्तुत कौन-सी चीज

---

* का० मार्क्स, 'कम्युनिज्म और *Augsburg Allgemeine Zeitung*.

थी, जो मार्क्स को अच्छी नही लगी, यह *Allgemeine Zeitung* के किसी अज्ञात परिचित के बारे मे उनकी व्यग्यपूर्ण टिप्पणियो से स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है, जिसने अपनी सारी सपत्ति कम्यून को दे दी और "अपने साथियो की प्लेटे धोयी तथा जूते पालिश किये"। स्पष्टतया यहा उनका इशारा फुरिये के अनुयायियो के फलाज-कम्यूनो की ओर है, जो अनेक लतीफ़ो की विषय-वस्तु थे और कम्युनिस्ट विचारो को वदनाम ही करते थे। मार्क्स यह कहने मे सही थे कि ऐसे "प्रयास" वास्तव मे ख़तरनाक नही है।

सेसरशिप की वजह से किंचित् प्रच्छन्न इन टिप्पणियो का सार यह था कि कम्युनिस्ट विचारो के लिए ऐसे सैद्धातिक आधार की खोज करना आवश्यक है, जो लोगो के मस्तिष्को को जीत लेगा, उन्हे कायल कर लेगा और फिर तोपो का भी प्रतिरोध करने मे समर्थ हो जायेगा। मार्क्स मानते है कि कम्युनिज्म की सैद्धातिक आलोचना करने के पूर्व वह लेरू, कोंसिदेरा की कृतियों और सर्वोपरि "प्रूदो की कुशाग्रबुद्धि पुस्तक" का पूर्णरूपेण अध्ययन करना चाहते है।

वाद में उन्होंने स्मरण किया "उस समय जब 'और आगे वढने' की अभिलाषा प्रायः ही वास्तविक ज्ञान का स्थान ले लेती थी, दर्शन का हल्का पुट लिये हुए फ़ासीसी समाजवाद और कम्युनिज्म की प्रतिध्वनि *Rheinische Zeitung* मे सुनायी पड जाती थी। इस पल्लवग्राहिता पर मैंने आपत्ति की, लेकिन साथ ही *Allgemeine*

Augsburger Zeitung से चले एक विवाद मे मैंने स्पष्टत स्वीकार किया कि मेरा ज्ञान ऐसा नही है कि मैं फ्रासीसी सिद्धांतो की विषय-वस्तु पर कोई मत व्यक्त कर सकू।"*

Rheinische Zeitung के सचालन ने मार्क्स से, जो उस समय २५ साल के भी नही थे, न केवल अधिक व्यापक और गहन ज्ञान की, वल्कि सयत, व्यावहारिक नेतृत्व के गुणो की भी माग की, जो प्रतीयमानत योद्धा की अदम्य प्रकृति के साथ मार्क्स के व्यक्तित्व का लक्षण नही थे।

लेकिन मार्क्स ने दिखा दिया कि उन्होने सेसरशिप और अतिक्रातिकारी मागो के बीच से गुजरने वाले एकमात्र जोखिम-भरे मार्ग पर निपुणतापूर्वक आगे बढते हुए मजबूत हाथ से अखवार चलाने की जटिल कला मे पूरी पारगति प्राप्त कर ली थी।

ये मागे 'स्वतत्र' नामक समाज मे शामिल बर्लिन के तरुण हेगेलवादियो ने की। उन्होने अखबार को दुनिया मे क्राति उत्पन्न करने के दावो और अनर्गल विचारो से भरे लेखो के ढेर के ढेर भेजे, जिन्हें उन्होंने बुरी तरह समझे कल्पनावादी कम्युनिज्म से चटपटा बनाया था।

मार्क्स ने इस "शब्दप्रवाह" को दृढतापूर्वक इकार करते हुए अपना चरित्रबल प्रदर्शित किया। न ही वह *Rheinishe Zeitung* के नये संपादक की "दकियानूसी"

---

* का० मार्क्स, 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास', १८५८-५६।

और "गद्दारी" के बारे मे 'स्वतंत्र' समाज वालो की निराशाजनक शोरगुल से विचलित हुए।

क्रांतिकारी जनवादी के रूप मे मार्क्स के लिए अखबार को देश मे सभी विपक्षी शक्तियो का केन्द्र बनाना महत्वपूर्ण था। लेकिन 'स्वतंत्र' समाज वाले माग कर रहे थे कि अखबार "अतिवादी" ढंग से काम करे, जिससे इसे फौरन बद कर दिया जाता। परिणाम यह होता कि "संघर्ष-क्षेत्र" पुलिस और सेसरशिप के हाथो मे चला जाता।

'स्वतंत्र' समाज के प्रति मार्क्स के कड़े रुख को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि यह किस चीज का प्रतिनिधित्व करता था, जिसके सदस्यो मे ऐसे लोग – ब्रूनो बावेर, अडोल्फ रूटेनबेर्ग और फ्रेडरिक कोपेन – भी थे, जिनके साथ पहले मार्क्स की अच्छी दोस्ती थी।

'स्वतंत्र' समाज तरह-तरह के लोगो से बना था. इसमे वाग्विदग्धता में एक-दूसरे से होड लगाये उदारतावादी पत्रकार, नये राजनीतिक उषा-काल के अस्पष्ट सपने सजोये युवा कवि, चित्रकार, विश्वविद्यालयो के युवा प्राध्यापक, जिन्होने अभी अपने को पाडित्य के चोगे मे नही लपेटा था, बैरको और अस्तबलो की दिलचस्पियो मे पूरी तरह लीन नही हुए फौजी अफसर और अपने प्रोफेसरो के उबाऊ व्याख्यानो से बुरी तरह उकताये विद्यार्थी शामिल थे। 'स्वतंत्र' समाज वालो के बीच अपने दोस्ताना मिजाज के लिए सुप्रसिद्ध औरते भी थी, जो याराना मजाको या अश्लील शब्दो पर नाक-भौं नही चढाती थी।

वे एक भटियारखाने मे जमा होते थे, खूब डटकर शराब पीते थे, चुगलखोरी करते थे और इन सब कामो के साथ-साथ इतने ही जोश-खरोश से विद्यमान व्यवस्था को नष्ट करते थे। कूपमडूकता के प्रति अपनी घृणा बडे ज़ोर-शोर से प्रदर्शित करते हुए, समाज के सभी पूर्वाग्रहो से मुक्त होने का दावा करते हुए और एक-दूसरे पर "भयकर क्रातिकारी" फिकरो की बौछार करते हुए इन अक्खड लेखको ने स्वय ही पागल कूपमडूको का ही उदाहरण पेश किया।

उनकी पार्टिया बहुत अक्सर व्यभिचार मे बदल जाती थी। वे ऊधम मचाते थे, भिखारियों के जुलूस निकाले, मदिरा-पान के दौर जारी रखने के लिए राह चलते लोगो से पैसे ऐंठे, वेश्यालयो मे गये और वहा तब तक विदूपकी करते रहे, जब तक उन्हे बाहर निकाल नही दिया गया।

ब्रूनो बावेर ने, जो अपने भाई एडगर के साथ 'स्वतत्र' समाज वालो की कलकपूर्ण कार्रवाइयो के नेता थे, माक्स स्टर्नर की शादी के दौरान पादरी को असली विवाह की अगूठियो की जगह अपने बटुए के छल्ले दिये।

इन उच्छृखलताओ के साथ ही, जो कूपमडूको को थर्रा देती थी, ब्रूनो बावेर ने इस आशय के उतने ही उच्छृखल सैद्धातिक वक्तव्य दिये कि राज्य, सपत्ति और परिवार को समाप्त अवधारणाए मान लिया जाना चाहिए।

अपने को समाज की "रूढियों" से मुक्त करते

हुए, "भीड" से ऊपर खडा होने वाले स्वाभिमानी व्यक्ति की पूजा की घोषणा करते हुए, 'स्वतत्र' समाज वालो ने यह नही देखा कि साथ ही साथ वे अपने को मानवीय स्थिति से भी मुक्त कर रहे है और गदगी मे नख-शिख डूबे जा रहे है। उन्होने समाज की "नीचता" के खिलाफ अपनी वैयक्तिक नीचता से प्रतिवाद किया।

मार्क्स, जिन्हे प्रवचनों, कूपमडूक ढोग से बिल्कुल नफरत थी, इनके खिलाफ प्रतिवाद के ऐसे रूपो का समर्थन नही कर सकते थे। वह खास तौर से इस बात पर क्रुद्ध थे कि अविश्वसनीय अहम्मन्यता और शेखी के साथ "बर्लिन के वडबोले" अपने को सच्चे क्रातिकारियो, कम्युनिस्टो और मानवजाति के मुक्तिदाताओ के रूप मे प्रचारित कर रहे थे और इस तरह महान ध्येय को बदनाम कर रहे थे।

उन्होने इन "स्वातत्र्य वीरो" का, जिन्होने *Rheinische Zeitung* को निलर्ज्ज आत्म-प्रचार के एक अग मे परिवर्तित करना चाहा, एक अनम्य और उचित माग – कम अस्पष्ट तर्क, आडबरपूर्ण फिकरे और अहम्मन्यतापूर्ण आत्म पूजा और अधिक निश्चितता, वास्तविक वस्तु-स्थिति पर ध्यान, अधिक विशेषज्ञ ज्ञान – के साथ सामना किया।

मार्क्स ने कहा कि वह 'स्वतत्र' समाज वालो की ऐसी हरकते जैसे कि सायोगिक थियेटर समीक्षाओ, आदि मे कम्युनिस्ट और समाजवादी सिद्धातो अर्थात नये विश्व-दृष्टिकोण को चोरी-छिपे घुसेडना अनुचित, यहा

तककि अनैतिक भी मानते हैं। उन्होंने माग की कि "यदि कम्युनिज्म की चर्चा छिडी है, तो इस पर एक मूलतया भिन्न और अधिक पूर्ण वहस की जानी चाहिए"।*

'स्वतत्र' समाज से सवध-विच्छेद एक सच्चाई वन चुका था, लेकिन इसने सरकार के दडात्मक हाथ से *Rheinische Zeitung* की रक्षा नही की, जो आलोचनात्मक लेखो, खास तौर से मोज़ेल के अगूर उत्पादको की रक्षा मे मार्क्स के लेख से कुपित थी। अखबार पर सकट के बादल मडरा रहे थे।

सेसरशिप की अत्यत वीभत्स यातनाओ, शेयरहोल्डरों के शोरगुल, प्रातीय असेम्बली मे दोपारोपणो और प्रात के ओवरप्रेजिडेट की शिकायतो के बावजूद मार्क्स अपने पद पर बने रहे और इस बात को अपना कर्तव्य माना कि सत्ताधारियो को अपनी योजनाए लागू करने से भरसक रोके।

मार्क्स मामले को आपसी समझौतो से निपटाने को तैयार थे, बशर्ते कि वे अखबार को अपना स्वरूप और गरिमा बनाये रहने देते तथा जिस लाइन पर यह पहले चल रहा था, उस पर चलने देते। लेकिन जब अखबार के मालिको ने दबाव देना शुरू किया कि अखबार को सरकार के प्रति नरम रुख अख्तियार करना चाहिए, तो मार्क्स ने इसका प्रतिवाद किया और सपादकीय मडल से इस्तीफा देने को विवश हुए। युक्तिगत कारणो से

---

* का० मार्क्स, आ० रूगे को, १८४२।

वह बडी बात के हित मे छोटी-मोटी बातो मे तो समझौता कर लेते थे, लेकिन अपने सिद्धातो से कभी पीछे नही हटे।

अखबार का कट्टर दुश्मन, इसका सेसर सेट-पाल तक भी, जिसने बडी बेशर्मी से सपादकीय मडल को परेशान किया, सपादक मार्क्स की मान-मर्यादा, चरित्र-बल और गहन विश्वासो से इकार नही कर सका। सरकार को अखबार से डा० मार्क्स के इस्तीफे की सूचना देते हुए, *जिसके अतिजनवादी विचार प्रशियाई राज्य के* सिद्धांतो से लेशमात्र मेल नही खाते थे, सेट-पाल ने लिखा कि अब कोलोन मे एक भी ऐसा आदमी नही है, जो अखबार को इसके प्रहारकारी स्वरूप को बनाये रखते हुए चलाने और इसकी नीतियो के लिए जोर-शोर से लडने मे समर्थ हो।

स्वय मार्क्स ने अखबार छोड देने के बाद राहत की सास ली। उन्होने आर्नोल्ड रूगे से कहा कि उस वातावरण मे उनका दम घुटने लगा था। "मुझे इस बात से चिढ होती है कि अकुश तले काम किया जाये, भले ही यह अकुश स्वतत्रता के नाम पर हो, कि मामूली चिकोटियां भरी जाये, जबकि डडा लेकर लडाई करने की जरूरत है। मैं ढोग, मूढता मनमानेपन और इस बात से तग आ गया हू कि हर वक्त अपनी चेतना को दवाते हुए बाल की खाल खीचने वाली बात करू, बेमतलब की मीन-मेखो का जवाब दू—सक्षेप मे, सरकार ने मुझे फिर स्वतत्र बनाया।"*

* का० मार्क्स, आ० रूगे को, १८४३।

सभवत मार्क्स ने १८६५ मे अपने जीवन की इसी अवधि के बारे मे स्मरण किया, जब उन्होंने अपनी पुत्रियो द्वारा तैयार की गयी प्रश्नावली के एक प्रश्न "आपकी नजर मे दु:ख क्या है" का उत्तर "परवाशता" दिया था।

मार्क्स के लिए अखबार छोडने का अर्थ अपने देश मे राजनीतिक सघर्ष मे भाग लेने का अतिम अवसर खोना था। और इसके बिना उनके लिए कूपमडूक जर्मनी मे, जो उन्ही बूटो को चूम रहा था, जिनसे कैसर उदीयमान बुर्जुआ उदारतावाद को कुचल रहा था, अब और रहना व्यर्थ था।

इस वजह से मार्क्स ने बिना किसी हिचकिचाहट के और सभवत. खुशी से जर्मनी छोड देने का निर्णय किया, जहा "लोग अपने को खोटे बनाते है"*, क्योंकि "यहा का वातावरण आदमी को दास बना देता है"**।

मार्क्स की प्रफुल्ल मनोदशा का एक दूसरा महत्वपूर्ण कारण भी था। उन्होंने जेनी के साथ अपना जीवन जर्मनी से बाहर शुरु करने का दृढ निश्चय किया था, जो विश्वविद्यालय मे अध्ययन और *Rheinische Zeitung* मे कार्य के वर्षो मे लगातार उनकी प्रतीक्षा करती रही थी।

---

* का० मार्क्स आ० रूगे को, १८४३।

** का० मार्क्स, '*Deutsch-Französische Jahrbücher* से पत्र'।

अपनी व्यक्तिगत योजनाओ के बारे मे आर्नोल्ड रूगे को सूचित करते हुए मार्च १८४३ मे मार्क्स ने उनसे स्वीकार किया . "जरा भी रोमासवाद के बिना मैं आपको विश्वास दिला सकता हूं कि मैं रोम-रोम से, वस्तुत सजीदा रूप मे प्यार करता हूं। मेरी सगाई सात साल पहले हुई थी और मेरी मगेतर ने मेरे लिए अंशत अपने धर्मभीरू अभिजात सगे-सबधियो के खिलाफ, जिनके लिए 'स्वर्गवासी ईश्वर' और 'बर्लिनवासी ईश्वर' समान रूप से पूजा की वस्तु है, और अशत: मेरे परिवार के खिलाफ बडी जबर्दस्त लडाइया लडी है, जिसमे कुछ पुरोहित और मेरे दूसरे दुश्मन आश्रय लिये हुए है।"

१२ जून, १८४३ को "श्री कार्ल मार्क्स, डी० फिल०, कोलोन-निवासी और फ्रोइलैन जोहान्ना बेर्टा जुली जेनी फोन वेस्टफालेन , व्यवसाय-रहित, क्रेउज्नाख-निवासिनी के बीच" विवाह-सविदा पर हस्ताक्षर हुए।

इसी दिन से मार्क्स को एक वफादार जीवन-सगिनी मिल गयी। एगेल्स के शब्दो मे, जेनी " . न केवल अपने पति के भाग्य, कार्य और सघर्ष की सहभागिनी थी, वल्कि उनमे वडी कुशाग्रता और उत्कट भावना से हिस्सा भी लिया"*।

क्रेउज्नाख मे कुछ महीने रहने के वाद युवा दपति

---

* फ्रे० एगेल्स, 'जेनी मार्क्स, फोन वेस्टफालेन की बेटी', १८८१।

पेरिस के लिए रवाना हो गये, जहा मार्क्स और रूगे *Deutsch-Französische Jahrbücher* पत्रिका प्रकाशित करना चाहते थे।

"इस तरह दर्शन के प्राचीन विश्वविद्यालय – पेरिस को – *absit omen!*"* (अपशकुन दूर हो! – सं०)।

---

* फ़े० एंगेल्स, 'जेनी मार्क्स, फ़ोन वेस्टफालेन की बेटी'।

अपनी व्यक्तिगत योजनाओ के बारे मे आर्नोल्ड रूगे को सूचित करते हुए मार्च १८४३ में मार्क्स ने उनसे स्वीकार किया . "जरा भी रोमांसवाद के बिना मैं आपको विश्वास दिला सकता हू कि मैं रोम-रोम से, वस्तुत सजीदा रूप मे प्यार करता हू। मेरी सगाई सात साल पहले हुई थी और मेरी मगेतर ने मेरे लिए अंशत अपने धर्मभीरू अभिजात सगे-सबधियो के खिलाफ, जिनके लिए 'स्वर्गवासी ईश्वर' और 'बर्लिनवासी ईश्वर' समान रूप से पूजा की वस्तु है, और अशत मेरे परिवार के खिलाफ बडी जबर्दस्त लडाइया लडी है, जिसमे कुछ पुरोहित और मेरे दूसरे दुश्मन आश्रय लिये हुए हैं।"

१२ जून, १८४३ को "श्री कार्ल मार्क्स, डी० फिल०, कोलोन-निवासी और फ्रोइलैन जोहान्ना बेर्टा जुली जेनी फोन वेस्टफालेन , व्यवसाय-रहित, क्रेउत्स्नाख-निवासिनी के बीच" विवाह-सविदा पर हस्ताक्षर हुए।

इसी दिन से मार्क्स को एक वफादार जीवन-सगिनी मिल गयी। एगेल्स के शब्दो मे, जेनी " . न केवल अपने पति के भाग्य, कार्य और सघर्ष की सहभागिनी थी, बल्कि उनमे बड़ी कुशाग्रता और उत्कट भावना से हिस्सा भी लिया"*।

क्रेउत्स्नाख मे कुछ महीने रहने के बाद युवा दपत्ति

---

* फ्रे० एगेल्स, 'जेनी मार्क्स, फोन वेस्टफालेन की बेटी', १८८१।

पेरिस के लिए रवाना हो गये, जहां मार्क्स और रूगे *Deutsch-Französische Jahrbücher* पत्रिका प्रकाशित करना चाहते थे।

"इस तरह दर्शन के प्राचीन विश्वविद्यालय – पेरिस को – *absit omen!*"* (अपशकुन दूर हो! – सं०)।

---

* फ़े० एंगेल्स, 'जेनी मार्क्स, फ़ोन वेस्टफालेन की बेटी'।

८

कम्युनिज्म : पूर्ण मानवतावाद

विज्ञान के प्रवेश-द्वार पर,
नर्क के प्रवेश-द्वार की भांति ही
यह माग अवश्य की जानी चाहिए :
"समस्त अविश्वास को यहां
तिलांजलि देनी होगी, समस्त
कायरता यहां त्याग देनी होगी।"

कार्ल मार्क्स*

१९वीं शताब्दी के पांचवें दशक में पेरिस यूरोप का राजनीतिक और सांस्कृतिक केन्द्र था। यहां पोलैंड, इटली, रूस और जर्मनी से क्रांतिकारी और राजनीतिक शरणार्थी आते थे। जर्मनी के विपरीत, यहां सब कुछ—हाल की महान घटनाएं और नयी सामाजिक लड़ाइयों की आशा—क्रांति का सूचक था।

उस काल के पेरिस का वर्णन युवा एंगेल्स निम्नलिखित शब्दों में करते हैं "और केवल फ्रांस के पास ही एक पेरिस है, एक ऐसा नगर, जिसमें यूरोपीय सभ्यता

* का० मार्क्स, 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास'। मार्क्स यहां दांते की 'दिव्य सुखांतिकी' में पंक्तियां उद्धृत करते हैं।

अपने उत्कृष्टतम रूप में पुष्पित हुई है, जो यूरोपीय इतिहास का धमनी-केन्द्र है और जिससे नियमित अंतरालो पर ऐसे तडित-आवेग उत्पन्न होते रहते हैं, जो सारी दुनिया को हिला सकते है, एक ऐसा नगर, जिसकी आबादी ने अपने मे सुख की उत्कट कामना और ऐतिहासिक कार्रवाई की कामना को इस तरह समन्वित किया है, जैसा कि अन्य किसी ने नही, जिसके लोग एथेन्स के सबसे सुसस्कृत एपिक्यूरियन की भाति जीना और सबसे साहसी स्पार्टान की भाति मरना जानते हैं "*

स्वाधीनता, समानता और भ्रातृत्व के उच्च आदर्शों के स्थान पर धनलोलुपता को प्रेरित करने वाली बुर्जुआ व्यवस्था के प्रति जितना असतोष पेरिस मे महसूस किया गया, उतना सभवत कही नही।

यह सयोग की बात नही है कि यही पर सामाजिक चितन ने सैद्धातिक रूप से ऐसे समाज की प्राक्कल्पना करने की चेष्टा की, जो पूंजीवाद का स्थान लेने आ रहा था। अपने स्वप्नलोकों के साथ सेट-सीमोन और फुरिये के बाद काबे, देज़ामी, ब्लाकी, प्रूदो, लेरू आये, जो प्रगतिशील बुद्धिजीवियों और मजदूर मडलो और यूनियनो मे बडे लोकप्रिय थे। फ्रास के सर्वहारा ने बुर्जुआ वर्ग का मुकाबला करने मे समर्थ एक शक्तिशाली सामाजिक शक्ति का रूप ले लिया था।

पेरिस मे ऐतिहासिक विकास के क्षितिज मुग्ध थे

---

* फ्रे० एगेल्स, 'पेरिस से बर्न तक', १८४८

थे, जो जर्मनी की अपेक्षा बहुत ही व्यापक और अधिक दूरगामी थे। अत. स्वभावतया मार्क्स पेरिस में ही, अगर ऐसा कहा जा सकता है तो, मार्क्सवादी बने और यही वैज्ञानिक कम्युनिज्म के महत्वपूर्ण विचार खोजे और सूत्रित किये गये।

क्रातिकारी सिद्धांत की रचना करने, एक सच्चे संघर्ष-नारे की खोज करने के लिए विगत के वर्ग-संघर्षों के अनुभव का सामान्यीकरण करना आवश्यक था। मार्क्स ने जर्मनी में क्रेउत्स्नाख में इस अनुभव का अध्ययन शुरू कर दिया था, लेकिन फ़्रांस में उन्हे इस कार्य को पूरा करने के लिए बेहतर परिस्थितिया मिल गयी। उन्होंने बुर्जुआ इतिहासकारो – थियेरी, मिन्ये, गीजो, थियेर, आदि – की कृतियो का अध्ययन किया, जिन्होंने, जैसा कि मार्क्स ने बाद मे स्वीकार किया, समकालीन समाज मे वर्गों और वर्ग-सघर्ष के अस्तित्व की खोज की। उन्होंने मान्तेस्क्यू, मैकियावेली और रूसो के सामाजिक सिद्धातो का भी अध्ययन किया।

यदि सपूर्ण इतिहास वर्ग-सघर्ष का इतिहास है, तो तर्कसगत निम्नलिखित सवाल उठते है: समकालीन परिस्थितियो मे कौन-सा वर्ग क्रातिकारी शक्ति का वाहक है? भविष्य किस वर्ग का है? यह भविष्य कैसा होगा?

मार्क्स पुन कल्पनावादी समाजवाद और कम्युनिज्म के आलोचनात्मक अध्ययन की ओर मुडे, जिनका आविर्भाव प्रत्यक्षतया फ्रासीसी भौतिकवाद से हुआ। सेंट-सीमोन और फुरिये ने बुर्जुआ समाज की मौलिक आलोचना यह



डेविड रिकार्डो

कहते हुए की थी कि यह मानवतावाद के सिद्धातो मे लेशमात्र मेल नही खाता। उन्होंने भी सर्वहारा की ओर ध्यान दिया, पर वे इसे मात्र सत्ताधारियो की दया और दान के मुहताज, एक उत्पीडित और मुसीबतग्रस्त वर्ग के रूप में मानते थे।

जिस तरह हेगेल के लिए सपूर्ण विश्व परम चित् की अभिव्यक्ति था, उसी तरह कल्पनावादियों के लिए समाजवाद मानव संबधों के परम सत्य की अभिव्यक्ति था। जिस तरह हेगेल के यहा उनके मिथ्या प्रस्थान-बिंदु ने एक ऐसी जडसूत्रवादी प्रणाली के निर्माण पर पहुचा दिया, जिसमे परम चित् स्वयं अपनी सिद्धि प्राप्त करता है, उसी तरह कल्पनावादियों के लिए, यहा तक कि उनमे सबसे प्रख्यात (विशेषत फुरिये) के लिए भी सारा मामला समाज के विकास की ऐसी आदर्शवादी प्रणालियो के निर्माण तक ही सीमित हो कर रह गया, जिन्हे जानकर ही सभी विरोध हल हो जायेगे।

हेगेल और सामाजिक कल्पनावाद को विजित करना दो अलग-अलग कार्य हर्गिज नही थे वे एक ही कार्य थे, जिनका समाधान मानव समाज के विकास मे मुख्य भूमिका अदा करने वाले कारक की खोज मे था।

न तो हेगेल की शिक्षा मे और न ही कल्पनावादी समाजवाद मे "तैयारशुदा प्रणालियो" और "जडसूत्रवादी अमूर्तकरणो" के रूपाकनो से मार्क्स सतुष्ट थे। मानव विचार की इन बडी उपलब्धियो मे से कोई भी दुनिया को बदलने का एक साधन बनने योग्य नही थी। दोनो ही



ऐडम स्मिथ

सिद्धात निज मे अपना-अपना निषेध लिये हुए थे। हेगेल के मामले मे यह निषेध द्वंद्वात्मक चिंतन-प्रणाली और कल्पनावादी समाजवादियों के मामले मे यह ऐसे सबधो के रूप मे बुर्जुआ सापत्तिक संबधो की आलोचना थी, जो मनुष्य को अशक्त बना देते हैं और उसके सारतत्व के अनुरूप नही होते हैं।

इन सबधों की प्रकृति को न केवल न्यायिक दृष्टि से, बल्कि आर्थिक दृष्टि से भी स्पष्ट करने के लिए मार्क्स ने बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र का गहन अध्ययन किया। उन्होंने ऐडम स्मिथ, रिकार्डो, मैक-कुलोच, जेम्स मिल, जान बतिस्त सेय, स्कार्बेक, देस्तुत दे त्रासी और बुआगिल्बेर *की कृतियो का विश्लेषण किया। प्रत्यक्षतया,* राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन में मार्क्स को युवा एगेल्स के 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा की रूपरेखा' शीर्षक लेख से और भी प्रेरणा प्राप्त हुई, जो *Deutsch-Französische Jahrbücher* मे प्रकाशित हुआ था और जिसे मार्क्स ने प्रतिभाशाली कहा।

पेरिस मे मार्क्स को राजनीतिक विपक्ष की महत्वपूर्ण हस्तियो, क्रातिकारी जनवादियो और समाजवादियो लुई ब्ला, पियरे लेरू, हेनरिख हाइने, पियर जोसेफ प्रूदों और मिखाईल बकूनिन के साथ व्यक्तिगत तौर पर परिचित होने का मौका मिला।

सैद्धातिक आलोचना और वास्तविक वर्ग-सघर्ष को परस्पर समन्वित करने की अपनी आकाक्षा का पालन करते हुए मार्क्स ने जर्मन दस्तकारो और फ्रासीसी मजदूरो के

क्रातिकारी सगठनो के साथ संपर्क कायम किये। पुलिसवालो ने अपनी रिपोर्टो मे लिखा कि मार्क्स ने विमे महल के निकट एक पेरिस गेट पर क्रातिकारी मजदूरो की सभाओं मे भाग लिया।

क्रातिकारी मजदूर मार्क्स को बहुत चाहते थे, क्योंकि वे उनमे सच्चे राजनीतिक योद्धा की सकल्पशीलता और दृढता का अनुभव करते थे, जो भली-भाति जानते है कि किस चीज के लिए और कैसे सघर्ष किया जाये। जर्मन मजदूरो के एक राजनीतिक समाज के एक नेता हेर्मान्न एवेर्वेक ने लिखा. "कार्ल मार्क्स.. वेशक कम से कम गो० ए० लेसिग जैसे ही एक मनीषी हैं। असाधारण प्रतिभा, लौह-चरित्र, अविचलित दूरदर्शिता और व्यापक ज्ञान से सपन्न कार्ल मार्क्स ने अपने को अर्थशास्त्र, राजनीति, वैधानिक और सामाजिक प्रश्नो के अध्ययन मे लगा दिया है।"*

मजदूरो के जीवन से सीधे सपर्क के जरिये मार्क्स ने क्रातिकारी मजदूरों के नैतिक बल, ज्ञान के लिए अथक चेष्टा और मानव-गरिमा का परिचय प्राप्त किया और इनकी प्रशसा किये बिना नही रह सके। लुडविग फायरबाख के नाम ११ अगस्त, १८४४ के एक पत्र मे वह लिखते हैं "ये कठोर परिश्रम से थके-हारे लोग जो निर्मल ताजगी और गरिमा बिखेरते है, उस पर विश्वास करने के

---

* ओ० कोर्नू, 'कार्ल मार्क्स और फेडरिक एंगेल्स। जीवन और कार्य'।

14–465

लिए आपको फ्रासीसी मजदूरों की एक सभा में भाग लेना होगा। अग्रेज सर्वहारा भी बड़े डग भर रहा है, पर वह उस सास्कृतिक पृष्ठभूमि से वचित है, जो फ्रासीसियो को प्राप्त है। लेकिन मुझे स्विट्जरलैड, लदन और पेरिस में जर्मन दस्तकारो के सैद्धातिक गुणो पर भी जोर देना नही भूलना चाहिए। सिर्फ हमें यही कहना होगा कि जर्मन दस्तकार हद से ज्यादा दस्तकार है।

"लेकिन जो भी हो, हमारे सभ्य समाज के इन *"असभ्यों"* के बीच ही इतिहास मानवजाति की मुक्ति के लिए व्यावहारिक तत्व तैयार कर रहा है।"

कल्पनावादियो के विपरीत मार्क्स सर्वहारा को भावुक उद्‌गारो का पात्र नही बल्कि सक्रिय क्रातिकारी कार्रवाई में समर्थ एक शक्ति मानते है।

सर्वहारा सिद्धात और कार्य को, दर्शन और ससार को जोडने वाली कडी है। मार्क्स ने इस खोज को 'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास' शीर्षक अपने लेख मे सूत्रित किया, जो विषय-वस्तु और रूप दोनो ही दृष्टियो से वैज्ञानिक प्रचार की एक सच्ची श्रेष्ठ कृति कही जा सकती है। यह लेख और 'यहूदी प्रश्न के बारे में' शीर्षक लेख, जो विचार-प्रक्रिया में इससे जुडा हुआ है, ***Deutsch-Französische Jahrbucher*** मे १८४४ के शुरू में प्रकाशित किये गये।

इन लेखों मे मार्क्स कहते है कि सच्ची मानव-मुक्ति "सभी प्रकार की दासता" को तोडे बिना सभव नही है और सर्वहारा वह वर्ग है, जो अत्यत अधिकारहीन और

उत्पीडित अवस्था मे है। सर्वहारा तब तक अपने को मुक्त नही कर सकता, जब तक वह समाज के सभी क्षेत्रो को मुक्त नही कर देता।

इस मुक्ति का मस्तिष्क दर्शन है और इसका हृदय सर्वहारा है।*

इन लेखो मे मार्क्स एक महत्वपूर्ण डग भरते हैं — वह एक सच्चे सघर्ष-नारे की और एक ऐसी "भौतिक" शक्ति की भी खोज करते हैं, जो इसे यथार्थ मे बदलने, मानवजाति के मानवीय आदर्शों को प्राप्त करने में समर्थ है। लेनिन ने मार्क्स के इस कदम को भाववाद से भौतिकवाद और क्रातिकारी जनवाद से कम्युनिज्म मे उनका अतिम सक्रमण कहा।**

२६ साल की आयु मे मार्क्स एक नये विश्व-दृष्टिकोण के शिखर पर पहुंच गये थे। यह अप्रतिम सैद्धातिक चितन कार्य के बाद ही सभव हुआ था। उन्होने दर्शन और सामाजिक चितन के क्षेत्र मे यूरोपीय संस्कृति की सपूर्ण विरासत का अध्ययन किया और उसे आलोचनात्मक ढग से आत्मसात् किया। मार्क्स ने मिलेयुस के थालेस से लेकर लुडविग फायरबाख और मोजेस हेस्स तक एक भी दार्शनिक को नजरदाज नही किया, चाहे वह कितना ही छोटा क्यो न हो। उन्होंने हेरोडोटस और प्लुटार्क से लेकर गीजो और

---

* का० मार्क्स, 'हेगेल के विधि-दर्शन की समीक्षा का एक प्रयास। भूमिका'।

** व्ला० इ० लेनिन, 'कार्ल मार्क्स', १८१४।

14*

थियेर तक सभी मौलिक ऐतिहासिक कृतियो को आत्मसात् किया। उन्होंने प्लेटो से लेकर लेरू और वाइटलिग तक कल्पनावादी समाजवादियो को पढ डाला। उन्होंने ऐडम स्मिथ से लेकर फ्रेडरिक एगेल्स तक राजनीतिक अर्थशास्त्र पर महत्वपूर्ण कृतियो का अध्ययन किया। अत मे, मार्क्स ने लुक्रेशियस के काव्य से लेकर हेनरिख हाइने के काव्य तक, एस्खीलस के दु खात नाटको से लेकर शेक्सपियर के नाटको तक और प्लेटो के सवादो से लेकर बाल्ज़ाक के गद्य तक कलात्मक सस्कृति की विविध मूल्यवान कृतियो को आत्मसात् किया। फिर भी, नये विश्व-दृष्टिकोण के निरूपण के लिए इस सारे ज्ञान को मात्र आत्मसात् करना अपर्याप्त था। सभी युगो मे ऐसे आराम-कुर्सी वाले विद्वानो की सख्या कम नही रही है, जो आकाश-तले सभी चीजो के बारे में ज्ञान से तो भरे हुए थे, पर अपने एक भी विचार की प्रस्थापना नही कर सकते थे। मार्क्स ने मानव बुद्धि की महान उपलब्धियों को केवल आत्मसात् ही नही किया, बल्कि सत्य के सामने जरा भी विचलित न होते हुए, जिसके लिए उन्होने अथक प्रयास किया, उन्हे सृजनात्मक चितन का साधन और तरीका भी बनाया।

और सबमे महत्वपूर्ण बात यह है कि मार्क्स ने सचेत ढग से आरभ मे जर्मनी मे उत्पीडित किसान जन-समुदाय और बाद मे सभी युगो मे क्रातिकारी वर्गो मे से सबसे क्रांतिकारी और सबसे प्रभावकारी सर्वहारा की स्थिति को अपनाया।

वैज्ञानिक समाजवाद (या वैज्ञानिक कम्युनिज़्म, जो

वही चीज़ है) का आविर्भाव न केवल मानवजाति की आत्मिक उपलब्धियों के सामान्यीकरण और व्यावहारिक व्याख्या के रूप में, बल्कि (यह तथ्य अंतिम विश्लेषण में निर्णायक सिद्ध हुआ) स्वय बुर्जुआ समाज मे कुछ आर्थिक और सामाजिक-राजनीतिक प्रवृत्तियो की अभिव्यक्ति के रूप मे भी हुआ।

इसी बात को ध्यान मे रखते हुए एगेल्स ने लिखा· "हर नये सिद्धात की तरह आधुनिक समाजवाद को भी आरभ में उपलब्ध विचार-सामग्री के साथ अपना सबध जोडना पडा, भौतिक-आर्थिक परिस्थितियों मे उसकी जडे चाहे कितनी भी गहरी क्यो न हो।"*

क्रातिकारी सर्वहारा आदोलन के दृढ समर्थन मे मार्क्स के सक्रमण के फलस्वरूप बुर्जुआ जनवादियो, सबसे पहले आर्नोल्ड रूगे के साथ उनका सबध-विच्छेद हो गया। अपने सपूर्ण तेजस्वी उग्रवाद के बावजूद रूगे मात्र एक कूपमडूक थे, जिन्हे स्वतत्रता के बारे मे सपने देखने से तो कोई आपत्ति नही थी, मगर वह इसके लिए कोई कुर्बानी करने को तैयार नही थे। रूगे *Deutsch-Französische Jahrbücher* की बिक्री से मोटा मुनाफा कमाने की उम्मीद कर रहे थे और जब उनकी इस उम्मीद पर पानी फिर गया, तो वह निराशा के गर्त मे डूब गये, उसी तरह शक्की हो गये, जिस तरह दूकानदार हो जाता

---

* फ्रे० एगेल्स, 'समाजवाद. काल्पनिक और वैज्ञानिक', १८८०।

है और मार्क्स के हर प्रकाशन संबंधी प्रयास को इस तरह देखने लगे मानो यह उनकी थैली लूटने का प्रयास हो।

इसके साथ ही, रूगे मार्क्स की "रुपये-पैसे के मामले में घोर उदासीनता" (मेहरिंग) का इस्तेमाल करने में जरा भी नही हिचकिचाये और मार्क्स की बड़ी तंगहाली के बावजूद, जिनका परिवार बढ़ता जा रहा था (उनकी पुत्री जेनी मई, १८४४ मे पैदा हुई), निर्लज्जतापूर्वक उन्हे तनख्वाह के बदले मे *Jahrbücher* की प्रतियां दी।

लेकिन मुख्य बात यह थी कि मार्क्स के कम्युनिज्म ने रूगे में कूपमडूकी आतक पैदा कर दिया।

Jahrbücher के सपादकीय दायित्वो से मुक्त होकर मार्क्स ने अपने को बढे हुए उत्साह के साथ अध्ययनो मे लगा दिया। मुख्य चीज प्राप्त कर ली गयी प्रतीत होती थी – नये विश्व-दृष्टिकोण के आधारो का निरूपण हो गया था। लेकिन मार्क्स के लिए यह मात्र शुरूआत थी। वह मानवजाति के सपूर्ण विगत, वर्तमान और भविष्य की इस नये दृष्टिकोण से पुनर्व्याख्या करने के लिए प्रयत्नशील थे। उन्होने बहुत-कुछ पढा और उनके दिमाग मे एक के बाद एक योजना उभरती गयी। पहले वह हेगेल के विधि-दर्शन के बारे मे अपनी अधूरी पाडुलिपि पर पुन काम शुरू करना और अब इसकी कम्युनिस्ट दृष्टिकोण मे व्याख्या करना चाहते थे। बाद मे वह फ्रासीसी क्राति के इतिहास के अध्ययन मे पूरी तरह लीन हो गये। वह कवेंशन का इतिहास लिखने के लिए बहुत व्यग्र थे। अत मे, वह कल्पनावादी समाजवादियो और राजनीतिक अर्थ-शास्त्रियो की आलोचना की ओर मुडे।

उनका दिमाग इतनी तेजी से काम कर रहा था कि यह, वह जो कुछ लिखते थे, उससे आगे बढता जाता था। वह अपने किये हुए कार्य से कभी सतुष्ट नही थे। जितना ही अधिक वह अध्ययन करते थे, अनन्वेषित ज्ञान-सागर उतना ही अधिक असीम प्रतीत होता था। जितने ही अधिक प्रश्नो को वह हल करते थे, उतनी ही अधिक समस्याए उनके सामने प्रस्तुत हो जाती थी।

उनकी पाडुलिपिया अधूरी रह गयी, नये विचारो को जन्म देते हुए उनके चितन का क्षितिज निरतर व्यापक होता गया। आत्मालोचना का शैतान मार्क्स को कोई भी चीज तब तक प्रकाशित नही करने देता था, जब तक वह प्रश्न का इसके सभी पहलुओ के साथ अध्ययन नही कर लेते थे।

आर्नोल्ड रूगे मार्क्स के इस अध्ययन-काल के बारे मे निम्नलिखित ढग से लिखते है· "वह बहुत-कुछ पढ रहे है वह असाधारण तीव्रता से काम करते है और आलोचनात्मक प्रतिभा से सपन्न हैं, जो कभी-कभी अत्यधिक अपकर्षी द्वद्ववाद बन जाती है, लेकिन वह कोई भी चीज पूरी नही कर रहे है, वह पुस्तको के अनत सागर मे रह-रह कर अपने को झोक देते है।"*

असाधारण रूप से कठोर वैज्ञानिक अनुसधान और अपने किये हुए कार्य से निरतर असतोष से मार्क्स हतोत्साहित हुए, मगर वह इसके बारे मे कुछ नही कर सके।

---

* ओ० कोर्नू, 'कार्ल मार्क्स और फ़्रेडरिक एगेल्स। जीवन और कार्य'।

उनका एकमात्र हल था लगातार कई रातें सोये बिना और भी कठोर परिश्रम करना। आर्नोल्ड रूगे के शब्दो मे, "मार्क्स, अगर सभव हो तो, और भी अधिक चिड़चिडा और क्रोधी हैं, विशेष रूप से जब वह बीमार पड़ने तक काम करते रहते हैं और तीन-तीन या चार-चार रातो तक सोने नही जाते"*।

इन सब अध्ययनो का सबसे महत्वपूर्ण नतीजा था वह वृहत् अधूरी कृति, जो '१८४४ की आर्थिक और दार्शनिक पाडुलिपियो' के नाम से सुप्रसिद्ध है।

इस कृति पर उस "प्रसव-पीडा" की छाप है, *जिसमे मार्क्सवाद का जन्म हुआ, जो* खास तौर से, हेगेल और फ़ायरबाख से ली गयी शब्दावली मे देखा जा सकता है। लेकिन कुछ पुरानी दार्शनिक अवधारणाओ के मुरझाये खोलो मे से समाज के एक मूलभूत नये दृष्टिकोण के अकुर फूट निकले, ससार की व्याख्या का एक ऐसा दृष्टिकोण, जो पहले विश्व को नही मालूम था।

इसमे पहली बार समाज के विश्लेषण के आर्थिक, दार्शनिक और सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण व्यापक रूप से सश्लेषित किये गये हैं। इसमे मनुष्य को सपूर्ण जाच-पडताल के केन्द्र मे रखा गया है और वह प्रकृति एव समाज के साथ अपने सबधो की सपूर्ण जटिलता मे प्रकट होता है। इसमे लेखक सच्चे और सुसगत मानवतावाद के

---

* ओ० कोर्नू, 'कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स। जीवन और कार्य'।

दृष्टिकोण से बुर्जुआ समाज मे जीवन की अमानवीय परिस्थितियो का जीता-जागता उदाहरण प्रस्तुत करता है। इसमे राजनीतिक योद्धा के क्रोध और मनोवेग का महान चितक की विश्लेषणात्मक प्रौढ़ता के साथ संगम हुआ है। इसमे ठोस यथार्थ के प्रति यथातथ्य रुख को सामाजिक विकास के सुदूर क्षितिजो के विचार से समन्वित किया गया है। यह कृति अत्यत गहन समस्याए पेश करती है, जिनका महत्व सदियो तक बना रहेगा।

यही कारण है कि वर्तमान समय मे सभी देशों में दार्शनिक, अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री '१८४४ की आर्थिक और दार्शनिक पाडुलिपियो' में निरंतर दिलचस्पी प्रदर्शित करते है।

'पाडुलिपियो' मे विचारो की निधि ऐसी है कि बडी से बडी टीका अथवा अत्यंत वस्तुगत व्याख्या मे भी इसका वर्णन नही किया जा सकता · सैद्धांतिक विचार की निर्भीकता, व्यापकता और कलात्मक सौंदर्य का पूर्ण रसास्वादन करने के लिए इस कृति को स्वय ही और कई बार पढना होगा, जो एकतरफ़ा विचारों की दीवारों, मतवादी स्कीमो की संकीर्णता को तोड़ देती है, जो न केवल प्रकृति की व्याख्या से, बल्कि सामाजिक विकास की व्याख्या से भी अंतिम भाववादी जजीरो को हटा देती है।

इस कृति मे मार्क्स उसी विचार से आगे बढते हैं, जिस पर वह पहले ही पहुच चुके है यानी यह कि मानवजाति के संपूर्ण इतिहास के स्पष्टीकरण की खोज भौतिक

संबधो में की जानी चाहिए। वह इसे निम्नलिखित रूप से प्रतिपादित करते हैं " .. सपूर्ण क्रातिकारी आंदोलन अनिवार्यत अपना आनुभविक और सैद्धातिक आधार निजी संपत्ति के संचालन ठीक-ठीक कहे तो, अर्थव्यवस्था मे पाता है।"

मनुष्य का उत्पादक जीवन, उसका श्रम – यही सामाजिक प्रगति का स्रोत है। मनुष्य का श्रम विभिन्न सामाजिक परिस्थितियो मे विभिन्न रूप धारण करता है। अत मे, "कुल मिलाकर, आबादी के सिर्फ दो वर्ग रह जाते हैं – मजदूर वर्ग और पूजीपति वर्ग।"

फायरबाख के अमूर्त मानव की जगह मार्क्स मजदूर को स्थापित करते है। फायरबाख के मनुष्य-मनुष्य के सबधों की जगह मार्क्स मजदूर और पूजीपति के सबधो, जीवत श्रम और सचित श्रम (पूजी) के सबधो की स्थापना करते हैं।

उस दुनिया मे, जहां हर चीज खरीदी और बेची जाती है, जहा मुद्रा-शक्ति सर्वोच्च और परम है, स्वय मजदूर भी एक माल है। उसके पास न तो पूजी होती है, न ही जमीन का लगान। उसके पास केवल श्रम करने की योग्यता होती है और श्रम ही समाज की सपूर्ण सपदा का उत्पादन करता है।

बुर्जुआ समाज के इसी वास्तविक तथ्य को मार्क्स अपने विश्लेषण का प्रस्थान-विंदु बनाते है।

मजदूर भौतिक सपदा का उत्पादन करता है। लेकिन यह सपदा उसकी नही होती। इसके अलावा, यह सपदा न

केवल मजदूर से अलग कर दी जाती है, बल्कि एक परायी शक्ति के रूप में उसकी विरोधी भी है, जो पूजी के रूप मे मजदूर पर शासन करती है। मार्क्स इस चीज को श्रम का अन्यसक्रामण कहते है।

मजदूर जितना ही अधिक परिश्रम करता है, उसके द्वारा निर्मित सपदा की दुनिया उतनी ही अधिक बढ़ती जाती है। लेकिन इसके साथ ही, मजदूर पर इस सपदा का शासन भी बढता जाता है। पूंजीपति निरंतर शक्तिशाली बनता जाता है और मजदूर दिन-प्रतिदिन निर्धन एव अपने अधिकारों से भी वचित होता जाता है।

मजदूर उसी वस्तु का दास बन जाता है, जिसका वह उत्पादन करता है। पूजी, मुद्रा-संपदा के रूप मे मजदूर का सचित श्रम मजदूर को किराये पर लेता है, उसे जीवन-निर्वाह के साधन प्रदान करता है और उसके जीवत श्रम, स्वय उसके जीवन के साथ ही मनमर्जी करता है।

मजदूर का श्रम आश्चर्यजनक वस्तुओ की सृष्टि करता है, लेकिन यह मजदूर की निर्धनता को भी जन्म देता और बढाता है। यह भव्य महलो का निर्माण करता है, लेकिन मजदूरों के लिए गंदी बस्तिया भी पैदा करता है। यह सौंदर्य का सृजन करता है, लेकिन स्वयं मजदूर को कुरूप बना देता है। यह शारीरिक श्रम के स्थान पर मशीनें मात्र इसलिए कायम करता है, ताकि स्वय मजदूरो को ही मशीनो मे बदल दिया जाये। उसका कार्य जितना ही अधिक जटिल बनता जाता है, उसकी

मानसिक तबाही उतनी ही अधिक बढती जाती है।

बाद मे मार्क्स ने 'पूजी' और इसके प्रारभिक कार्यो मे सिर के बल खड़ी इस दुनिया का विस्तृत रूप से विश्लेषण किया है, जहां वस्तुए अपने स्रष्टा पर शासन करती है, जहां लोगो के बीच सबंध वस्तुओ के बीच सबधो के रूप मे प्रकट होते है। '१८४४ की आर्थिक और दार्शनिक पाडुलिपियो' मे उन्होंने जो चित्र प्रस्तुत किया है, वह इसमे और भी जीवत और डरावना रूप ग्रहण कर लेता है।

लेकिन आइए, हम 'पाडुलिपियो' पर गौर करे और मार्क्स के तर्को को समझे। अपने श्रम के फलो से मजदूर का अन्यसक्रामण समस्या का मात्र एक पहलू है। दूसरा ऐसा ही महत्वपूर्ण पहलू यह है कि मजदूर के कार्यकलाप की जीवत प्रक्रिया ही अन्यसक्रामित स्वरूप की होती है, यह उसके मानव सारतत्व का आत्म-अन्यसक्रामण है।

इसका क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि मजदूर न तो अपनी स्वतत्र इच्छा से श्रम करता है और न ही उसका कार्यकलाप आत्म-कार्यकलाप होता है, बल्कि यह जबरी और अनिवार्य श्रम होता है, जिसे सपन्न करने की प्रक्रिया मे मजदूर का अपने पर कोई अधिकार नही होता, बल्कि उल्टे वह मालिक के अधिकार मे होता है।

इस जबरी श्रम-प्रक्रिया मे मजदूर अपनी शारीरिक और मानसिक क्षमता स्वतत्रतापूर्वक विकसित नही कर पाता, उल्टे वह जर्जर होता जाता है, शारीरिक कष्ट सहन

करता है और मस्तिष्क को नष्ट कर देता है। तर्कसगतत श्रम मे उसे सच्ची मानवीय आवश्यकता – सृजन की आवश्यकता – की पूर्ति का सतोष मिलना चाहिए। लेकिन उसके लिए श्रम जीवन-निर्वाह की आवश्यकता की पूर्ति का मात्र एक साधन होता है।

श्रम का अन्यसक्रामित स्वरूप इस चीज से बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि लोग इसे एक अभिशाप मानते हैं, वे इसे विरक्ति-भाव से सपन्न करते है और इससे महामारी की तरह दूर भागते है।

श्रम – इस अत्यत मानवीय आवश्यकता – की प्रक्रिया मे मजदूर अपने को मानव प्राणी नही अनुभव करता। वह मात्र एक विवश पशु, एक जीवित मशीन की भाति काम कर रहा होता है। इसके विपरीत, श्रम के परे, अपने प्राकृतिक, सारत पशु-कार्यकलापो – खाना, पीना, सोना, यौनचर्या, आदि – मे ही मजदूर अपने को स्वतत्र रूप से काम करता हुआ मानव प्राणी पाता है। "जो चीज पशु की है, वह मानव की बन जाती है और जो चीज मानव की है, वह पशु की बन जाती है।"

इस तरह, श्रम की प्रक्रिया मे मजदूर का आत्म-अन्यसक्रामण होता है। और इसका प्रत्यक्ष परिणाम है मानव से मानव का अन्यसक्रामण, मजदूर और पूजीपति की विरोधी स्थितिया।

साधारणतया श्रम के अन्यसक्रामण और आत्म-अन्यसक्रामण की समस्या के बारे मे मार्क्स के प्रतिपादन को मात्र नकारात्मक दृष्टि से आर्थिक यथार्थ की विनाशकारी

आलोचना के रूप मे आका जाता है। लेकिन इस आलोचना मे मार्क्स का सकारात्मक सिद्धांत, जिसके आधार पर उन्होंने विद्यमान व्यवस्था का मूल्याकन किया है, उनका यह विचार कि मानव श्रम और मानव सबध कैसे होने चाहिए यानी कम्युनिस्ट समाज का उनका विचार साफ-साफ देखा जा सकता है।

मार्क्स के विचार मे श्रम को व्यक्ति की आत्म-अभिपुष्टि होना चाहिए न कि आत्म-अन्यसंक्रामण। इसे आजीविका का साधन नही, बल्कि जीवन का सारतत्व होना चाहिए, एक ऐसी प्रक्रिया, जिसमे मनुष्य अपनी योग्यताओ को पूरी तरह विकसित करता है। श्रम का प्रोत्साहन सृजन हेतु गहन आतरिक आवश्यकता न कि बाह्य विवशता होना चाहिए।

Ökonomische Studien (Exzerpte)—'अर्थशास्त्रीय अध्ययन (उद्धरण)'—नामक कृति मे, जो '१८४४ की आर्थिक और दार्शनिक पाडुलिपियो' से बहुत मिलती-जुलती है, मार्क्स अन्यसक्रामित मनुष्य की इस दुनिया को मनुष्य के वास्तविक सामाजिक सारतत्व, "मानवजाति के सच्चे जीवन" के मात्र विद्रूप के रूप मे वर्णन करते हैं।

Exzerpte के निम्नलिखित अश से स्पष्ट हो जाता है कि कैसे युवा मार्क्स ने मानवीय ढग से" सगठित दुनिया मे यानी कम्युनिस्ट समाज मे इस वास्तविक जीवन का चित्रण किया है।

"कल्पना करे कि हमने लोगो के रूप मे उत्पादन किया है: हममे से प्रत्येक ने अपनी उत्पादन-प्रक्रिया मे

स्वय को और दूसरे को द्विगुणित रूप से अभिपुष्ट किया है। मैंने १) कार्यकलाप के दौरान जीवन की वैयक्तिक अभिव्यक्ति और वस्तु का अवलोकन करते हुए वैयक्तिक आनद प्राप्त किया है . २) मेरी पैदावार के आपके आनद या आपके उपयोग मे मुझे इस अनुभूति का भी प्रत्यक्ष आनद मिला कि अपने श्रम मे मैंने एक ऐसी वस्तु बनायी है, जो दूसरे मनुष्य की आवश्यकता को पूरा करती है; ३) मैं आपके और मानवजाति के बीच मध्यस्थ रहा हू और आपने मुझे स्वय अपने अस्तित्व के पूरक तथा स्वय अपने ही अभिन्न अग के रूप मे जाना और महसूस किया है . ४) अपनी वैयक्तिक जीवन-अभिव्यक्ति मे मैंने प्रत्यक्षतया आपकी जीवन-अभिव्यक्ति का सृजन किया है और फलत. अपने वैयक्तिक कार्यकलाप मे मैंने प्रत्यक्षतया अपने सच्चे अस्तित्व, अपने मानवीय, अपने सामाजिक सारतत्व की पुष्टि और सिद्धि की है।

"मेरा श्रम जीवन की स्वतंत्र अभिव्यक्ति, फलत. जीवन का आनंद होगा। निजी स्वामित्व की विद्यमानता मे यह जीवन का अन्यसक्रामण है, इसलिए कि मैं जीवित रहने के लिए, जीवित रहने के साधन प्राप्त करने के लिए काम करता हू।"

बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र केवल भौतिक मूल्यों की दुनिया को ही सपदा मानता है। इसके लिए मजदूर मात्र सपदा बढाने का एक साधन होता है। यह मजदूर को अपनी आवश्यकताओ को दबाने, मद्य और नाचों की बचत करने के लिए जीवन की खुशियों की तिलाजलि देने का उपदेश देता है।

जितना ही कम खायेगे, पियेगे और किताबें खरीदेगे, जितना ही कम थियेटर, बॉल-नृत्य, कैफे जायेगे, जितना ही कम सोचेगे, प्रेम करेगे, चितन करेगे, गायेगे, खेलकूद करेगे, उतना ही अधिक बचायेगे, उतना ही बडा आपका खज़ाना होगा, आपकी पूजी, आपके द्वारा प्राप्त चीजे उतनी ही अधिक हो जायेगी।

इस दृष्टिकोण के अनुसार मुद्रा-विहीन, वस्तु-विहीन मनुष्य कुछ नही है। वस्तुओ और मुद्रा के बल पर वह समाज मे प्रभाव और महत्व प्राप्त करता है, वे उसे खुद अपने नजरो मे भी महत्वपूर्ण बना देती हैं।

जो काम आप स्वय नही कर सकते, उन्हें आपका पैसा कर सकता है। आपका पैसा खा और पी सकता है, बॉल-नृत्य और थियेटर जा सकता है, यह सफ़र कर सकता है, कला, शिक्षा, ऐतिहासिक कलाकृतिया, राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर सकता है।

'१८४४ की आर्थिक और दार्शनिक पाडुलिपियो' मे मार्क्स एथेन्स के टिमोन का एकालाप उद्धृत करते हैं, जिसमे शेक्सपियर "सुनहले शैतान" की सर्वशक्तिमत्ता का वर्णन करते हैं

> यह पीला गुलाम
> धर्मो को जोड-तोड देगा,
> अभिशप्तो को वरदान देगा,
> कोढी की पूजा करवायेगा,
> चोरो को उपाधिया देगा,

हर सबंध तुम्हारे सच्चे वैयक्तिक जीवन की विशिष्ट, तुम्हारी इच्छा के विषय के अनुरूप अभिव्यक्ति होनी चाहिए। यदि तुम्हारा प्रेम दूसरे में प्रेम अनुप्राणित नही करता अर्थात यदि प्रेम के रूप में तुम्हारा प्रेम पारस्परिक प्रेम जागृत नही करता, यदि तुम एक स्नेहमय व्यक्ति के रूप में अपनी जीवंत अभिव्यक्ति के द्वारा अपने को एक प्रिय व्यक्ति नही बनाते, तो तुम्हारा प्रेम नि.सत्व और दुर्भाग्य है।"

मार्क्स ने कहा कि मूल्य-सपदा के अपने आत्म-निर्भर सिद्धात के साथ बुर्जुआ राजनीतिक अर्थशास्त्र मनुष्य के निषेध की सुसगत शिक्षा है।

कम्युनिस्ट समाज मे वस्तु-सपदा वही बन जाती है, जो इसे होना चाहिए अर्थात यह ओजस्वी मानव कार्य-कलाप का मात्र एक साधन बन जाती है न कि मानव जीवन का उद्देश्य। " . राजनीतिक अर्थशास्त्र की समृद्धि और निर्धनता के स्थान पर समृद्ध मनुष्य और समृद्ध मानव-आवश्यकता कायम हो जाती है।"

'पूजी' और इसके प्रारभिक कार्यो मे मार्क्स इस विचार पर बार-बार लौट कर आते हैं। वह घोषणा करते है कि समाज की उच्चतम सपदा, उच्चतम पूजी वह नही है, जो मनुष्य पैदा करता है, बल्कि स्वय मनुष्य, "व्यक्तियो की आवश्यकताओ, योग्यताओ, खुशियो, उत्पादक शक्तियो, आदि की सार्विकता है"।* कम्युनिस्ट

* का० मार्क्स, 'पूंजीवादी उत्पादन से पहले के रूप', १८५७-५८।

समाज मे मनुष्य सपूर्ण सामाजिक उत्पादन का उद्देश्य होता है और भौतिक मूल्य इस उद्देश्य को प्राप्त करने का मात्र एक साधन, शर्त और आधार होते हैं।

प्रस्थान-बिंदु (आत्म-अन्यसक्रामण) और उद्देश्य को प्रकट करने के बाद मार्क्स इस उद्देश्य की ओर बढने के मार्ग, अन्यसक्रामण के उन्मूलन के मार्ग की रूपरेखा प्रस्तुत करते है। यह प्रश्न अब भी विभिन्न देशो के समाजविज्ञानियो और मार्क्सवादवेत्ताओ के बीच अति उत्तेजित बहस का विषय बना हुआ है।

मार्क्स पूर्णतया स्पष्ट और असंदिग्ध ढग से इस तथ्य से आगे बढते है कि अन्यसक्रामण का उन्मूलन मूलतया निजी सपत्ति के उन्मूलन पर निर्भर है। निजी सपत्ति "अन्यसक्रामित श्रम की पैदावार, परिणाम, आवश्यक नतीजा" यानी आर्थिक अन्यसंक्रामण है।

विभिन्न रूपो मे अन्यसक्रामण के सभी अर्थभेद और पहलू (राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक, नैतिक, आदि) आर्थिक, अन्यसक्रामण मे एकत्रित होते है। संपूर्ण मानव दासता मजदूर की दासता मे, उत्पादन के साथ उसके सबध मे अभिव्यक्ति पाती है। " सभी दासता के सबंध मात्र इस सबध के रूपभेद और परिणाम होते है।" यहा मार्क्स तत्वत समाज के जीवन मे उत्पादन संबधो की मुख्य भूमिका के विचार का प्रतिपादन कर रहे है।

हेगेल के लिए सभी अन्यसक्रामण का अर्थ विचार का अन्यसक्रामण था और इस प्रकार के अन्यसक्रामण का उन्मूलन भी व्यक्ति के मस्तिष्क मे सभव है। लेकिन

चूंकि वह संसार के साथ अपने संबंधों की दासता का अनुभव करता है, इसलिए उसका अन्यसंक्रामण गायब नहीं होता, बल्कि यह बढ़ता ही जाता है।

तैरना सीखने के लिए अपने को तैरते हुए कल्पना करना ही काफी नहीं है, स्वतंत्र होने के लिए अपने को स्वतंत्र मान लेना ही काफी नहीं है। "निजी संपत्ति के **विचार** का उन्मूलन करने के लिए कम्युनिज्म का **विचार** पूर्णरूपेण पर्याप्त है। वास्तविक निजी संपत्ति का उन्मूलन करने के लिए **वास्तविक** कम्युनिस्ट कार्रवाई की आवश्यकता होती है।"

मार्क्स को इसमें संदेह नहीं है कि "इतिहास इस कम्युनिस्ट कार्रवाई की ओर लायेगा"। लेकिन वह अपने को कल्पनावादियों की तरह भ्रमित नहीं करते कि निजी संपत्ति का उन्मूलन जल्दी और कष्टरहित ढंग से होगा। उन्हें अपने ऐतिहासिक बोध से सही तौर पर ज्ञात हो गया कि यह "बहुत कठिन और लंबी प्रक्रिया" होगी।

निजी संपत्ति अकस्मात् जादू की छड़ी घुमा देने से नहीं पैदा हो गयी, यह विभिन्न रूप धारण करते हुए सदियों के दौरान विकास-प्रक्रिया से गुजरती रही है और इसका विकास अभी भी पूरा नहीं हुआ है। इसने अब औद्योगिक पूंजी का रूप धारण कर लिया है और यह इस रूप में तब तक विकसित होती रहेगी, जब तक यह समाज के सभी अवयवों पर प्रभुत्व नहीं जमा लेती, जब तक यह अपने अत्यंत सार्विक रूप में विश्व ऐतिहासिक शक्ति नहीं बन जाती।

इस विकसित रूप मे, जीवन मे पूर्ण, निजी सपत्ति अपनी मृत्यु, अपने विलोम—औद्योगिक मजदूरी का उत्पीडित, अन्यसक्रामित श्रम—को जन्म देती है।

इस क्षण मे यह अपने उन्मूलन की ओर बढती जाती है, लेकिन इसकी मृत्यु का रास्ता वैसा ही है जैसा कि इसकी प्रौढता का यह कम्युनिज्म के विकास के विभिन्न रूपो और चरणो मे प्रकट होती है।

जैसा कि मार्क्स स्पष्टत अमरीका और इगलैड मे निर्धनो के कम्यूनो की स्थापना मे प्रारभिक गलतियो को ध्यान मे रखते हुए दिखाते है, कम्युनिज्म पहले भोडे समतावादी कम्युनिज्म के रूप मे प्रकट होता है। यह "कम्युनिज्म" बर्बर साधनो के साथ निजी सपत्ति की बर्बर प्रकृति के खिलाफ प्रतिवाद व्यक्त करता है। यह असमानता को जन्म देने वाली निजी संपत्ति से इतना "विमुग्ध" रहता है कि यह सबको समान स्तर पर (साझी स्त्रियो तक!) लाना चाहता है। यह उन सभी चीजो को नष्ट कर देने की चेष्टा करता है, जो मनुष्य-मनुष्य मे फर्क करती है, जो सबकी सपत्ति नही बन सकती।

अत भोंडा और बैरक-आवासीय "कम्युनिज्म" अपने को मनुष्य की प्रतिभा, उसके व्यक्तित्व से पृथक कर लेता है। यह सबको मजदूरो मे बदल देने की कामना करता है, न कि मजदूर के अन्यसक्रामित श्रम का उन्मूलन करने की।

ऐसा कम्युनिज्म, जो हर क्षेत्र मे मनुष्य के व्यक्तित्व को निषेध कर देता है, साथ ही "सस्कृति और सभ्यता

की सपूर्ण दुनिया" का भी निषेध है। इसका आदर्श इनी-गिनी आवश्यकताओ वाले निर्धन व्यक्ति की अस्वाभाविक सादगी है। यह आदर्श एक ऐसी "सादगी" का प्रमाण है, जो न केवल निजी संपत्ति से ऊपर उठने मे असफल रही है, बल्कि अभी उस तक पहुची भी नही है।

इस तरह के "कम्युनिज्म" मे श्रम और पूजी की परस्पर-विरोधी प्रकृति का उन्मूलन नही किया जाता। श्रम (अपने सबसे साधारण रूप मे) एक ऐसे प्रवर्ग के रूप में प्रकट होता है, जिसमे हरेक व्यक्ति को रखा जाता है, और पूजी सार्विक पूजी और शक्ति के रूप मे।

मार्क्स ने इस "भोंडे कम्युनिज्म" को "निजी सपत्ति की निकृष्टता" की अभिव्यक्ति कहा। यह देखना मुश्किल नही है कि इस आलोचना का सैद्धातिक और व्यावहारिक महत्व आज भी बना हुआ है, कि यह अतिक्रातिकारी लफ्फ़ाजी के प्रेमियो द्वारा महान कम्युनिस्ट विचारो को बाजारू बनाने और बदनाम करने तथा मानवजाति को खुशहाल बनाने की बैरक-आवासीय विधियो के खिलाफ सघर्ष को सहायता करती है।

भविष्य के बारे मे उन कुछ विचारो को ध्यान मे रखते हुए, जो उस काल के कल्पनावादी समाजवादियो और टुटपुंजिया बुर्जुआ जनवादियो के लिए अभिलाक्षणिक थे, मार्क्स जिस दूसरे रूप का ज़िक्र करते है, वह ऐसा कम्युनिज्म है, जिसने अपना राजनीतिक स्वरूप नही खोया। यह जनवादी या निरकुश होता है। यह निजी सपत्ति का बदी बना रहता है और इसके द्वारा सदूषित होता है।

अन्तिम, तीसरा रूप मानव संस्कृति और सभ्यता की सपूर्ण सपदा के सरक्षण और विकास के आधार पर सभी रूपो मे अन्यसंक्रामण के सच्चे उन्मूलन के तौर पर निजी संपत्ति के "वास्तविक" उन्मूलन की अपेक्षा करता है। यह कम्युनिज्म पूर्णतः विकसित मानवतावाद की भांति है, यह "मनुष्य और प्रकृति तथा मनुष्य और मनुष्य के बीच संघर्ष का सच्चा समाधान" है।

इतिहास की सपूर्ण प्रगति इस कम्युनिज्म के जन्म की वास्तविक कार्रवाई, इसके आनुभविक अस्तित्व का प्रसव है। इस समस्या का समाधान "केवल समझ की समस्या हर्गिज नही है, बल्कि जीवन की वास्तविक समस्या है, जिसे दर्शन वस्तुत इस वजह से हल नही कर सका कि इसने इस समस्या को मात्र एक सैद्धातिक समस्या के रूप मे देखा"।

एक साल बाद मार्क्स ने इस विचार को अपनी सुप्रसिद्ध सूक्ति मे सूत्रित किया: "दार्शनिकों ने केवल विभिन्न रूपो मे दुनिया की व्याख्या ही की है, लेकिन असली काम तो इसे बदलने का है।"*

और १५–२० साल बाद मार्क्स ने अपनी आर्थिक कृतियो मे उन विचारो को बडी गभीरतापूर्वक और ब्योरेवार विकसित किया, जिन्हे उन्होने '१८४४ की आर्थिक और दार्शनिक पाडुलिपियो' मे व्यक्त किया था।

ये श्रम और पूजी की परस्पर-विरोधी प्रकृति, एक

---

* का० मार्क्स, 'फायरबाख पर निबध', १८४५।

माल के रूप मे मजदूर, माल की जडपूजा, मजदूर के एक जीवित मशीन मे, मशीन के एक पुर्जे मे रूपातरण के बारे मे विचार थे। ये माल सबधो की दुनिया मे मानव व्यक्तित्व के अन्यसंक्रामण के विचार थे, जहा उद्यमकर्ता पूजी का मूर्त रूप और सर्वहारा श्रम-शक्ति का मूर्त रूप होता है।

अन्यसक्रामण की दार्शनिक अवधारणा की जगह मार्क्स ने आगे चलकर अर्थशास्त्र के यथातथ्य और सुनिश्चित प्रवर्गों का उपयोग किया। लेकिन यह अधिकतर शब्दावली का सवाल है, न कि सिद्धात का।

'१८४४ की आर्थिक और दार्शनिक पाडुलिपिया' नामक कृति नये विश्व-दृष्टिकोण की एक मेधावी रूपरेखा है, एक ऐसे कार्यक्रम की रूपरेखा, जिसका प्रतिपादन कार्ल मार्क्स के शेप जीवन का मुख्य कार्य था।

इस कृति का एक असाधारण भाग्य था। दुनिया को इसके बारे मे इसकी रचना के लगभग ६० साल बाद और लेखक की मृत्यु के ५० साल बाद मालूम हुआ। लेकिन इसने तुरत ही ऐसे ध्यान आकर्षित किया, जैसे, कि यह अत्याधुनिक विषय पर अभी-अभी लिखी गयी थी। तब से विभिन्न देशो मे 'पाडुलिपियो' के बारे मे प्रकाशित पुस्तको का अबार लग गया है, उनके बारे मे साहित्य-सरिता लगातार बढती जा रही है और विवाद अधिकाधिक तीखे बनते जा रहे है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस कृति के रचना-क्षण से जैसे-जैसे हम आगे बढते जाते हैं, वैसे-वैसे यह अधिकाधिक आधुनिक बनती जाती है।

इसमे जो समस्याएं उठायी गयी है, वे मार्क्सवाद पर भोंडे-जडसूत्रवादी से लेकर भोंडे-सशोधनवादी तक अति नानाविध विचारो के बीच संघर्ष का क्षेत्र बन गयी हैं।

और मजेदार बात यह है कि दोनो "चरमों" में कुछ न कुछ मिलता-जुलता है। दोनो ही दो मार्क्सों - युवा और प्रौढ – के बीच फर्क करते हैं। सिर्फ वे ऐसा अलग-अलग ढग से करते है: भोंडे-जड़सूत्रवादी युवा मार्क्स को "सच्चा" मार्क्स और भोडे-सशोधनवादी प्रौढ मार्क्स को "सच्चा" मार्क्स मानते है।

दोनो ही दृष्टिकोण मार्क्सवाद की तोडी-मरोडी, सरलीकृत अवधारणा दिखाते हैं। यह इसलिए है कि मानसिक जडता के कारण मार्क्सवाद को मतवादी कसौटियो से आका जाता है। लेकिन 'पाडुलिपिया' और 'पूंजी' दो सिद्धातो, दर्शन की ऐसी दो पूर्ण प्रणालियो के रूप में एक-दूसरे का विरोध नही करती, जहा पहले के केन्द्र मे "मानवतावाद" और दूसरे के केन्द्र मे "अर्थवाद" हो।

यदि वे एक-दूसरे का "विरोध" भी करती है, तो यह मात्र स्रोत और शिखर के रूप में ही करती हैं। एक ऐसी कृति के रूप मे, जहा सर्वविदित परिघटनाओं के विश्लेषण की एक नयी विधि खोज निकाली जाती है और एक ऐसी कृति के रूप मे, जहा इसे अमल मे लाया जाता है। एक दार्शनिक-आर्थिक कृति के रूप मे और एक आर्थिक-दार्शनिक कृति के रूप मे।

मार्क्सवाद एक विधि है न कि एक मत, जैसा कि इसके सस्थापक अक्सर जोर दिया करते थे। अत यह

विभिन्न कृतियों के "तैयारशुदा" सूत्रों की व्याख्या द्वारा नही समझा जा सकता। मार्क्सवाद की जीवत आत्मा को केवल गत्यात्मकता, विचारो की उत्पत्ति और विधि की निरतर परिनिष्पन्नता मे ही समझा जा सकता है।

मतवादी सकुचित मानसिकता को 'पूजी' मे कोई "मानवतावाद" नही दिखायी देता, क्योकि यह मार्क्स की सपूर्ण विरासत मे उनकी इस कृति के स्थान को नही समझ पाती। यह नही समझ पाती कि किन मानवीय आदर्शों के लिए उन्होने "आर्थिक मानव" का अध्यवसायी अध्ययन किया। यह मार्क्स के मानवतावाद को इसलिए नही देखती कि यह दर्शन झाडने वाले दिवा-स्वप्नदर्शियो के भावुक परोपकार को "मानवतावाद" के रूप मे मानने को आदी है।

दूसरी ओर, युवा मार्क्स के आलोचक, जो उसी सकुचित मानसिकता से ग्रस्त हैं, मार्क्सवाद की सरचना के लिए 'पाडुलिपियो' का जो महान महत्व है, उसे समझने मे असमर्थ है। "अन्यसक्रामण" और "मानवतावाद" के बारे मे सुनते ही वे संदेहात्मक ढग से नाक-भौ चढा लेते है – क्या ये अवधारणाए पर्याप्तत मार्क्सवादी है? वे मार्क्स की विचार-निधि को मार्क्सवाद की उस सरलीकृत व्याख्या की "प्रोक्रस्टस की शय्या"* मे जबर्दस्ती नही

* यूनानी पौराणिक कथा मे प्रोक्रस्टस नाम का डाकू अपने शिकारो को शय्या पर लिटा देता था और यदि उनके पैर छोटे पडते थे, तो उन्हे खीचकर बढा देता था और यदि वडे होते थे, तो उन्हे काटकर शय्या के बराबर कर देता था। – अनु०

दूर सकते, एकमात्र चीज जिसे वे समझने में समर्थ हैं, और इसलिए "शुद्ध" और "अशुद्ध" मार्क्स तथा "प्रौढ़" और "अप्रौढ़" मार्क्स के बीच फर्क करने को प्रवृत्त होते है।

मार्क्स का मानवतावाद एक अस्थायी सैद्धांतिक मनोवेग नहीं था, जैसा कि मार्क्स के शब्दों में, "भोंडे कम्युनिज्म" के स्वैच्छिक या अस्वैच्छिक सिद्धांतकार सोचना चाहेंगे। मानवतावाद मार्क्सवाद का पुछल्ला नहीं, बल्कि मार्क्सवाद का मर्म, आंतरिक स्रोत है, जो उसे शक्ति देता है और जीवंत बनाता है, जो इसे मानवजाति की खुशहाली के लिए संघर्षरत करोड़ों-करोड़ लोगों का विश्व-दृष्टिकोण बनाता है।

मार्क्स का मानवतावाद, जैसा कि 'पांडुलिपियों' मे इसकी प्रस्थापना की गयी है, नृविज्ञान की बचकाना फायरबाखीय हिमायत, दो लोगों का दिव्यकारी प्रेम और प्रकृति से उनकी निकटता नहीं है। यह तो व्यक्ति के उत्पीड़न और दमन के सभी रूपों की घृणा से अभिप्रेरित शिक्षा है, यह एक ऐसी शिक्षा है, जो अपने गर्भ मे सामाजिक रूपांतरणों की प्रचंड शक्ति धारण किये हुए है। '१८४४ की आर्थिक और दार्शनिक पांडुलिपियां' (और *Deutsch-Französische Jahrbücher* मे संबंधित लेख) मार्क्स के आत्मिक विकास मे एक महत्वपूर्ण मोड़ की द्योतक है। जहां इससे पहले लिखी गयी कृतियां मार्क्सवाद की ओर उनके मार्ग के लिए अभिलाक्षणिक हैं, वहां इसके बाद की कृतियां अपने सभी अंगों मे, सर्वप्रथम

राजनीतिक अर्थशास्त्र के क्षेत्र मे मार्क्सवाद के विकास, मूर्तीकरण और प्रतिपादन के लिए अभिलाक्षणिक हैं।

१८४४ का वर्ष वैज्ञानिक विश्व-दृष्टिकोण के जन्म का वर्ष कहा जा सकता है। लेकिन हम वह साल इंगित नही कर सकते, जिसमे इस विश्व-दृष्टिकोण का विकास पूरा हुआ। यह मार्क्स और एंगेल्स की सभी कृतियो मे उनके मृत्युपर्यंत सतत विकसित होता रहा। इसका विकास आज भी हो रहा है और तब तक होता रहेगा, जब तक मानव समाज कायम है।

६

युगपुरुष और उनका परिवेश

—आपकी मुख्य चारित्रिकता?
—उद्देश्य की अनन्यता।
—आपकी प्रिय सूक्ति?
— *Nihil humani a me alienum puto.* (कोई भी मानवीय चीज़ मेरे लिए परायी नहीं है।)

कार्ल मार्क्स की 'आत्मस्वीकृतियां'

जब तक मार्क्स के विश्व-दृष्टिकोण के मूल लक्षणों की प्रस्थापना हुई, तब तक उनके व्यक्तित्व का भी विकास हो गया था, एक ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व, जिसमें वैज्ञानिक और क्रांतिकारी दोनों का संगम हुआ था। मार्क्स विज्ञान के एक महान क्रांतिकारी और क्रांति के पहले वैज्ञानिक थे, जिन्होंने संपूर्ण क्रांतिकारी सिद्धांत और व्यवहार को यथातथ्य विज्ञान की परिधि में घूमने के लिए "विवश करते" हुए दर्शन और समाज पर विचारों में कोपेर्निकस जैसी उथल-पुथल ला दी।

मार्क्स ने अपने को एक ऐसा आदर्श पुरुष सिद्ध किया, जो विगत की सांस्कृतिक विरासत का अपने समकालीनों से अधिक गहराई से अध्ययन करके और इसे आलोचनात्मक ढंग से आत्मसात करके अपने किसी भी महान

पूर्ववर्ती के मुकाबले अपने समय से बहुत आगे बढ़ गये।

स्वय एक बहुमुखी रूप मे विकसित व्यक्ति होते हुए मार्क्स ने सृजनात्मक क्षेत्र में भी अपने को व्यापक रूप से अभिव्यक्त किया। मानव कार्यकलाप के एक भी ऐसे क्षेत्र का नाम लेना कठिन होगा, जो उनके अन्वेषणकारी विचार से अछूता रहा हो। दार्शनिक और अर्थशास्त्री, समाजविज्ञानी और इतिहासकार, क्रातिकारी और सगठनकर्ता, प्रचारक और भाषाविज्ञानी, साहित्यिक विशेषज्ञ और पत्रकार के रूप में मार्क्स के बारे मे बात करने मे हम बिल्कुल सही हैं।

हम जानते है कि 'पूंजी' पर काम पूरा करने के बाद मार्क्स 'तर्कशास्त्र', दर्शन के इतिहास पर एक कृति, बाल्जाक के लेखन पर एक पुस्तक और ग्राक्स बधुओं के बारे मे एक नाटक लिखना चाहते थे। उन्होंने अपने पीछे गणितशास्त्र और टेक्नोलाजी के इतिहास के क्षेत्र मे कुछ मौलिक अध्ययन छोडे और भौतिकविज्ञान, रसायनविज्ञान, जीवविज्ञान और विकासवादी सिद्धात की उपलब्धियों में बडी दिलचस्पी ली।

अपनी सहज उद्देश्यपूर्णता के साथ मार्क्स ने अपने प्रकाड ज्ञान और बहुमुखी रूप से विकसित योग्यताओं को आर्थिक समस्याओं के समाधान पर सकेंद्रित किया, जो उनके वैज्ञानिक अनुसधान का मुख्य लक्ष्य बन गयी। लेकिन एक सकुचित वैज्ञानिक क्षेत्र का विशेषज्ञ 'पूंजी' जैसी कोई कृति कभी नही लिख सका होता।

उनका व्यक्तित्व देखने मे इतना भव्य था कि ला

जल्दबाजी मे परिचित हुए और मार्क्सवाद से कोई सबंध न रखने वाले लोग भी उनका प्रभाव महसूस किये बिना नहीं रह सकते थे।

रूसी उदारतावादी साहित्यकार प० आन्नेन्कोव ब्रसेल्स मे मार्च, १८४६ मे मार्क्स से मिले और लिखा कि मार्क्स एक ऐसे व्यक्ति है, जिसमे शक्ति, संकल्प और अनश्वर विश्वास कूट-कूट कर भरा हुआ है तथा वह देखने मे भी अत्यंत प्रभावशाली हैं। सिर पर सघन काले केश, बालो से भरी बाहो के साथ, तिरछे बटनों के ओवरकोट मे वह एक ऐसे व्यक्ति की भांति दिखायी देते थे, जो चाहे जैसे भी आपके सामने आये और चाहे जो कुछ भी करे, आपके मन मे अपने प्रति सम्मान जागृत कर देता हो। उनके चलने का ढग थोडा बेढगा, किंतु दृढ और आत्म-विश्वासपूर्ण होता था। लोगो के साथ उनके व्यवहार का ढग उन्मुक्तता के लिए उल्लेखनीय था, सामान्यतया स्वीकार्य व्यवहार से भिन्न था और चीजों तथा परिघटनाओं के बारे मे उनके दृढ निर्णयो से पूरी-पूरी मेल खाता था।

२८-वर्षीय मार्क्स ने आन्नेन्कोव पर एक ऐसे व्यक्ति की जबर्दस्त छाप छोडी, जो मानव-मस्तिष्कों को शासित करने और उनका नेतृत्व करने के अपने कर्तव्य से विश्वस्त हो, एक ऐसा आदमी, जिसे सभी "मिथ्या पैगबरो" और "मानवजाति के उद्धारको" के आडबरपूर्ण अज्ञान मे बहुत नफरत थी।

आन्नेन्कोव कम्युनिस्ट पत्र-व्यवहार समिति की एक बैठक का वर्णन करते है, जिसमे मार्क्स और भोडे,



विल्हेल्म वाइटलिंग

समतावादी कल्पनावादी कम्युनिज्म के एक सिद्धांतवा
विल्हेल्म वाइटलिंग के बीच एक झड़प हो गयी। वाइट
लिंग ने अपनी भ्रामक किंतु आकर्षक शिक्षाओं से जर्मनी में
सनसनी पैदा कर दी थी और मजदूरों के बीच बहु
अनुयायी प्राप्त कर लिये थे।

मार्क्स के इस तीखे प्रश्न का उत्तर देते हुए कि व
अपने कार्यकलाप में किन सैद्धांतिक आधारों से निर्देशि
होने की सोचते है, वाइटलिंग अस्पष्ट ढंग से कहने लं
कि उनका उद्देश्य नये आर्थिक सिद्धांतों का विकास करन
नही, बल्कि अपनी भयावह स्थिति के प्रति मजदूरों क
आंखे खोलना, उन्हे जनवादी और कम्युनिस्ट कम्यूनों
संगठित होने की शिक्षा देना है।

गुस्से से त्योरी चढा कर मार्क्स ने सहसा वाइटलि
को बीच मे ही रोक दिया और व्यंग्यात्मक ढंग से कह
कि कार्रवाई के लिए कोई दृढ, सुविचारित आधार प्रदा
किये बिना आबादी को भडकाना उसे मात्र धोखा दे
होगा। किन्ही सही वैज्ञानिक विचारों अथवा रचनात्म
सिद्धांत के बिना मजदूरो से कार्रवाई के लिए आह्वा
करना उस उपदेशक के बेईमान खोखले खेल के समा
होगा, जो एक ओर, अनुप्राणित पैगंबर और दूस
ओर, केवल मुह फाड कर देखते मूर्खों की कल्पना करता है

वाइटलिंग के पीले गाल सुर्ख हो गये। वह आ
बरपूर्ण ढंग से अपनी सेवाओ के बारे मे बोलने लगे औ
खास तौर से कहा कि आम ध्येय के लिए उनके साधार
आरंभिक कार्य का शायद उन सिद्धातों की आलोच

और कोरे विश्लेषण से कहीं अधिक महत्व है, जो पीडित और विपत्तिग्रस्त लोगों की दुनिया से बहुत दूर हैं।

इन शब्दों पर क्रुद्ध होकर मार्क्स ने मेज पर अपनी मुट्ठी इतनी जोर से पटकी कि इस पर रखा लैम्प झनझनाने और डगमगाने लगा। वह यह कहते हुए कूद पड़े "अज्ञान ने अभी तक किसी की सहायता नहीं की है!"*

मार्क्स से मिलने वाले अनेकानेक लोग उस कड़ाई से स्तंभित रह जाते थे, जिससे वह लोगों और सिद्धातों पर "निर्णय" देते थे। कूपमडूक सस्मरण लेखकों और मार्क्स के जीवनी-लेखकों ने अक्सर उनकी व्यग्र कठोरता, उनके "तानाशाही" तरीकों और उन लोगों के प्रति उनकी "मेफिस्टोफीलीस-सी" घृणा के बारे में शिकायत की, जो उनके विचारों से सहमत नहीं थे।

अपने विरोधियों के साथ मार्क्स जो वादानुवाद करते थे, उनमे सचमुच ही प्राय. प्रबल भावनात्मक पुट आ जाता था। जन्मजात राजनीतिज्ञ और क्रातिकारी मार्क्स के लिए सामाजिक विज्ञान एक ऐसा क्षेत्र था, जहा विचारों का सघर्ष विभिन्न सामाजिक-वर्गीय दृष्टि-कोणो के टकराव के रूप मे प्रकट होता था। उनके लिए यह सघर्ष उन "महाविद्वानो" का पडिताऊ, आवेशरहित और पाखंडी शास्त्रार्थ नहीं था, जो बाजी हारते हुए भी अपनी झेंप छिपाने की कला मे पारगत होने की चेष्टा करते हैं।

---

* 'सस्मरण मार्क्स और एगेल्स', मास्को, १९५७ अग्रेजी मे।

सिद्धांत के प्रश्नो पर मार्क्स का निर्णय नरम नहीं होता था, चाहे यह ऐसे लोगो के बारे मे ही प्रश्न क्यो न हो, जिनसे मार्क्स अनेक वर्षो की दोस्ती से बंधे हुए थे। स्वय असाधारण रूप से एकनिष्ठ व्यक्ति होते हुए, मार्क्स ने दूसरे लोगो को आकने के लिए दोहरे मापदडो–एक "मानवीय" स्तर पर और दूसरा वैज्ञानिक, "कार्य" स्तर पर–का इस्तेमाल नही किया। ऐसा कोई भी आदमी, जो वैज्ञानिक सिद्धात अथवा क्रांतिकारी व्यवहार के प्रश्नो पर "विचलित" हुआ, उसने ऐसा करने मे मार्क्स की दृष्टि मे एक नैतिक गलती भी की और न केवल एक चिंतक या क्रातिकारी के रूप मे, बल्कि एक व्यक्ति के रूप मे भी अपना सम्मान खो दिया। उल्टे, किसी के भी व्यक्तिगत संबधो मे जरा-सी भी बेईमानी ने मार्क्स के लिए वैज्ञानिक और राजनीतिक मामलों मे उस व्यक्ति पर विश्वास न करने का महत्वपूर्ण औचित्य प्रदान किया।

पुरानी सूक्ति "प्लेटो मुझे प्रिय है, लेकिन सत्य और भी अधिक प्रिय है" ने अपने मित्रो के साथ मार्क्स के सबंधो मे पूर्ण अभिव्यक्ति पायी। उन्होने सत्य के साथ विश्वासघात करने वाले किसी भी व्यक्ति को कभी नही बख्शा। वैज्ञानिक प्रश्नो पर मतभेदों ने हमेशा उन्हे अतत मैत्री-विच्छेद और फिर तीखे वादानुवाद-युद्ध पर लाया। ब्रूनो बावेर, अडोल्फ रूटेनबेर्ग, आर्नोल्ड रूगे, पियेर प्रूदो, मिखाईल बकूनिन, मोजेस हेस्स, विल्हेल्म वाइटलिंग और ग्योर्ग हेर्वेग के साथ ऐसा ही हुआ।

युवा मार्क्स ने अपने बौद्धिक विकास मे इतनी द्रुत

प्रगति की कि कल के उनके समान-विचार वाले दोस्त बहुत पीछे छूट गये। लेकिन अपने आप में यही चीज नही थी, जिसने उनके वादानुवादात्मक क्रोध को उत्तेजित किया। वह निश्चित रूप से अपने ज्ञान और योग्यताओं का प्रदर्शन करने वाले व्यक्ति नही थे। ज्ञानाभाव को वह हमेशा समझ और बख्श सकते थे, लेकिन दूसरो को शिक्षा देने और नेतृत्व करने का दावा करने वाले पांडित्यपूर्ण अज्ञानियो की आत्म-सतुष्ट और युयुत्सु महत्वाकाक्षाओ को उन्होंने कभी नही बख्शा। ऐसे मामलो में अज्ञान एक व्यक्तिगत कमी न रहकर सामाजिक खतरा बन जाता है। मार्क्स ने इसकी निन्दा करने में कोई कोर-कसर नही उठा रखी।

उन्होंने इस या उस व्यक्ति को आकने में लगभग अचूक सहजबुद्धि प्रदर्शित की। उन्होंने न केवल क्षण-विशेष में इस व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को बहुत स्पष्ट ढग से देखा, बल्कि यह भविष्यवाणी भी कर सके कि यह स्थिति भविष्य में उसे कहा ले जायेगी। उनके आलोचनात्मक प्रहार शुरू में अनुपयुक्त प्रतीत हो सकते थे, लेकिन कुछ समय बाद यह प्रकट हो जाता था कि मार्क्स सही थे।

विचार के "आतकवादी" ब्रूनो बावेर ने बाद में प्रतिक्रियावादी *Kreuz-Zeitung* के लिए काम करना शुरू कर दिया। अडोल्फ रूटेन्बेर्ग, जिन्होंने अपना जीवन एक राजनीतिक शहीद के रूप में शुरू किया, नीचे घूमते हुए *Preussischer Staats-Anzeiger* के

सपादक तक आ गये। आर्नोल्ड रूगे, जिन्होंने १९वीं शताब्दी के पांचवें दशक के प्रारभ में अपने प्रकाशनों के पृष्ठों पर राजनीतिक संघर्ष का घंटानाद किया था, अपने जीवन के अंत में बिस्मार्क का समर्थक बन गये।

जहां तक वाइटलिंग और प्रूदों का संबंध है, जैसा कि मेहरिंग ठीक ही उल्लेख करते हैं, उनके भाग्य में उसी प्रसिद्धि और उसी दुर्भाग्य का भागीदार होना बदा था। उनके कार्यकलाप के प्रारंभ में किसी भी व्यक्ति से अधिक मार्क्स ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और उनके रूप में मजदूर वर्ग की आत्म-चेतना का जागरण देखा। लेकिन वाइटलिंग जर्मन दस्तकार के सीमित क्षितिजों और प्रूदों फ्रासीसी टुटपुजिया बुर्जुआ वर्ग के क्षितिजों से आगे नही बढ पाये। ऐतिहासिक विकास की लहर ने उन्हे चट्टानों पर ला पटका और वे मार्क्स से अलग हो गये, जिन्होंने उस ध्येय को बडे शानदार ढंग से पूरा किया, जिसे वाइटलिंग और प्रूदो ने शुरू किया था।

लेकिन मार्क्स वाइटलिंग के साथ मैत्री-विच्छेद के बाद भी उन्हे वित्तीय सहायता प्रदान करते रहे हालांकि वह खुद तगहाली में थे। इस सबंध में हेस्स ने लिखा "जैसा कि मैंने तुमसे आशा की थी, तुम वाइटलिंग के साथ टकराव को न देखते हुए उनके सामने तब तक अपना बटुआ खोलना नही बद करोगे, जब तक इसमे कुछ है।"*

* फ्राज मेहरिग, 'कार्ल मार्क्स. उनके जीवन की कहानी', न्यूयार्क, १९३५।



कार्ल मार्क्स और फ्रेडरिक एंगेल्स
पेरिस के समाजवादियों और कम्युनिस्टों

एक दिन मार्क्स ने सोचा कि उनकी सहजबुद्धि ने उन्हें धोखा दे दिया है: वह मिखाईल बकूनिन के प्रति जो अविश्वास महसूस करते थे, वह उनके क्रांतिकारी कार्यकलाप के तथ्यों द्वारा पुष्ट नही हुआ। मार्क्स ने तुरंत उन अमैत्रीपूर्ण कार्रवाइयों के लिए खेद प्रकट किया, जिन्हे उन्होने बकूनिन के खिलाफ तब की थी, जब वह *Neue Rheinische Zeitung* के संपादक थे। उन्होंने बकूनिन के साथ मेल-मिलाप कर लिया और "उनका समर्थन किया" *।

वर्षों बीत गये और इंटरनेशनल मे बकूनिन द्वारा अपनायी गयी फूटकारी स्थिति ने दिखला दिया कि मार्क्स की सहजबुद्धि ने उन्हे पूरी तरह धोखा नही दिया था।

मार्क्स ने एक बार कहा था· "मै बहुत कम लोगो से दोस्ती करता हू, लेकिन तब उनसे गहरी दोस्ती करता हू।" ** और वास्तव मे, उनके बहुत कम असली, सच्चे मित्र थे। लेकिन वे कितने निर्मल और सर्वहारा ध्येय के प्रति कितने समर्पित लोग थे। विल्हेल्म वोल्फ, जोज़ेफ वेडेमेयर, विल्हेल्म लीब्कनेख्त और गेओर्ग वेयेर्थ ..

मार्क्स इतनी तीव्र घृणा करने मे इस वजह से समर्थ थे कि वह प्रेम और दोस्ती की अत्यधिक गहन भावनाओं को महसूस करने मे सक्षम थे। दो लोगो ने उनके जीवन में असाधारण भूमिका निभायी· जेनी का प्रेम

---

* का० मार्क्स, फ़० लासाल को, १८४२।
** का० मार्क्स, फ़० फ़्रेइलिग्राथ को, १८६०।

और एंगेल्स की दोस्ती मार्क्स के लिए भाग्य का सबसे सौभाग्यशाली वरदान थे।

जेनी न केवल उनकी पत्नी, बल्कि उनकी निकटतम दोस्त और सलाहकार तथा उनकी रचनाओं की पहली आलोचक भी थी। मार्क्स (अपने मित्र हाइने की तरह) उनके व्यग्य, उनकी परिष्कृत सौदर्यबोधी रुचि और उनके व्यापक ज्ञान की बडी कद्र करते थे, जो कुछ क्षेत्रो मे स्वय उनके ज्ञान से कम नही था। वह जेनी की साहित्यिक प्रतिभा की प्रशसा करते थे और उन्हे पत्र-विषयक कला का मर्मज्ञ मानते थे।

मार्क्स उत्कृष्ट साहित्यिक शैली से सपन्न थे, जिसमे, विल्हेल्म लीब्कनेख्त के शब्दो मे, "टैसिटस की रोषपूर्ण कठोरता, जुवेनाल का मर्मातक व्यग्य और दाते का पवित्र क्रोध" समन्वित थे। फिर भी मार्क्स इस कला मे जेनी की सहायता से अपने को निपुण बनाते रहे।

जून, १८४४ मे लिखा मार्क्स को जेनी का एक बहुत ही दिलचस्प पत्र बचा है। इसमे वह मार्क्स की शैली की आलोचना करती हैं और उन्हे सलाह देती है ". इतने अधिक विद्वेष और चिढ से मत लिखो। तुम जानते हो कि तुम्हारे अन्य लेखो का कितना जबर्दस्त प्रभाव पडा है। या तो तथ्यात्मक और सूक्ष्म ढग से या व्यग्यात्मक और सहज ढग से लिखो। कृपया, मेरे परमप्रिय, तुम अपनी कलम और इसके साथ वाक्यो को कागज पर स्वतत्रतापूर्वक प्रवाहित होने दो, भले ही यह यदा-कदा लडखड़ाये और मद पडे। जो भी हो, तुम्हारे विचार दृढ और

एक दिन मार्क्स ने सोचा कि उनकी सहजबुद्धि ने उन्हें धोखा दे दिया है: वह मिखाईल बकूनिन के प्रति जो अविश्वास महसूस करते थे, वह उनके क्रातिकारी कार्यकलाप के तथ्यों द्वारा पुष्ट नही हुआ। मार्क्स ने तुरंत उन अमैत्रीपूर्ण कार्रवाइयो के लिए खेद प्रकट किया, जिन्हे उन्होंने बकूनिन के खिलाफ तब की थी, जब वह *Neue Rheinische Zeitung* के संपादक थे। उन्होंने बकूनिन के साथ मेल-मिलाप कर लिया और "उनका समर्थन किया" *।

वर्षो बीत गये और इंटरनेशनल में बकूनिन द्वारा अपनायी गयी फूटकारी स्थिति ने दिखला दिया कि मार्क्स की सहजबुद्धि ने उन्हें पूरी तरह धोखा नही दिया था।

मार्क्स ने एक बार कहा था: "मैं बहुत कम लोगो से दोस्ती करता हू, लेकिन तब उनसे गहरी दोस्ती करता हू।" ** और वास्तव मे, उनके बहुत कम असली, सच्चे मित्र थे। लेकिन वे कितने निर्मल और सर्वहारा ध्येय के प्रति कितने समर्पित लोग थे! विल्हेल्म वोल्फ, जोजेफ़ वेडेमेयर, विल्हेल्म लीब्कनेख्त और गेओर्ग वेयेर्थ .

मार्क्स इतनी तीव्र घृणा करने मे इस वजह से समर्थ थे कि वह प्रेम और दोस्ती की अत्यधिक गहन भावनाओ को महसूस करने मे सक्षम थे। दो लोगो ने उनके जीवन मे आसाधारण भूमिका निभायी· जेनी का प्रेम

---

* का० मार्क्स, फ० लासाल को, १८४२।
** का० मार्क्स, फ० फ्रेइलिग्राथ को, १८६०।

और एगेल्स की दोस्ती मार्क्स के लिए भाग्य का सबसे सौभाग्यशाली वरदान थे।

जेनी न केवल उनकी पत्नी, बल्कि उनकी निकटतम दोस्त और सलाहकार तथा उनकी रचनाओ की पहली आलोचक भी थी। मार्क्स (अपने मित्र हाइने की तरह) उनके व्यग्य, उनकी परिष्कृत सौंदर्यबोधी रुचि और उनके व्यापक ज्ञान की बडी कद्र करते थे, जो कुछ क्षेत्रो मे स्वय उनके ज्ञान से कम नही था। वह जेनी की साहित्यिक प्रतिभा की प्रशसा करते थे और उन्हे पत्र-विषयक कला का मर्मज्ञ मानते थे।

मार्क्स उत्कृष्ट साहित्यिक शैली से सपन्न थे, जिसमे, विल्हेल्म लीब्कनेख्त के शब्दो मे, "टैसिटस की रोषपूर्ण कठोरता, जुवेनाल का मर्मांतक व्यग्य और दाते का पवित्र क्रोध" समन्वित थे। फिर भी मार्क्स इस कला मे जेनी की सहायता से अपने को निपुण बनाते रहे।

जून, १८४४ मे लिखा मार्क्स को जेनी का एक बहुत ही दिलचस्प पत्र बचा है। इसमे वह मार्क्स की शैली की आलोचना करती हैं और उन्हे सलाह देती है. "...इतने अधिक विद्वेष और चिढ से मत लिखो। तुम जानते हो कि तुम्हारे अन्य लेखो का कितना जबर्दस्त प्रभाव पडा है। या तो तथ्यात्मक और सूक्ष्म ढग से या व्यग्यात्मक और सहज ढग से लिखो। कृपया, मेरे परमप्रिय, तुम अपनी कलम और इसके साथ वाक्यो को कागज़ पर स्वतत्रतापूर्वक प्रवाहित होने दो, भले ही यह यदा-कदा लडखडाये और मद पडे। जो भी हो, तुम्हारे विचार दृढ और

साहसी पुराने गार्ड के सिपाहियों की तरह सीधे तनकर खडे होते है और वे पुराने गार्ड की तरह कह सकते हैं: *elle meurt mais elle ne se rend pas"* (गार्ड मर जाता है, पर आत्मसमर्पण नही करता। – अनु०)। "और इससे क्या फर्क पडता है कि वर्दी पूरी-पूरी फिट न आकर कभी-कभार कुछ ढीली-ढाली रह जाये? फ़ासीसी सैनिको के बारे मे जो चीज इतनी अधिक आकर्षक है, वह उनकी उन्मुक्त और सहज वर्दी है। और जरा हमारे बेढगे प्रशियाई सैनिकों को याद करो, क्या तुम्हारे रोगटे खड़े नही हो जाते? पेटियों को ढीला कर दो और टाई तथा टोप को हटा दो – क्रदतो को अपना स्वतंत्र मार्ग लेने दो और शब्दो को उसी क्रम में रखो, जिस क्रम मे वे स्वयं सहजत आते है। ऐसी फौज को इतने सख्त क्रम मे कूच करने की आवश्यकता नही है। और क्या तुम्हारी फौजे युद्ध-क्षेत्र मे नही आ रही है? जनरल को सफलता की कामना करती हू ."

उनसे निकटता से परिचित सभी लोगो के अनुसार, मार्क्स और जेनी सुखी और आनदपूर्ण दपति थे। बडी से बडी विपत्ति और मुसीबत भी उनके प्रेम को क्षीण या धुधला नही कर सकी। उल्टे, विपदा उनकी भावना को मजबूत करते ही प्रतीत हुई। प्रौढावस्था मे भी मार्क्स अपनी पत्नी के प्रति वही कोमल और उत्कट प्रेम महसूस करते रहे, जो उन्होने अपने विद्यार्थी वर्षो मे महसूस किया था।

१८५६ में उन्होने जेनी को एक भावपूर्ण पत्र लिखा,

जो कुछ समय के लिए यात्रा पर जर्मनी गयी थी। तब तक जेनी एक बडे परिवार की ४२-वर्षीय माता बन चुकी थी। अपनी अनुभूति की कोमलता और शक्ति के कारण एक असाधारण मानव दस्तावेज होने के साथ यह पत्र गहन विचार से भी ओत-प्रोत है। यह मार्क्स के व्यक्तित्व और उनके चिरयुवा प्रेम के लिए इतना अधिक अभिलाक्षणिक है कि इसके विस्तृत अवतरण यहा उद्धृत करने योग्य हैं·

"मेरी प्रियतमा,

"मैं तुम्हे फिर लिख रहा हू, इसलिए कि मैं अकेला हू और इसलिए कि मेरे मन मे हमेशा तुम्हारे साथ वार्तालाप करना मुझे परेशान किये दे रहा है, जबकि तुम इसके बारे मे न कुछ जानती हो, न कुछ सुनती हो और न ही मुझे उत्तर दे सकती हो. मैं तुम्हे अपने सामने साक्षात् देखता हू, मैं तुम्हे अपनी गोद मे उठा लेता हू, मैं तुम्हे सिर से पाव तक चूमता हूं, मैं तुम्हारे सामने घुटने टेक देता हू और आह भरता हूं: 'मैं आपको प्यार करता हूं, मदाम!' और मैं तुम्हें सचमुच बहुत-बहुत प्यार करता हू, उससे भी ज्यादा प्यार करता हू, जिसे 'वेनिस के मूर' ने कभी किया था। मिथ्या और भ्रष्ट दुनिया लोगो को मिथ्या और भ्रष्ट रूप मे ही देखती है। मेरे अनेकानेक निन्दको और चुगलखोर शत्रुओ मे से किसने कभी मेरी इस बात के लिए भर्त्सना की कि मैं किसी द्वितीय श्रेणी के थियेटर मे प्रथम प्रेमी की भूमिका अदा करने के योग्य हू? और फिर भी यह सही है।

यदि इन बदमाशो के पास बुद्धि होती, तो वे एक तरफ 'उत्पादन और विनिमय संबंधो' और दूसरी तरफ मुझे तुम्हारे चरणो मे चित्रित कर दिये होते। 'इस चित्र को देखिये और उस चित्र को देखिये'—उन्होंने नीचे लिख दिया होता। लेकिन वे मूढ बदमाश हैं और मूढ ही रहेंगे *in seculum seculorum*" (हमेशा के लिए —अनु०)।

" . केवल अतराल ही हमे एक दूसरे से अलग करता है और मुझे फौरन विश्वास हो जाता है कि समय ने मेरे प्यार की मदद ही की है, वैसे ही जैसे धूप और बारिश से पौधे के बढने मे मदद मिलती है। ज्योही तुम मुझसे दूर हटती हो, तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम विराट रूप ग्रहण कर लेता है, इसमे मेरी आत्मा की सारी ओजस्विता और मेरे हृदय की सारी शक्ति संकेद्रित हो जाती है। मैं पुन अपने को शब्द के पूरे अर्थ में मनुष्य महसूस करने लगता हू, क्योकि मैं एक प्रचड मनोवेग अनुभव करने लगता हू। विविधता का, जिसे आधुनिक अध्ययन और शिक्षा हममे विकसित करते है, और सदेहवाद का, जिससे हम अनिवार्यत सभी आत्मगत और वस्तुगत प्रभावो की आलोचना करते है, अभिप्राय हमे छोटा, शक्तिहीन, शिकायती और असकल्पशील बनाना है। लेकिन प्रेम, फायरबाख के 'पुरुष' के लिए नही, मोलेशोत के चयापचय के लिए नही, सर्वहारा के लिए नही, बल्कि प्रेयसी के लिए, तुम्हारे लिए प्रेम मनुष्य को पुन मनुष्य बना देता है।

"तुम हसोगी, मेरी प्रियतमा, और पूछोगी कि क्यो



जेनी फ़ोन वेस्टफ़ालेन।
चित्रकार – अ० वेनेत्सियन

मैंने सहसा अपने को आलकारिक भाषा में झोक दिया है? लेकिन यदि मैं तुम्हारे मधुर, निर्मल हृदय को अपने हृदय से लगा सकता, तो मैं खामोश रहता और मेरी जबान पर एक शब्द भी नहीं आता। चूंकि मैं तुम्हे अपने होंठो से नही चूम पा रहा हूं, इसलिए मुझे अपनी जिह्वा से चूमना पड़ता है और शब्द लिखने पडते हैं। बेशक मैं कविताएं भी लिख सका होता ..

"निस्सदेह, दुनिया में अनेकानेक औरते हैं और उनमे कुछ सुदर भी हैं। लेकिन मुझे ऐसा चेहरा पुन कहा मिल सकेगा, जिसमे हरेक रंगरूप, हरेक झुर्री मेरे जीवन की सबसे शक्तिशाली और मधुर स्मृतिया जगाते हो? तुम्हारे मधुर मुखडे मे मैं अपने असीम दुखो, अपनी अपूरणीय क्षतियो" (यहा मार्क्स अपने पुत्र एडगर की मृत्यु की ओर इशारा कर रहे है–सं०) "को पढता हूं और जब मैं तुम्हारे मधुर चेहरे को चूमता हूं, तो मेरे सारे दुख-दर्द गायब हो जाते है। 'उसकी बांहो में दफ्न, उसके चुबनो द्वारा पुनरुज्जीवित'–अर्थात तुम्हारी बाहों मे और तुम्हारे चुबनों द्वारा, और मुझे ब्राह्मणो और पिथागोरस की और पुनर्जन्म के बारे में उनकी शिक्षा की तथा ईसाई धर्म और पुनरुज्जीवन के बारे मे इसकी शिक्षा की कोई जरूरत नही है।"

पारिवारिक चिताओं के बोझ के बावजूद जेनी मार्क्स के वैज्ञानिक और राजनीतिक कार्य मे उनकी अथक और विश्वसनीय सहायक थी। अनेक वर्षो तक वह उनकी आदर्श सेक्रेटरी थी, उनकी कृतियो की नकल

करके प्रतिलिपिया तैयार की और पार्टी कार्यो के बारे मे उनके "सदेशवाहक" का काम किया। उन्होंने अतर्राष्ट्रीय मज़दूर आदोलन मे अनेक सक्रिय लोगो के साथ पत्र-व्यवहार किया और इस आदोलन से सबद्ध सभी कार्य-कलापो मे बडी दिलचस्पी ली। उन्होंने स्वाभिमान पूर्वक अपने को एक पार्टी कार्यकर्ता माना। लासाल को लिखे पत्र मे उन्होंने व्यग्यपूर्वक टिप्पणी की

"जल्दबाजी मे लिखे इस नोट के लिए क्षमा करे। मेरे दिमाग मे और हाथो मे इतना कुछ है और आज मुझे शहर भी जाना है, जो मेरे पैरो को दो-तीन घटे व्यस्त रखेगा।

"जैसा कि आप देखते है, मैं अब भी आदोलन की पार्टी, अग्रगामी पार्टी की सदस्य हू और इसके अलावा मैं एक अच्छी पार्टी धावक या सदेशवाहक, जैसा भी आप चाहे, हू।"

मार्क्स परिवार के घर मे अत्यत साधारण रहन-सहन के बावजूद राजनीतिक शरणार्थियो ने हमेशा शरण, सहायता और आराम पाया। विल्हेल्म लीब्कनेख्त ने स्मरण किया: "श्रीमती मार्क्स हम" (जर्मनी के उत्प्रवासी – लेखक) "पर छा जाती थी, शायद स्वयं मार्क्स से भी ज्यादा। उनमे स्वाभिमान, गरिमा-बोध था . मेरे लिए वह कभी एक इफिजेनिया थी, जो बर्बरो को सीधा और शात करती है तो कभी एक लेओनोरा थी, जो आतरिक सघर्ष और सदेह से विदीर्ण आदमी को शाति देती है; मेरे लिए वह माता, मित्र, विश्वासपात्र और सलाहकार

थी। वह मेरे लिए आदर्श नारी थी। और मैं दुबारा कहता हू, यदि मैं लदन मे नैतिक और शारीरिक रूप से टूट नही गया, तो इसका मुख्य श्रेय उन्ही को है।"

मार्क्स के सभी आगतुक, मित्र और परिचित जेनी के असाधारण सौदर्य, शालीनता और बुद्धि की भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। हाइने, हेर्वेग और फ्रेइलिग्राथ उनके बारे मे उत्साहपूर्वक बात करते थे। गंभीर राजनीतिज्ञ तक जेनी के बारे मे बात करते हुए कवि बन जाते थे। पहले इटरनेशनल के एक सगठनकर्ता दर्जी फ़्रेडरिक लेसनर ने लिखा था "मार्क्स का घर हर विश्वसनीय साथी के लिए खुला रहता था। मैं उन सुखद घटो को कभी नही भूलूगा, जिन्हे मैंने अनेक अन्य लोगो की भाति मार्क्स के परिवार मे बिताये। श्रीमती मार्क्स ने खास तौर से एक जीवत प्रभाव पैदा किया। वह लंबी, बहुत सुंदर, बहुत प्रतिष्ठित औरत थी और साथ ही इतनी नेक, प्रीतिकर, वाग्विदग्ध तथा अहकार और अक्खडपन से इतनी मुक्त थी कि उनकी उपस्थिति मे अपनी मा या बहन की तरह ही निश्चितता और सहजता का अनुभव होता था वह मजदूर आदोलन के प्रति उत्साह से भरी हुई थी और बुर्जुआ वर्ग के खिलाफ हर सफलता से, चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो, उन्हें बडा सतोष और सुख प्राप्त होता था।"

और, निश्चय ही, अपने पति से सबधित हर घटना से जितना जेनी प्रभावित होती थी, उतना दूसरा कोई भी नही। जब प्रतिक्रियावादी जर्मन प्रेस मे १८४८ के

क्रातिकारियों के खिलाफ अभियान शुरू हुआ और मार्क्स पर निन्दा के विष-बाण छोड़े गये, तो जेनी इतनी परेशान हो उठी कि वह बीमार पड़ गयी। 'पूजी' के प्रथम खड के प्रकाशन के बाद वह इस बात से अत्यत चिंतित थी कि इस युगातरकारी कृति को जर्मनी मे बिल्कुल नजरदाज कर दिया गया। उन्हें इस बात से बहुत दुख हुआ कि मार्क्स की प्रतिभा को उचित मान्यता नही मिली और अपनी मृत्यु के दो साल पूर्व एक अग्रेजी पत्रिका मे उनके बारे मे उल्लेख को पढकर बच्चे की तरह खुशी से झूम उठी। मार्क्स ने अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद एगेल्स को लिखे एक पत्र मे इसका कटुतापूर्वक स्मरण किया।

जब १८८१ के अत मे जेनी की मृत्यु हुई, तो एगेल्स ने ऐसी टिप्पणी की, जिसने अनेक लोगो को चौका दिया "मूर भी मर गया है।" वह जानते थे कि ये दो लोग अक्षरश. एक दूसरे के बिना नही रह सकते थे और मार्क्स के गिने हुए दिन रह गये थे। और वह सही थे।

मानवजाति के पास प्रेम की अनेक कहानिया, आख्यान और किंवदतिया सुरक्षित हैं और मार्क्स और जेनी की प्रेम-कहानी एक और उत्कृष्टतम प्रेम-कहानी है।

दोस्ती में मार्क्स उतनी ही प्रबल और सतत भावनाओं मे समर्थ थे जितना कि प्रेम मे, जो वर्षो के साथ पुरानी नही हुई। मार्क्स और एगेल्स ने अपनी सभी मुसीबतो और दुख-तकलीफो को साथ-साथ झेला, वे विरले ही लबे समय के लिए अलग होते थे और अपने आम ध्येय के लिए मिलकर काम किया।

भले ही देखने मे मार्क्स का जीवन जीवंत रंगों और असाधारण घटनाओ मे बहुत समृद्ध नही प्रतीत होता हो, यह क्रातिकारी, राजनीतिक कार्यकर्ता, प्रचारक और वैज्ञानिक की ज़बर्दस्त आत्मिक उत्तेजना से भरा हुआ है, यह जोशीली भावनाओ, सघर्ष और जावाजी, सत्य एव सर्वहारा सघर्ष के ध्येय की निस्स्वार्थ सेवा से सपन्न है।

उनका जीवन यूरोप के मजदूरो की वर्ग-चेतना के गठन का सपूर्ण ऐतिहासिक युग है।

वह कम्युनिस्ट पार्टी की पहली छोटी इकाई, कम्युनिस्ट लीग के सगठनकर्ता और एंगेल्स के साथ समाज के पुनर्गठन के लिए सघर्ष के अनुप्राणित और स्पष्ट कार्यक्रम 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' के लेखक थे। *Neue Rheinische Zeitung* में उनके लेख १८४८ की क्राति के सडक-मोर्चो पर साहसी योद्धा थे। १८६४ की शरत से मार्क्स ने अपने को पहले इंटरनेशनल के कार्यो मे पूर्णतया लगाने के लिए अपने वैज्ञानिक अध्ययनो को छोड दिया। वह इस समाज की जान थे। विभिन्न देशो के मजदूर आदोलन को सूत्रबद्ध करते हुए, गैर-सर्वहारा, पूर्व-मार्क्सवादी समाजवाद के विभिन्न रूपो (माज़िनी, प्रूदो, बकूनिन, अग्रेज उदारतावादी ट्रेड-यूनियनवाद, जर्मनी मे लासालवादियो के दक्षिणपथ, आदि) को सयुक्त कार्यकलाप मे मोडने की चेष्टा करते हुए और इन सभी सप्रदायो और धाराओ के सिद्धातो के खिलाफ सघर्ष करते हुए मार्क्स ने विभिन्न देशो के सर्वहारा वर्ग के सघर्ष की सयुक्त कार्यनीति को निरूपित किया।

उन्होंने युवा उत्साह के साथ पेरिस कम्यूनार्डो की क्राति-कारी लडाइयो का अनुसरण किया और कम्यून के कार्य-कलापो का विश्लेषण किया।

यह सब स्वत ही एक एकात वैज्ञानिक के रूप मे मार्क्स के बारे मे बुर्जुआ कपोल-कल्पना का खडन कर देता है। अपने जीवन के एक बडे भाग को वैज्ञानिक विश्व-दृष्टि-कोण के प्रतिपादन जैसे एक महान ध्येय को समर्पित करके मार्क्स ने प्रत्यक्ष राजनीतिक और सगठनकारी कार्य के लिए समय देने मे कभी कोई कोताही नही की।

जब मार्क्स के एक मित्र लुडविग कुगेलमन ने उन्हे राजनीतिक प्रचार से विरत रहने और सर्वोपरि 'पूजी' के तीसरे खड पर काम मे लगने के लिए समझाने-बुझाने का प्रयास किया, इसलिए कि यह क्राति के ध्येय के लिए अधिक महत्वपूर्ण था, तो मार्क्स नाराज हो गये और उनसे सबध तोड लिया।

उनका राजनीतिक जीवन उनके वैज्ञानिक जीवन से अविच्छेद्य था, कार्यकलाप के एक क्षेत्र ने दूसरे क्षेत्र को उर्वर बनाया और अनुप्राणित किया। उन्होंने दोनों ही क्षेत्रो मे साघ्यो और साधनो की पवित्रता के लिए समान रूप से निर्मम सघर्ष किया और इससे सभी विचलनो को लज्जाजनक माना।

मार्क्स ने अहम्मन्यतावादी उद्देश्यो के लिए क्रातिकारी नारों के लफ्फ़ाजीपूर्ण इस्तेमाल को सर्वहारा के ध्येय के खिलाफ सबसे बुरा अपराध माना। वह राजनीतिक शेख़ीबाज़ों की मिथ्या चमक-दमक से नफरत करते थे,

जो लच्छेदार फिकरो की आड़ मे अपना बुद्धि-अभाव और क्षुद्रता छिपाना चाहते थे। मार्क्स ने अचूक ढग से इस सब के मूल मे निहित कुत्सित पाखडपूर्ण कूपमडूकता को खोज निकाला।

उन्होंने न तो खोखले फिकरो और न ही फ़रेबी कार्यों को कभी बख्शा। मार्क्स और एगेल्स ने जर्मन सामाजिक-जनवादियों के नेता फर्दीनाद लासाल की सस्ती लोकप्रियता के प्रयास, उनके दभ, मेधावी व्यक्ति और अभिजात वर्ग के प्रतिनिधि की भूमिका अदा करने वाले एक प्रादेशिक अभिनेता के छिछोरेपन और भावुकता, सौदेबाज़ी और उदारतापूर्ण व्यवहारो के घालमेल की निर्मम आलोचना की।

फ़ासीसी टुटपुजिया बुर्जुआ राजनीतिज्ञ और इतिहासकर लुई ब्ला के प्रति भी मार्क्स का रुख ऐसा ही था।

" . हममे से कोई भी लोकप्रियता के लिए परवाह नही करता है। इसका प्रमाण, मिसाल के लिए, यह है कि किसी भी प्रकार की व्यक्ति-पूजा के प्रति घृणा के कारण मैंने विभिन्न देशो से प्राप्त अनेकानेक प्रशसात्मक अभिव्यक्तियो को, जिनकी इटरनेशनल के अस्तित्व के दौरान मुझ पर झडी लगा दी गयी, प्रकाशन-क्षेत्र तक पहुचने की अनुमति नही दी और न ही उनका कभी उत्तर दिया, सिवाय यदा-कदा झिड़कियो से जवाब देने के। जब एगेल्स और मैं पहले पहल गुप्त कम्युनिस्ट सोसाइटी" (कम्युनिस्ट लीग – सं०) "मे शामिल हुए, तो हमने इसे शर्त बनायी कि व्यक्ति-पूजा मे दकियानूसी विश्वास को

प्रोत्साहित करने वाली सभी चीजो को नियमावली से हटा दिया जाये।"*

व्यक्ति को न केवल उसकी पसदो से, बल्कि उसकी नापसदो से भी, न केवल उसकी सहानुभूतियो मे, बल्कि उसके विद्वेषो से भी पहचाना जाता है। बताइये कि आपका शत्रु कौन है और मैं बताऊगा कि आप कौन हैं।

एक टुटपुजिया बुर्जुआ जनवादी कार्ल शुर्ज ने, जिन्होने १८४८ मे कोलोन मे जनवादी सघो की काग्रेस मे मार्क्स को बोलते हुए सुना था, अपने जीवन के अत तक उस तीखे व्यग्यात्मक लहजे को स्मरण किया, जिससे मार्क्स ने शब्द "बर्गर" (बुर्जुआ, कूपमडूक) का उच्चारण किया।

अपने लेखो, पैम्फलेटो, पुस्तको और पत्रो मे मार्क्स ने कूपमडूको के पूरे गिरोह को उनकी योग्यताओ के अनुसार पुरस्कृत किया। वह इस बात की बिल्कुल चिता नही करते थे कि उनका विरोधी उनकी आलोचना योग्य था भी या नही और प्राय छुटभैये उनकी असीम वाग्विदग्धता का निशाना बन गये। लेसिंग के बारे मे हाइने की टिप्पणी मार्क्स पर पूर्णतया लागू होती है "अपने विरोधियो की हत्या करने मे उन्होंने उन्हे अमरत्व प्रदान किया।" उन्होंने छुटभैये लेखको को अपने हाजिर-जवाब विद्रूप, अपने दीप्त व्यग्य से ढक दिया और वे सदा के लिए उनकी कृतियो मे वैसे ही सुरक्षित हो गये, जैसे कि कहरुवे के टुकडो मे कीडे।

---

* का० मार्क्स, विल्हेल्म ब्लोस को, १८७७।

मार्क्स के संपूर्ण जीवन में कूपमंडूकों (नेपोलियन तृतीय से लेकर अखबार संवाददाताओं तक) ने निन्दा, उत्पीडन और झूठ से और जब इससे कोई सहायता न मिली तो उनकी कृतियों की एकदम उपेक्षा करके उनसे बदला लेने की कोशिश की। तो भी, सभी कठिन मुसीबतों के बावजूद मार्क्स यह गर्वपूर्वक कह सकते थे कि उन्होंने कूपमडूक से कभी नहीं हार मानी, "कूपमंडूक के पांव तले" कभी नहीं आये और हमेशा उससे दो-दो हाथ करने को तैयार रहते थे। "जी हां, सब कुछ के बावजूद," उन्होंने फ्रेइलिग्राथ के नाम एक पत्र में (१८६०) टिप्पणी की, "मेरे ऊपर कूपमंडूक हमेशा हमारे लिए कूपमंडूक के पांव तले से एक बेहतर आदर्श-वाक्य होगा।"

मार्क्स राजनीति और विज्ञान दोनों ही में कूपमडूकता के प्रति उतने ही कठोर थे।

विज्ञान में कूपमंडूकता मुख्यतया कायरता, विचार की नीचता के रूप में प्रकट होती है, जो प्रेक्षित तथ्यों से अनिवार्य निष्कर्ष निकालने में भय खाती है, विज्ञान से परे सभी विचारों पर ध्यान दिये बिना वस्तुओं के वास्तविक तर्क का निस्संकोच अनुसरण करने में भय खाती है।

विज्ञान में कूपमडूक सत्य के छिपाव और जालसाजी से सरोकार रखता है न कि सत्य के अन्वेषण से। अपनी बेईमान मडन-विद्या से वह शासक वर्गों की स्थिति और इसके जरिये अपनी स्थिति भी मजबूत करने का प्रयास करता है। वह सत्य को छद्म-सत्य वार्ता के चिपचिपे

कीचड में दफना देता है, इसे मजबूती से वैज्ञानिकता का जामा पहना देता है।

कूपमडूक विज्ञान को अपने उद्देश्य की प्राप्ति का एक साधन बनाता है, जिसका विज्ञान से कोई संबंध नहीं होता। वह इसका नीच उद्देश्य के लिए इस्तेमाल करता है। "लेकिन जब एक आदमी विज्ञान को एक ऐसे दृष्टिकोण के अनुकूल बनाने की चेष्टा करता है, जो स्वयं विज्ञान से नही (चाहे यह कितना ही ग़लत क्यों न हो), बल्कि बाहर से, परकीय बाह्य हितों से उत्पन्न होता है, तो मैं उसे '**नीच**' कहता हू।"*

मार्क्स चाबुक की मार या चेहरे पर तमाचे जैसे तीक्ष्ण इन शब्दो को माध्यम, रोशेर और बास्तिया जैसे विज्ञान को झुठलाने और विकृत करने वालों को संबोधित करते है। मार्क्स पादरी माल्थस के प्रति असीम घृणा महसूस करते हैं, इसलिए कि "यह कमबख्त" विज्ञान द्वारा अन्वेषित पूर्वाधारों (जिन्हें वह हमेशा चुरा लेता है) से केवल ऐसे निष्कर्ष निकालता है, जो शासक वर्गों को "पसद" हों। वह इन वर्गों को "दृष्टि में रखते हुए" वैज्ञानिक निष्कर्षों को तोड़ता-मरोड़ता है. लेकिन उसके निष्कर्ष "जहां तक शासक वर्गों का संबंध है **निर्मम** हैं।" यहां "वह न केवल निर्मम है, बल्कि निर्ममता का स्वांग भी करता है, वह, इसमें आनन्द भी उठा लेता है ."**

---

* का० मार्क्स, 'पूंजी', खंड ४

** वही।

विज्ञान के क्षेत्र में एक परजीवी की भांति काम करते हुए ऐसा "वैज्ञानिक" सामान्यतया साहित्यिक-चोरी की ओर मुडता है, लेकिन यहा भी अपने प्रति सच्चा बना रहता है। "एक विचार का आविष्कर्ता इसे सपूर्ण ईमानदारी में अतिरंजित कर सकता है; जब साहित्यिक-चोर इसे अतिरंजित करता है, तो वह हमेशा ऐसी अतिरंजना से 'लाभप्रद धधा' करता है।"*

विचार की वैज्ञानिक नीचता की इस क्रुद्ध निन्दा में मार्क्स न केवल अपने विद्वेष, बल्कि अपनी सहानुभूतिया – सच्चे वैज्ञानिक के बारे में, सत्य की निष्पक्ष और निस्स्वार्थ सेवा के बारे में अपने विचार – भी प्रकट करते हैं।

स्वय मार्क्स को ठीक ही अन्वेषणकारी वैज्ञानिक विचार का मूर्तरूप कहा जा सकता है। उनके लिए सृजनात्मक चिंतन जीवन का सबसे बडा सुख था। जब भी कोई चीज वैज्ञानिक कार्य से उनका ध्यान बंटाती थी, उन्हे हमेशा ही बडा कष्ट होता था। यहा तक कि बीमारी के अति क्लांतकारी दौरे भी उस कष्ट के मुकाबले कुछ नही थे, जो उन्होंने उनसे जनित अपनी निष्क्रियता से महसूस किया।

मार्क्स की वैज्ञानिक ईमानदारी न केवल निष्कलक, बल्कि एंगेल्स के ख्याल में, अतिशय भी थी। " . हालांकि स्वय एंगेल्स वैज्ञानिक कार्य में यथातथ्यता का पालन इसकी चरमावस्था तक करते थे, पर वह भी

---

* का० मार्क्स, 'पूजी', खड ४।

कभी-कभी मार्क्स की अतिसावधानी पर झल्ला उठते थे, जो कागज पर एक भी वाक्य तब तक नही लिखते थे, जब तक वह दसियो विभिन्न तरीको से इसे सिद्ध नही कर लेते थे।"*

मार्क्स महान चिंतक और महान आलोचक दोनो ही थे, लेकिन उनकी आलोचना – जवानी और प्रौढ़ावस्था मे भी – मूलतया स्वय अपने ही ख़िलाफ निर्दिष्ट थी। मार्क्स ने स्वीकार किया, "यह भी मेरा लक्षण है कि यदि मैं ऐसी कोई चीज देखता हू, जिसे मैंने महीने भर पहले लिखना समाप्त कर दिया है और यदि इसे असतोष-जनक पाता हू, तो मैं इसे पुन: पूरा का पूरा लिख डालता हू"**।

'पूजी' की आरंभिक पाडुलिपिया दिखाती है कि पहले खड के (और अगले खडो के भी) मुख्य विचारो का अन्वेषण और प्रतिपादन मार्क्स ने १८५७-५८ मे ही कर लिया था, लेकिन प्रकाशको को इस खड को भेजे जाने से पहले इसमे बहुत कठिन कार्य के दस वर्ष लग गये।

तब तक (१८६७) "ऐतिहासिक परिच्छेद" यानी 'बेशी मूल्य के सिद्धात' सहित शेष खड इस सीमा तक तैयार कर लिये गये थे कि स्वय मार्क्स ने सपूर्ण कृति को अधिक से अधिक एक साल मे पूरा कर लेने की आशा की थी। लेकिन वह इसे अपनी मृत्यु से पहले तक पूरा करने मे

---

* 'संस्मरण: मार्क्स और एंगेल्स'।

** का० मार्क्स, फ० लासाल को, १८६२।

असमर्थ रहे (प्रकाशकों के लिए 'पूजी' के दूसरे और तीसरे खडो को तैयार करने की जिम्मेदारी एगेल्स के कधो पर पडी)। मालूम हुआ कि एक परिच्छेद के लिए रूसी सामग्री का अध्ययन करना आवश्यक हो गया था और मार्क्स रूसी सीखने मे लग गये।

मार्क्स तब तक किसी प्रश्न पर विचार व्यक्त करने मे अपने को न्यायसगत नही मानते थे, जब तक वह सबद्ध साहित्य का पूरा अध्ययन नही कर लेते थे, भले ही लेखक की "गिनती" कैसी भी क्यो न हो। 'पूजी' मे उन्होने हरेक अर्थशास्त्री का, चाहे उसका योगदान कितना भी छोटा क्यो न हो, उसकी योग्यताओ के अनुसार मूल्याकन करते हुए वास्तव मे "इतिहास का निर्णय" दिया।

यदि सिर्फ सामग्री के विस्तार की दृष्टि से भी देखा जाये, तो 'पूजी' एक अपूर्व, विशाल कृति है, क्योकि इसमे अपने सभी रूपो और अभिव्यक्तियो मे आर्थिक (और केवल आर्थिक ही नही) विचार के सपूर्ण इतिहास का संश्लेपण किया गया है। इसमे मार्क्स के सपूर्ण जीवन-काल के दौरान उनके आत्मिक विकास का, विगत की सपूर्ण सास्कृतिक विरासत का सश्लेपण है। यह कृति इस वजह से भी अपूर्व है कि इसमे पहली बार अपने अनिवार्य विघटन की दिशा मे पूजीवादी उत्पादन-प्रणाली की प्रगति का तर्क प्रकट हुआ।

'पूजी' मात्र आर्थिक कृति ही नही है। यह सपूर्ण बुर्जुआ समाज के जीवन के सभी सबधो और पहलुओ का

विश्लेषण करती है। यह अपनी मुक्ति के लिए मजदूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष और विश्व कम्युनिस्ट आंदोलन की रणनीति तथा कार्यनीति का एक दृढ़ वैज्ञानिक आधार प्रदान करती है। इसलिए, स्वयं मार्क्स के शब्दों में, यह बुर्जुआ वर्ग पर दागी गयी "सबसे भयानक गोली" है, यह बुर्जुआ वर्ग को सुनाया गया अपील के अधिकार से रहित "मृत्यु-दंड" है।

'पूंजी' एक साहित्यिक और शैलीगत श्रेष्ठ कृति है। इसे पढ़ने में गहन सौंदर्यबोधी आनंद की अनुभूति होती है। यह एक "कलात्मक समष्टि" है। यह केवल रचना, संतुलन और प्रतिपादन के यथातथ्य तर्क के संबंध में ही नहीं, बल्कि अक्षरशः सही है, क्योंकि इसमें मार्क्स अपने को ललित साहित्य का श्रेष्ठ कलाकार सिद्ध कर देते हैं।

मार्क्स ने अपने विचारों के प्रतिपादन के साहित्यिक रूप को बड़ा महत्व दिया। वह उन विद्वानों का मजाक उड़ाया करते थे, जो नीरस, शुष्क दफ्तरी भाषा को विद्वत्ता का एक अनिवार्य गुण मानते थे। वोल्तेयर के साथ उन्हें यह कहना बहुत पसंद था कि सभी शैलियां अच्छी होती हैं, सिवाय उस शैली के जो उदासी लाती है।

'पूंजी' के दूसरे जर्मन संस्करण की प्रस्तावना में मार्क्स ने तत्कालीन प्रेस में अपनी साहित्यिक शैली के बारे में टिप्पणियां उद्धृत कीं। यहां तक कि उस अंग्रेजी प्रेस ने भी, जो उनके विचारों के प्रति खुलेआम वैरपूर्ण था, टिप्पणी की कि 'पूंजी' में "विषय का प्रस्तुतीकरण शुष्क से शुष्क आर्थिक प्रश्नों को भी कुछ अनूठा आकर्षण प्रदान करता

है"। 'सेट पीटर्सबर्ग पत्रिका' ने लिखा कि मार्क्स का "विषय का प्रस्तुतीकरण इसकी स्पष्टता और असाधारण सजीवता के लिए विशिष्ट है और कि इस सबध मे उनकी कृति जर्मन विद्वानो की कृतियों से "किसी भी रूप मे नहीं मिलती", जो अपनी पुस्तके इतनी शुष्क और अस्पष्ट भाषा मे लिखते हैं कि इससे साधारण मनुष्यो के सिर चिटक जाते है।

लेकिन यदि मार्क्स 'पूंजी' मे जटिल विषयो का स्पृहणीय स्पष्टता और जीवतता के साथ प्रतिपादन करने मे समर्थ थे, यदि वह मूल्य के रूपों, माल जड़पूजा और पूजीवादी सचय के सार्विक नियम के अपने विश्लेषण को व्यग्य और परिहास से मजेदार बनाने मे सफल रहे, तो वादानुवादात्मक और अखबारी लेखो में उनकी साहित्यिक प्रतिभा और भी देदीप्यमान थी।

मार्क्स ने शक्तिशाली, गतिशील और असाधारण रूप से सारगर्भित वाक्यो की रचना की कला मे पूर्ण पारगति प्राप्त की थी। वह श्लेपोक्तियो मे आनंद लेते थे। यहा तक कि अपनी मृत्यु-शय्या पर भी उन्होने अपनी पुत्री को लिखा कि वह उससे श्लेपोक्तियो के बिना बात नही कर सकते।

लेखन के क्षेत्र मे मार्क्स के गुरु थे लेसिंग, गेटे, शेक्सपियर, दाते, सेर्वातेस और हाइने। उन्होंने उन्हें बार-बार पढा। लेकिन वह मात्र एक आज्ञाकारी शिष्य भर नही थे· कुछ मामलो मे वह अपने महान गुरुओ से भी आगे गये।

लक्षण है, क्योकि कायरता केवल निर्मम होते हुए ही शक्तिशाली बन सकती है।"

प्रतीत होता है कि अपने चढाव-उतार मे, अपने विकास और निषेध मे सामाजिक परिघटनाओ के सारतत्व ने ही मार्क्स के हाथ को इन और ऐसे ही अनेक अन्य वाक्यो को लिखने के लिए प्रेरित किया, कि स्वय "जीवन के द्वद्ववाद" ने अवधारणाओं के द्वंद्ववाद मे अत्यत पूर्ण और सारगर्भित अभिव्यक्ति पायी।

यहा हरेक वाक्य में विचार की तेजी से खुलती हुई कमानी है। हरेक वाक्य इतना विशाल है, बिम्ब और विचार के टकराव से जनित इतने "घनीभूत" सारतत्व से भरा हुआ है कि यह सूत्रात्मक सूक्ति बन जाता है। मार्क्स की सूक्तियो से एक पूरी की पूरी पुस्तक बन सकती है।

उसी सूत्रात्मक सारगर्भिता, गहराई और व्यंग्य से, जो प्राय कटूक्तियो की सीमा तक पहुच जाता है, मार्क्स ने मानव चरित्रो का वर्णन किया। तूलिका के इने-गिने स्पर्शो से गहन मनोवैज्ञानिक और सामाजिक छवि चित्रित करने की उनकी योग्यता पर अनेक उच्च कोटि के व्यावसायिक लेखको को ईर्ष्या हो सकती है।

दुर्भाग्य से मार्क्स की साहित्यिक शैलीगत निपुणता का अभी तक कम ही अध्ययन हुआ है। इसकी जाच से हमे इसके सारतत्व को अधिकाधिक प्रकट करने, मानवजाति के एक महानतम युगपुरुष की रचनात्मक प्रयोगशाला के मर्म को समझने मे सहायता मिलेगी।

मार्क्स ने विषयवस्तु की अधिकतम पूर्णता और प्रतिपादन का निर्दोष रूप प्राप्त करने के लिए 'पूंजी' को लंबे समय तक और बड़ी सावधानी से परिमार्जित किया। तो भी, वह अपनी कृति से पूर्णतया संतुष्ट नहीं थे। उन्होंने प्रकाशन के बाद भी 'पूंजी' के पहले खंड में संशोधन करना जारी रखा। वह अकेले ही इसमें उन त्रुटियों को देखने में समर्थ थे, जिन्हें अत्यंत प्रशिक्षित और विवेकी पाठकों की नजरें भी नहीं देख सकीं। संदेह और असंतोष का "भूत" जीवन के अंत तक उनका पीछा करता रहा और उन्हें तैयार दूसरे खंड को प्रकाशित करने तथा तीसरे और चौथे खंडों पर कार्य पूरा करने से रोक दिया।

'पूंजी' पर कार्य सच्चा मानवीय और वैज्ञानिक कारनामा था, खास तौर से, यदि उन परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाये, जिनमें यह संपन्न हुआ।

१८४८ की क्रांति के दमन के बाद जब मार्क्स परिवार ने इंगलैंड उत्प्रवास किया, तो उनके पास जीवन-निर्वाह का कोई साधन नहीं था। वे इतनी घोर गरीबी में थे कि जब १८५२ में मार्क्स की छोटी पुत्री की मृत्यु हुई, तो उनके पास उसे दफनाने तक के लिए पैसा नहीं था।

मार्क्स अपने वैज्ञानिक कार्य को एक ओर रखने और आजीविका का साधन खोजने के लिए विवश हुए। अनेक वर्षों तक उन्होंने अमरीकी *New-York Daily Tribune* के लिए लिखते हुए अविराम परिश्रम (सप्ताह में दो लेख[1]) किया। लेकिन यह साधारण

एक उदास तसवीर चित्रित करना गलत होगा। मार्क्स केवल जीवन की विपदाओ को आत्मसंयमपूर्वक बर्दाश्त करने में ही नही, बल्कि थोडा-सा भी मौका मिलने पर आमोद-प्रमोद मे तन-मन से मग्न हो जाने मे भी समर्थ थे। अपने परिवार और मित्र-मडली में उनका उदास, रुक्ष और क्रोधी वज्रवाहक की उस छवि से कोई सबध नही था, जिसे बुर्जुआ लेखकों ने अक्सर चित्रित किया।

जवानी की भाति ही प्रौढ वर्षो मे भी वह अच्छा मजाक पसद करते थे, उसकी सराहना करते थे। उनके लिए परिहास शारीरिक और आत्मिक बीमारियो का सर्वोत्तम इलाज था। जर्मनी की यात्रा के दौरान लासाल के यहा मेहमानी के बाद मार्क्स उनको १८६१ मे लिखे एक पत्र मे टिप्पणी करते है. "तुम जानते हो कि मेरा सिर चिताओ से भरा हुआ है और मुझे जिगर की बीमारी है। लेकिन मुख्य चीज यह है कि हम साथ-साथ खूब हसे। *Simia non ridet*" (बंदर नही हसता – सं०) "और इस तरह हमने अपने को सपूर्णतः बुद्ध सिद्ध कर दिया है।"

एंगेल्स को लिखे मार्क्स के अत्यत निराशाजनक पत्र भी कुछ व्यग्यात्मक विवरणो से शुरू होते हैं। मार्क्स और एगेल्स के बीच सपूर्ण पत्र-व्यवहार सजीव व्यग्य से भरा हुआ है, जब दोनो ओर से व्यग्य की चिनगारिया उडती है। एक दिन मार्क्स के चरित्र की "उदासी" के बारे में कूपमडूकीय टिप्पणियो का उत्तर देते हुए एगेल्स ने एडुअर्ड बर्नस्टीन को लिखा: "अगर इन मूर्खो को मूर

और मेरे बीच पत्र-व्यवहार पढने को मिल जाये, तो वे बेहोश हो जायेगे। हाइने का काव्य हमारे उद्धत, हास्यमय गद्य की तुलना में बच्चे का खेल है। मूर कुपित हो सकते थे, लेकिन उदास–कभी नही! पुरानी पाडुलिपियो को फिर से पढते हुए मुझे ऐसी हसी आयी कि मेरे पेट मे बल पड गया।"

मार्क्स परिवार मे मनोदशा खास तौर से तब उल्लासित हो उठती, जब क्रांतिकारी घटनाओं, मजदूरो की विजयों, पूंजीवादी प्रणाली के सकटो के बारे मे खबरे आती थी। उदाहरणार्थ, जब १८५७ का अमरीकी संकट शुरू हुआ। मार्क्स खुशी से झूम उठे, हालाकि इसने उन्हे आय के एकमात्र स्रोत–अखबारी कार्य–से लगभग बिल्कुल वंचित कर दिया। श्रम के लिए उनकी पहले जैसी शक्ति पुन: जाग्रत हो उठी और उन्होंने दुगुने जोश-खरोश से–दिन मे अपनी आजीविका कमाने के लिए और रात मे अपना राजनीतिक अर्थशास्त्र पूरा करने के लिए–परिश्रम किया।

और पुन १८६१ मे, ऐसा ही था, जब एक नया वित्तीय संकट शुरू हुआ। मार्क्स ने कहा, "यदि केवल मैं इन तुच्छ परिस्थितियो से मुक्त होता और अपने परिवार को दयनीय कंगाली से अनुत्पीड़ित देख सकता, तो दिसबर की वित्तीय प्रणाली की विफलता ने, जिसकी मैंने इतने लंबे समय से और अक्सर *Tribune* मे भविष्यवाणी की, मुझे कितनी खुशी से भर दी होती!"*

---

* का० मार्क्स, फ० लासाल को, १८६१।

बेशक अपने गूढ़ ज्ञान से मार्क्स आसानी से अपने परिवार को वह आरामदेह जीवन प्रदान कर सकते थे, जो बुर्जुआ वर्ग के विद्वज्जनोचित चाकर बिताते थे। लेकिन उनके विचार में, विज्ञान को पैसा कमाने के एक साधन में बदलना उसी तरह हेय था, जिस तरह विज्ञान को झुठलाना। ऐसा कदम उठाने के बजाय तो वह मर जाना पसंद करते।

उन्होंने एक ऐसे कार्य को अपनी आय का स्रोत बनाना चाहा, जो विज्ञान से संबद्ध न हो। लेकिन इस ढंग से भी आय प्राप्त करने का उनका प्रयास असफल रहा। जब उन्होंने एक रेलवे कार्यालय में नौकरी ढूंढने का निर्णय किया, तो उन्हें उनकी खराब लिखावट की वजह से अस्वीकार कर दिया गया।

सभी दिक्कतों और मुसीबतों के बावजूद मार्क्स दृढ़तापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते रहे। उल्लेखनीय चीज़ यह नहीं है कि 'पूंजी' लिखने में इतना लंबा समय लगा, बल्कि यह है कि यह ऐसी बुरी परिस्थितियों में लिखी गयी।

लेकिन कोई भी विपत्ति इस आदमी को नही तोड सकी।

गर्वपूर्वक मस्तक ऊचा किये हुए उन्होने अपनी जवानी में चुने हुए मार्ग का, एक प्रोमीथियस के शहीद के मार्ग का अनुसरण किया, जिसने कठोर मुसीबतो की चिता नही करते हुए जनसाधारण के लिए ज्ञान-अग्नि लाने का सकल्प किया था। प्रोमीथियस की भाति मार्क्स ने भी "सांसारिक ईश्वरो" के चाकरो द्वारा पेश किये गये सभी समझौतो को अस्वीकार कर दिया।

स्वयं मार्क्स जर्मन जनवादी जिगफिड मेयेर को लिखे पत्र मे (१८६७) उस कीमत के बारे में असाधारण शक्ति और स्पष्टता के साथ वर्णन करते है, जो उन्हे 'पूजी' के पहले खंड के लिए चुकानी पडी थी। मेयेर मार्क्स को दोस्ताना पत्र लिखा करते थे, जिनसे उन्हे बडा आनद प्राप्त होता था और वे उनकी "दु खद अवधि" मे सचमुच सात्वना थे। मार्क्स लिखते है कि सरकारी दुनिया के साथ तीव्र संघर्ष करते हुए वह इसका कम कद्र करने मे अयोग्य है।

मार्क्स लिखते है, "तो मैंने तुम्हे क्यो उत्तर नही दिया? इसलिए कि मैं हमेशा कब्र के किनारे मडरा रहा था। अत जब मैं अपनी पुस्तक, जिसके लिए मैंने अपने स्वास्थ्य, खुशी और परिवार की उपेक्षा की है, पूरी करने हेतु काम करने मे समर्थ था, तो मुझे हर क्षण का उपयोग करना था। मुझे विश्वास है कि यह स्पष्टीकरण काफी है। तथाकथित 'चालू' लोगो और उनकी बुद्धिमत्ता

बेशक अपने गूढ ज्ञान से मार्क्स आसानी से अपने परिवार को वह आरामदेह जीवन प्रदान कर सकते थे, जो बुर्जुआ वर्ग के विद्वज्जनोचित चाकर बिताते थे। लेकिन उनके विचार मे, विज्ञान को पैसा कमाने के एक साधन मे बदलना उसी तरह हेय था, जिस तरह विज्ञान को झुठलाना। ऐसा कदम उठाने के बजाय तो वह मर जाना पसद करते।

उन्होंने एक ऐसे कार्य को अपनी आय का स्रोत बनाना चाहा, जो विज्ञान से सबद्ध न हो। लेकिन इस ढग से भी आय प्राप्त करने का उनका प्रयास असफल रहा। जब उन्होंने एक रेलवे कार्यालय में नौकरी ढूंढने का निर्णय किया, तो उन्हे उनकी खराब लिखावट की वजह से अस्वीकार कर दिया गया।

सभी विपत्तियो और मुसीबतो के बावजूद मार्क्स दृढतापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर आगे बढते रहे। उल्लेखनीय चीज यह नही है कि 'पूंजी' लिखने मे इतना लबा समय लगा, बल्कि यह है कि यह ऐसी बुरी परिस्थितियो मे लिखी गयी।

प्राय· कहा जाता है कि प्रतिभा अध्यवसाय और धैर्य है। मार्क्स के बारे मे यह कहना उनके महत्व को कम करके बताना होगा। अपने वैज्ञानिक अध्ययनो को जारी रखने के लिए मार्क्स को अनेक वर्षो के दौरान लौह, लगभग अतिमानवीय सकल्प दिखाना पडा, एडी-चोटी का जोर लगाते हुए और अपने स्वास्थ्य को इतना दुर्बल बनाते हुए घोर परिश्रम करना पडा कि वह हमेशा अपने को कब्र के नजदीक महसूस करते थे।

लेकिन कोई भी विपत्ति इस आदमी को नही तोड सकी।

गर्वपूर्वक मस्तक ऊचा किये हुए उन्होने अपनी जवानी मे चुने हुए मार्ग का, एक प्रोमीथियस के शहीद के मार्ग का अनुसरण किया, जिसने कठोर मुसीबतो की चिंता नही करते हुए जनसाधारण के लिए ज्ञान-अग्नि लाने का सकल्प किया था। प्रोमीथियस की भांति मार्क्स ने भी "सासारिक ईश्वरो" के चाकरों द्वारा पेश किये गये सभी समझौतो को अस्वीकार कर दिया।

स्वयं मार्क्स जर्मन जनवादी जिगफ्रिड मेयेर को लिखे पत्र मे (१८६७) उस कीमत के बारे मे असाधारण शक्ति और स्पष्टता के साथ वर्णन करते हैं, जो उन्हे 'पूजी' के पहले खड के लिए चुकानी पडी थी। मेयेर मार्क्स को दोस्ताना पत्र लिखा करते थे, जिनसे उन्हें बडा आनद प्राप्त होता था और वे उनकी "दु खद अवधि" मे सचमुच सांत्वना थे। मार्क्स लिखते है कि सरकारी दुनिया के साथ तीव्र संघर्ष करते हुए वह इसका कम कद्र करने मे अयोग्य है।

मार्क्स लिखते है, "तो मैंने तुम्हें क्यो उत्तर नही दिया? इसलिए कि मैं हमेशा कब्र के किनारे मडरा रहा था। अत जब मैं अपनी पुस्तक, जिसके लिए मैंने अपने स्वास्थ्य, खुशी और परिवार की उपेक्षा की है, पूरी करने हेतु काम करने मे समर्थ था, तो मुझे हर क्षण का उपयोग करना था। मुझे विश्वास है कि यह स्पष्टीकरण काफी है। तथाकथित 'चालू' लोगो और उनकी बुद्धिमत्ता

बेशक अपने गूढ ज्ञान मे मार्क्स आसानी से अपने परिवार को वह आरामदेह जीवन प्रदान कर सकते थे, जो बुर्जुआ वर्ग के विद्वज्जनोचित चाकर बिताते थे। लेकिन उनके विचार मे, विज्ञान को पैसा कमाने के एक साधन मे बदलना उसी तरह हेय था, जिस तरह विज्ञान को भुठलाना। ऐसा कदम उठाने के बजाय तो वह मर जाना पसद करते।

उन्होंने एक ऐसे कार्य को अपनी आय का स्रोत बनाना चाहा, जो विज्ञान से सबद्ध न हो। लेकिन इस ढग से भी आय प्राप्त करने का उनका प्रयास असफल रहा। जब उन्होंने एक रेलवे कार्यालय मे नौकरी ढूढने का निर्णय किया, तो उन्हे उनकी खराब लिखावट की वजह से अस्वीकार कर दिया गया।

सभी विपत्तियो और मुसीबतो के बावजूद मार्क्स दृढतापूर्वक अपने लक्ष्य की ओर आगे बढते रहे। उल्लेखनीय चीज यह नही है कि 'पूजी' लिखने मे इतना लबा समय लगा, बल्कि यह है कि यह ऐसी बुरी परिस्थितियो मे लिखी गयी।

प्राय. कहा जाता है कि प्रतिभा अध्यवसाय और धैर्य है। मार्क्स के बारे में यह कहना उनके महत्व को कम करके बताना होगा। अपने वैज्ञानिक अध्ययनो को जारी रखने के लिए मार्क्स को अनेक वर्षो के दौरान लौह, लगभग अतिमानवीय संकल्प दिखाना पड़ा, एडी-चोटी का जोर लगाते हुए और अपने स्वास्थ्य को इतना दुर्बल बनाते हुए घोर परिश्रम करना पडा कि वह हमेशा अपने को कब्र के नजदीक महसूस करते थे।

लेकिन कोई भी विपत्ति इस आदमी को नही तोड सकी।

गर्वपूर्वक मस्तक ऊचा किये हुए उन्होने अपनी जवानी मे चुने हुए मार्ग का, एक प्रोमीथियस के शहीद के मार्ग का अनुसरण किया, जिसने कठोर मुसीबतो की चिता नही करते हुए जनसाधारण के लिए ज्ञान-अग्नि लाने का सकल्प किया था। प्रोमीथियस की भाति मार्क्स ने भी "सासारिक ईश्वरो" के चाकरो द्वारा पेश किये गये सभी समझौतो को अस्वीकार कर दिया।

स्वय मार्क्स जर्मन जनवादी ज़िगफ्रिड मेयेर को लिखे पत्र मे (१८६७) उस कीमत के बारे मे असाधारण शक्ति और स्पष्टता के साथ वर्णन करते है, जो उन्हे 'पूजी' के पहले खड के लिए चुकानी पडी थी। मेयेर मार्क्स को दोस्ताना पत्र लिखा करते थे, जिनसे उन्हे बडा आनद प्राप्त होता था और वे उनकी "दु खद अवधि" मे सचमुच सात्वना थे। मार्क्स लिखते है कि सरकारी दुनिया के साथ तीव्र सघर्ष करते हुए वह इसका कम कद्र करने मे अयोग्य है।

मार्क्स लिखते है, "तो मैंने तुम्हें क्यो उत्तर नही दिया? इसलिए कि मैं हमेशा कब्र के किनारे मंडरा रहा था। अत जब मैं अपनी पुस्तक, जिसके लिए मैंने अपने स्वास्थ्य, खुशी और परिवार की उपेक्षा की है, पूरी करने हेतु काम करने मे समर्थ था, तो मुझे हर क्षण का उपयोग करना था। मुझे विश्वास है कि यह स्पष्टीकरण काफी है। तथाकथित 'चालू' लोगो और उनकी बुद्धिमत्ता

पर मुझे हसी आती है। यदि कोई दुष्ट होना चाहता है, तो बेशक मानवजाति के कष्टो की ओर अपनी पीठ मोड सकता है और अपनी जान बचा सकता है। लेकिन यदि मैं अपनी पुस्तक, कम से कम पाडुलिपि मे, पूरी किये बिना मर जाता, तो मैं वास्तव मे अपने को अव्यावहारिक मानता।"

मार्क्स के हृदय से यह आत्मस्वीकृति हमे उस कार्य–विद्यालय की अतिम परीक्षा मे पेशे के चुनाव के बारे मे उनके निबध–का बरबस स्मरण दिलाती है, जिसके साथ उन्होने अपना मार्ग शुरू किया। स्मरणीय है कि वही पर युवा मार्क्स ने मानवजाति के लिए काम करने, आम भलाई के लिए व्यक्तिगत खुशहाली का त्याग करने की अपनी इच्छा के बारे मे लिखा था।

यौवन का यह विचार मात्र एक सुदर सूक्ति नही था। इसने मार्क्स के सपूर्ण जीवन का मार्गदर्शन किया। यह उनकी सभी कृतियो का विशिष्ट स्वर था। और विद्यालय के उस निबध के ३२ वर्षों बाद, जब वह 'पूजी' प्रकाशित कर रहे थे, वह गुलाबी यौवन के उस सुदूर समय मे प्रतिध्वनित अपने शब्दो को गर्व और आत्मसतोष के साथ दुहरा सकते थे:

"यदि हमने जीवन मे एक ऐसी स्थिति का चुनाव किया है, जिसमे हम मानवजाति के लिए अधिक से अधिक काम कर सकते है, तो कोई भी दायित्व हमे झुका नही सकते, क्योकि वे समष्टि के लाभार्थ त्याग हैं।"

१०

युगपुरुष के साथ — युगपुरुष

> "मैं अब तक मार्क्स और एंगेल्स से प्रेम करता हूं और उनकी कोई भी निन्दा चुपचाप वर्दाश्त नही कर सकता। नही, ये सच्चे लोग थे! हमे उनसे सीखना चाहिए। हमे वह वुनियाद नही छोडनी चाहिए।"
>
> व्ला० इ० लेनिन *

१९वी सदी के नौवे दशक के प्रारभ मे पश्चिमी यूरोप अभी भी पेरिस कम्यूनार्डो द्वारा प्रेरित क्रातिकारी विप्लवो से आदोलित हो रहा था। रूसी साम्राज्य ने, उदारतावाद का स्वाग भरने के वाद, अपने अस्तित्व के एक सबसे अधकारपूर्ण और प्रतिक्रियावादी दशक मे प्रवेश किया था। यह वही समय था, जब "उपद्रवियो" और "उदारतावादियो" से देश का सफाया करने और भूदास-प्रथा पुन कायम करने की चर्चा शुरू हुई, जब हताशा और निराशा ने प्रगतिशील बुद्धिजीवियो की आत्मा को भर दिया।

---

* व्ला० इ० लेनिन, इ० आर्मांद को, १९१७।

उन सुदूर उजाड वर्षो मे
था शासन निद्रा और अंधेरे का लोगो के मन मे:
और रूस पर पोबेदोनोस्त्सेव*
फैलाये था अपने विशाल उल्लू-जैसे पख।
न रात थी न दिन,
सिवाय उसके पखो की मनहूस छाया के।
(अ० ब्लोक, 'प्रतिरोध' से)

ठीक इसी अवधि मे कुछ यूरोपीय विद्वानों ने दावा किया कि क्रातिकारी आदोलन का केन्द्र रूस की ओर स्थानातरित हो रहा है और अब से क्रातिकारी आदोलन के नये उभार और समाजवादी पुनर्निर्माण के लिए सभी आशाए उस देश से जुडी है। इनमे से पहले फ्रेडरिक एगेल्स थे। मार्च, १८८३ मे लंदन मे एगेल्स ने सक्रिय रूसी क्रातिकारी और समाजवादी हेरमन लोपातिन के साथ बात-चीत मे कहा

"अब सब कुछ इस पर निर्भर करता है कि निकट भविष्य मे पीटर्सबर्ग मे क्या किया जाता है, जिस पर

---

* पोबेदोनोस्त्सेव क०प० (१८२७–१९०७) जारशाही रूस में प्रतिक्रियावादी राजनीतिज्ञ, सीनोद (रूस के आर्थोडॉक्स चर्च के सर्वोच्च प्रशासकीय निकाय) का प्रमुख प्रोक्यूरेटर। क्रातिकारी आदोलन के खिलाफ दृढ सघर्ष किया। असीमित निरकुशता का कट्टर समर्थक, विज्ञान और प्रबोधन का विरोधी।

अब सपूर्ण यूरोप के सभी चितनशील, दूरदर्शी, विवेकी लोगो की नज़रे टिकी हुई है।"

इसके बाद उन्होंने अपने को और भी सुनिश्चित रूप मे व्यक्त किया

"रूस वर्तमान सदी का फ्रांस है। स्वभावत नये सामाजिक पुनर्संगठन की क्रातिकारी पहल उसी की है।"*

अतिम रूसी जार निकोलाई द्वितीय और उसके शासन के भाग्य का उनका वर्णन अत्यत दूरदर्शी है

"वह अर्ध-मूर्ख, मानसिक और शारीरिक रूप मे कमजोर है और यही चीज़ एक ऐसे व्यक्ति के ढुलमुल शासन का सकेत देती है, जो अपने परस्पर-विरोधी षड्यत्रो के साथ लोगो के हाथो मे मात्र खिलौना होगा, और यही रूसी निरंकुश प्रणाली को सदा-सर्वदा के लिए नष्ट करने के लिए आवश्यक है।"**

एंगेल्स की यह दूरदर्शिता हालाकि असाधारण प्रतीत हो सकती है, इसके बारे मे कुछ भी दैवी और विशिष्ट नही था, सिवाय एंगेल्स के अनन्य और अनूठे व्यक्तित्व के।

एंगेल्स की दूरदर्शिता प्राय. उनके इर्दगिर्द के लोगो को आश्चर्य मे डाल देती थी। १८४८ की क्राति के

---

* 'सस्मरण' मार्क्स और एंगेल्स'।

** फ्रे० एंगेल्स, लाउरा लफार्ग को, १८६४।

दौरान मार्क्स द्वारा प्रकाशित *Neue Rheinische Zeitung* मे कभी-कभी हगरी मे क्रांतिकारी युद्ध के बारे मे लेख छपते थे, जो सूचनाओ से इतने भरपूर और सैनिक कार्रवाइयों के विकास के बारे मे पूर्वानुमानों मे इतने सटीक थे, कि इनके बारे मे कहा जाता था कि एक हगेरियाई जनरल इनका लेखक है। ये लेख वास्तव मे जर्मनी मे एक ऐसे नौजवान द्वारा लिखे जाते थे, जो कभी हगरी नही गया था। उसका नाम फ़्रेडरिक एगेल्स था।

१८७० में फ्रास-प्रशा युद्ध के दौरान एगेल्स के लेखो ने पेशेवर सैनिक विशेषज्ञो का ध्यान आकर्षित किया, इसलिए कि उनमे उन्होने सेदान की लडाई और फ्रासीसी सेना की हार की भविष्यवाणी की थी। तब से वह मार्क्स परिवार मे "जनरल" के लकब से सुप्रसिद्ध हो गये। इसका एक दूसरा कारण उनकी फौजी चाल-ढाल थी, जिसने उनके परिचितो को उनके अतिम वर्षों मे भी प्रभावित किया। फ्रेडरिक लेसनर ने उनका निम्नलिखित रूप मे वर्णन किया. "एगेल्स लबे और छरहरे थे, तेज और स्फूर्तिमय गतिविधि, सक्षिप्त और नपी-तुली बाते, चाल-ढाल सिपाहियाना।"

तो भी, अपने नानाविध अध्ययनो की गूढता के बावजूद, सैनिक रणनीति उनके लिए उन अनेकानेक दिलचस्पियो मे से मात्र एक बन रही, जिनमे उनका बहुमुखी रूप से मेधावी व्यक्तित्व समर्थ था और जिनमे वह अपने को लगा सकता था।



युवा एंगेल्स

वस्तुत. दिलचस्पियो की यह असाधारण विविधता, ज्ञान और मेधा की यह सार्विकता ही सभवत: उनका विशेष लक्षण है। १९वी शताब्दी ने सस्कृति के सभी क्षेत्रो मे विचार और आत्मा के मनीषियो को जन्म दिया। लेकिन इस देदीप्यमान पृष्ठभूमि मे भी मार्क्स की भाति एंगेल्स का प्रकाड ज्ञान अनूठा प्रतीत होता है। इस संबध मे उनकी तुलना अरस्तू, लेओनार्दो दा विंसी, गेटे और हेगेल से की जा सकती है। स्वयं ही आंक लीजिए. एंगेल्स दार्शनिक, राजनीतिक अर्थशास्त्री, इतिहासकार, भाषाविज्ञानी, साहित्यिक आलोचक, अनुवादक और राजनीतिक प्रचारक थे। उन्हे ठोस समाजवैज्ञानिक अनुसंधान का सस्थापक कहा जा सकता है, जिसका देदीप्यमान उदाहरण है 'इगलैड मे मजदूर वर्ग की स्थिति'। उन्हे भौतिकविज्ञान, यान्त्रिकी, रसायनविज्ञान, जीवविज्ञान, गणितशास्त्र, खगोलिकी और अनेकानेक तकनीकी विद्याओ की अत्युत्तम जानकारी थी। इस ज्ञान ने उन्हे 'प्रकृति की द्वद्वात्मक गति' मे प्राकृतिक विज्ञानो के सपूर्ण विकास का सार दार्शनिक रूप से प्रस्तुत करने मे समर्थ बनाया। जहा तक भाषाओ का सबध है, एगेल्स वास्तविक बहुभाषी थे और उन्हें अनेक भाषाओ की बोलियो का भी पूरा ज्ञान था।

उत्तेजना के क्षणो मे [illegible] हकलाहट [illegible]
करते हुए एक [illegible] मजाक
"एगेल्स बीस [illegible]" [illegible]
एगेल्स के व्यक्तित्व [illegible]

कीड़े जैसी कोई चीज नही थी। वह खिलाड़ी, घुड़सवार और शिकारी थे। जीवन ने उन्हे क्लर्क, व्यापारी, वाणिज्य-यात्री, कारखानेदार और वित्तप्रबंधक के काम करने के लिए भी विवश किया। प्रसूति-विज्ञान पर कार्य सहित अक्षरश ज्ञान का ऐसा कोई क्षेत्र नही था, जिसमें एंगेल्स की दिलचस्पी न हो।

जवानी मे एंगेल्स ने काव्य पर हाथ आजमाना शुरू किया और साहित्य तथा कला के क्षेत्र के लिए गंभीरता-पूर्वक तैयारी की। उनकी क़लम ने कुछ बड़ी काव्यात्मक कृतियो का प्रणयन किया, जो पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित की गयी और अपने समय मे असीम वाग्विदग्धता और व्यंग्यात्मक प्रतिभा से ध्यान आकर्षित किया।

१९वी सदी के पांचवे दशक के प्रारंभ में एंगेल्स ने गार्ड्स रेजिमेंट मे एक स्वयसेवक के रूप मे सेवा की और तीन लड़ाइयो मे लड़ते हुए बादेन विद्रोह में भाग लिया। जिन लोगो ने उन्हे गोलियो की बौछारो मे देखा, उनको वीरता और असाधारण आत्मसयम के बारे मे स्मरण किया।

१९वी सदी के चौथे दशक के अंत तक फ़ेडरिक एंगेल्स अपने भावी मित्र की असाधारण प्रतिभा, अदम्य शक्ति और क्रांतिकारी भावना के बारे मे बहुत-कुछ सुन चुके थे। उनकी पहली मुलाकात नवम्बर, १८४२ मे कोलोन मे हुई, जब एंगेल्स लदन जाते हुए *Rheinische Zeitung* के कार्यालय मे गये, जिसके सपादक मार्क्स थे। अनेक कारणो से उस मुलाकात मे कोई वास्तविक

परिचय नही विकसित हुआ। लेकिन जब वे दो साल बाद पेरिस मे पुन. मिले, तो उन्हे यह जानकर बडी खुशी हुई कि वे अलग-अलग रास्तों से समाज के विकास पर मूलतया उसी सिद्धातो पर पहुंचे थे।

एक बार मिल जाने पर उनके मार्ग पास-पास मार्क्स के देहात तक आगे बढते रहे। मार्क्सवाद, हालाकि यह एक व्यक्ति के नाम पर है, वस्तुत. दो व्यक्तियो का अविच्छेद्य श्रम है। स्वयं मार्क्स ने एक बार एगेल्स को अपने *"Alter ego"*—"इतर अहम्" के रूप मे परिचय कराया था।

लेनिन ने एक बार कहा था कि मार्क्स और एगेल्स के पारस्परिक संबधो ने मानव-मैत्री की अत्यत हृदयस्पर्शी पुराण-कथाओ को पीछे छोड़ दिया है। स्पष्टतया, उनके दिमाग मे खास तौर से कास्टोर और पोलक्स की आनंदप्रद गाथाए थी। पोलक्स जीयस और लेडा का पुत्र था और उसे अपने जिगरी दोस्त कास्टोर के विपरीत अमरत्व प्राप्त था। वे एक-दूसरे से भिन्न थे और नानाविध प्रतिभाओ से सपन्न थे। जहा कास्टोर कुशल रथसारथी था, वहा पोलक्स अद्वितीय योद्धा था। एक साथ वे अजेय थे और प्राय· शत्रु को सिर पर पैर रख कर भागने के लिए विवश किया। वे दोनो उसी नाम—दिओस्कुरी—से पुकारे जाते थे।

लेकिन एक दिन कास्टोर लडाई मे मारा गया। पोलक्स शोकातुर हो उठा। वह जीयस के पास गया और अपने पिता से अपना अमरत्व वापस लेने तथा पाताललोक—

हेडीज – में अपने मित्र के पास जाने देने के लिए याचना की। बुद्धिमान ज़ीयस ने इस समस्या को दूसरे ही ढंग से हल किया। उन्होंने अमरत्व को दोनों के बीच बराबर-बराबर बांट दिया, ताकि वे बारी-बारी से आधे समय हेडीज़ में रहें और आधे समय ओलिम्पस में।

देवगण इस निस्स्वार्थ मैत्री से बहुत प्रभावित और प्रसन्न हुए तथा उन्होंने कास्टोर और पोलक्स को स्वर्ग में उठा लिया, जहां वे मिथुन तारामंडल में चमकते हैं। एक प्रभात-तारा और एक सांध्य-तारा एक अंधेरे हेडीज में अस्त होता है और दूसरा ओलिम्पस पर उदित होता है।

दिओस्कुरी की भांति मार्क्स और एंगेल्स बुद्धि और चरित्र में बिल्कुल एक-जैसे नहीं ढले हुए थे, लेकिन ठीक इसी वजह से वे एक-दूसरे के इतने उत्तम पूरक थे।

सामान्यतया लोग एंगेल्स के शब्दों को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि उन्होंने हमेशा मार्क्स के बाद "गौण भूमिका" अदा की। और बात भी यही थी। लेकिन मार्क्स के साक्ष्य को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए, जिन्होंने एक बार अपने मित्र को एक पत्र में (१८५६) स्वीकार किया: "तुम जानते हो कि, पहले तो, हर चीज मेरे साथ विलम्ब से आती है और, दूसरे, मैं हमेशा तुम्हारे पदचिन्हों का अनुसरण करता हू।"

अपनी सभी असाधारण प्रतिभाओं के बावजूद एंगेल्स बुद्धि की रचनात्मक शक्ति, सतत अन्वेषणशील अनुसंधान की निर्दोषता और गहराई, शैली की उत्कृष्ट द्वंद्वात्मक भव्यता और सामान्यीकरणों की सूत्रमय यथार्थता में

मार्क्स की बराबरी नहीं कर सकते थे। लेकिन कुछ मामलों में एंगेल्स श्रेष्ठ थे वह नवीन को अधिक आसानी से समझने और पुनर्निरूपित करने थे, एक ही विषय के अध्ययन में इतने लंबे समय तक नहीं उलझे रहते थे और विज्ञान तथा संस्कृति के अन्दर नानाविध ढंगों की सार्वभि सों को अधिक स्पष्टतापूर्वक संकेतित करते थे।

एंगेल्स के सुप्रसिद्ध अध्ययनकर्ता, म० मेयेरियारोव की उपयुक्त तुलना के अनुसार, इन्हें अन्यों से सैन्य योद्धा एंगेल्स अधिक चपल थे, अधिक स्पष्टतापूर्वक पैंतरा बदलते थे और शत्रु के दुर्ग पर पहले धावा बोल देते थे। यह वैज्ञानिक कम्युनिज्म के संस्थापकों के आत्मिक विकास के पहले चरणों में ही स्पष्ट हो गया।

एंगेल्स मार्क्स से दो साल छोटे थे, इसके बावजूद उन्होंने मार्क्स से पहले ही, शुरू में कवि के रूप में और बाद में प्रचारक के रूप में, अपनी कृतियां प्रकाशित करना आरंभ कर दिया था। वह मार्क्स के पूर्व विद्यमान सामाजिक व्यवस्था का विरोध करने लगे और क्रांतिकारी जनवादी तथा जनतंत्रवादी बन गये। कल्पनावादी समाजवाद और कम्युनिज्म उस समय जिस रूप में विद्यमान थे वह उनकी ओर मुड़ने वाले दोनों लोगों में से पहले और राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा करने में भी पहले थे। एंगेल्स के "पदचिन्हों" का अनुसरण करते हुए मार्क्स प्राकृतिक विज्ञानों की उपलब्धियों में दिलचस्पी लेने लगे।

लेकिन यह तथ्य बना रहता है कि जहां एंगेल्स ने प्रतिभाशाली स्कैच छोड़े, वहां मार्क्स ने युगांतरकारी

कृतिया छोडी। दोनो की अपनी-अपनी शैलियां, अपनी-अपनी विशिष्ट प्रतिभाएं, वैज्ञानिक दिलचस्पियो के अपने-अपने क्षेत्र थे। लेकिन इस बात ने मात्र एक-दूसरे के प्रति उनके आकर्षण को बढाया ही। मार्क्स एगेल्स को वास्त-विक विश्वकोश मानते थे तथा दिन और रात के किसी भी समय काम करने की क्षमता के लिए उनकी जितनी प्रशसा करते थे, उतनी ही इस बात के लिए कि वह शीघ्रता से लिखते थे और "शैतान की तरह" तीक्ष्णबुद्धि थे।

राजनीतिक अर्थशास्त्र के उनके अध्ययन अधिक विस्तार-पूर्वक बताने के योग्य है। १८४४ में एगेल्स द्वारा लिखित 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा की रूपरेखा' शीर्षक लेख *Deutsch Franzósische Jahrbücher* मे प्रकाशित किया गया। इसका लेखक मात्र २४ साल का ही था। लेकिन इसने आधुनिक समाज के जीवन के मूलभूत प्रश्नो को इतने साहसपूर्वक और प्रभावशाली ढग से उठाया और क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्र के सूत्रो की, जिनका अभी तक किसी ने सदेह भी नही किया था, ऐसी पूर्ण आलोचना प्रस्तुत की कि एगेल्स तुरत इस क्षेत्र मे एक मान्य विशेषज्ञ बन गये। लेख मे अनेक मूलभूत रूप मे नये विचार प्रस्तुत किये गये थे, जिन्हे बाद मे मार्क्स ने 'पूजी' मे विकसित किया। वस्तुत यह वैज्ञानिक समाजवाद का पहला आर्थिक निबध था और स्वय मार्क्स ने प्राय 'पूजी' मे इसका हवाला दिया।

एक साल बाद एगेल्स ने अपनी पुस्तक 'इगलैंड मे मजदूर वर्ग की स्थिति' प्रकाशित की। इसमे

19—65

मार्क्स की बराबरी नहीं कर सकते थे। लेकिन कुछ मामलों में एंगेल्स श्रेष्ठ थे: वह नवीन को अधिक आसानी से समझते और पुनर्निरूपित करते थे, एक ही विषय के अध्ययन में इतने लंबे समय तक नहीं उलझे रहते थे और विज्ञान तथा संस्कृति के अन्य नानाविध क्षेत्रों की समस्याओं को अधिक व्यवस्थापूर्वक संश्लेषित करते थे।

एंगेल्स के सुप्रसिद्ध अध्ययनकर्ता, म० सेरेब्रियाकोव की उपयुक्त तुलना के अनुसार, हल्के अस्त्रों से लैस योद्धा एंगेल्स अधिक चपल थे, अधिक व्यवस्थापूर्वक पैतरा बदलते थे और शत्रु के दुर्ग पर पहले धावा बोल देते थे। यह वैज्ञानिक कम्युनिज्म के संस्थापकों के आत्मिक विकास के पहले चरणों में ही स्पष्ट हो गया।

एंगेल्स मार्क्स से दो साल छोटे थे, इसके बावजूद उन्होंने मार्क्स से पहले ही, शुरू में कवि के रूप में और बाद में प्रचारक के रूप में, अपनी कृतियां प्रकाशित करना आरंभ कर दिया था। वह मार्क्स के पूर्व विद्यमान सामाजिक व्यवस्था का विरोध करने लगे और क्रांतिकारी जनवादी तथा जनतंत्रवादी बन गये। कल्पनावादी समाजवाद और कम्युनिज्म उस समय जिस रूप में विद्यमान थे वह उनकी ओर मुड़ने वाले दोनों लोगों में से पहले और राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा करने में भी पहले थे। एंगेल्स के "पदचिन्हों" का अनुसरण करते हुए मार्क्स प्राकृतिक विज्ञानों की उपलब्धियों में दिलचस्पी लेने लगे।

लेकिन यह तथ्य बना रहता है कि जहां एंगेल्स ने प्रतिभाशाली स्केच छोड़े, वहां मार्क्स ने युगांतरकारी

कृतिया छोड़ी। दोनो की अपनी-अपनी शैलिया, अपनी-अपनी विशिष्ट प्रतिभाए, वैज्ञानिक दिलचस्पियो के अपने-अपने क्षेत्र थे। लेकिन इस बात ने मात्र एक-दूसरे के प्रति उनके आकर्षण को बढाया ही। मार्क्स एगेल्स को वास्तविक विश्वकोश मानते थे तथा दिन और रात के किसी भी समय काम करने की क्षमता के लिए उनकी जितनी प्रशसा करते थे, उतनी ही इस बात के लिए कि वह शीघ्रता से लिखते थे और "शैतान की तरह" तीक्ष्णबुद्धि थे।

राजनीतिक अर्थशास्त्र के उनके अध्ययन अधिक विस्तारपूर्वक बताने के योग्य है। १८४४ मे एगेल्स द्वारा लिखित 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा की रूपरेखा' शीर्षक लेख *Deutsch Französische Jahrbücher* मे प्रकाशित किया गया। इसका लेखक मात्र २४ साल का ही था। लेकिन इसने आधुनिक समाज के जीवन के मूलभूत प्रश्नो को इतने साहसपूर्वक और प्रभावशाली ढग से उठाया और क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्र के सूत्रो की, जिनका अभी तक किसी ने सदेह भी नही किया था, ऐसी पूर्ण आलोचना प्रस्तुत की कि एगेल्स तुरत इस क्षेत्र मे एक मान्य विशेषज्ञ बन गये। लेख मे अनेक मूलभूत रूप से नये विचार प्रस्तुत किये गये थे, जिन्हे बाद मे मार्क्स ने 'पूजी' मे विकसित किया। वस्तुत यह वैज्ञानिक समाजवाद का पहला आर्थिक निबंध था और स्वय मार्क्स ने प्राय 'पूंजी' मे इसका हवाला दिया।

एक साल बाद एगेल्स ने अपनी पुस्तक 'इगलैड मे मजदूर वर्ग की स्थिति' प्रकाशित की। इसमे तथ्यात्मक

सामग्री की विस्तृत राशि प्रस्तुत की गयी थी, जिसके आधार पर लेखक ने केवल यह निष्कर्ष ही नहीं निकाला कि सर्वहारा वर्ग कष्टग्रस्त वर्ग है, बल्कि समाज में इसकी क्रांतिकारी भूमिका को भी पुष्ट किया। अनेक साल बाद एंगेल्स को एक पत्र में मार्क्स ने लिखा कि कितनी नूतनतापूर्वक और भावपूर्ण ढंग से यह कृति लिखी गयी थी. उन्होंने इसकी साहसपूर्ण दूरदर्शिता, सैद्धांतिक अथवा वैज्ञानिक संदेहों से रहित होने के लिए भूरि-भूरि प्रशंसा की।

लेनिन ने भी एंगेल्स की इस पुस्तक का अत्युच्च मूल्यांकन किया। उनके विचार में, मजदूर वर्ग की दयनीय दशा का इतना प्रभावोत्पादक और सत्यदर्शी चित्र न तो १८४५ के पहले और न इसके बाद ही और कहीं प्रस्तुत किया गया था।

अनुसंधानकर्ता द्वारा अगली बड़ी कृति, जिन्होंने इतनी मेधावी शुरुआत की थी, १८७८ में प्रकाशित हुई। इन दो पुस्तकों के बीच ३३ सालों का अंतराल था। यह सही है कि ये वर्ष साहित्यिक मौन की अवधि बिल्कुल नहीं थे। एंगेल्स ने अखबारों और पुस्तिकाओं में अनेक लेख प्रकाशित किये, लेकिन दुर्भाग्य से कोई बड़ी कृति लिखने में असमर्थ थे। यह संभवत. उनकी जीवनी का सबसे दुखद पहलू है।

१८४९ के अंत में, जर्मनी में क्रांतिकारी घटनाओं के बाद, जिनमें मार्क्स और एंगेल्स ने अत्यधिक सक्रिय भूमिका अदा की, वे दोनों इंगलैंड चले गये। मार्क्स

और उनके परिवार को सहायता करने की इच्छा करते हुए, जिनके पास जीवननिर्वाह का कोई साधन नही था, एगेल्स मैनचेस्टर मे बस गये और एक सूती मिल मे, जहा उनके पिता एक हिस्सेदार थे, क्लर्क का काम करने लगे। इस "वाणिज्यिक दासता" को उन्होंने बीस साल अर्पित किये। इन वर्षों के दौरान मार्क्स और एगेल्स के बीच जीवत पत्र-व्यवहार होता रहा और लगभग हर पत्र मे एगेल्स, जो स्वयं अमीरी मे हर्गिज नही रह रहे थे, घोषणा करते थे कि उन्होंने छोटी रकम का एक चेक भेजा है। फ़ाज मेहरिंग ने ठीक ही यह टिप्पणी की कि ऐसा त्याग करने और उसे स्वीकार करने के लिए समान रूप से उदात्त आत्मा की आवश्यकता थी। यह केवल भौतिक सहायता का ही प्रश्न नही था।

जब मार्क्स से *New York Daily Tribune* के लिए लेख लिखने को कहा गया, तो एगेल्स ने इन लेखो को अग्रेजी मे अनूदित किया, क्योकि उनके मित्र अभी अग्रेजी भाषा मे पूरी तरह पारगत नही हुए थे।

मार्क्स ने एगेल्स के साथ उन सभी कठिन समस्याओ पर विचार-विमर्श किया, जो 'पूजी' पर उनके कार्य के दौरान प्रस्तुत हुई। मार्क्स के लिए एगेल्स का विचार अत्यत महत्वपूर्ण था। अपने मित्र से परामर्श लिये बिना मार्क्स ने अपने जीवन की लदनवाली अवधि मे न तो कोई व्यावहारिक कदम उठाया और न ही कोई कृति प्रकाशित की।

उनकी मैत्री, जो 'पवित्र परिवार' और '.

विचारधारा' पर कार्य मे परस्पर रचनात्मक सहयोग से पैदा हुई और उनके क्रातिकारी कार्यकलापों द्वारा मजबूत बनी, सालों के गुजरने के साथ निरंतर वढती गयी। उनका आत्मिक साहचर्य इतना सुदृढ था कि वे एक दूसरे के बिना काम नही चला सकते थे।

अपने आसानी से आहत हो जाने वाले आत्म-सम्मान के बावजूद मार्क्स अपनी आलोचना की अपेक्षा एगेल्स की आलोचना से कही अधिक मर्माहत हो उठते थे। वह भाडे के कलमघिस्सू लेखको द्वारा अपने पर किये गये दूषित आक्रमणों को उत्तर देने योग्य न समझते हुए दार्शनिक शाति के साथ बर्दाश्त कर सकते थे। लेकिन यदि यह एगेल्स के सम्मान का प्रश्न होता था, तो मार्क्स से न अनुग्रह, न ही दया की कोई आशा की जा सकती थी। वह तुरत लडाई मे उतर जाते थे। जब १८५० मे किसी मुल्लेर-टेल्लेरिग ने एगेल्स की निन्दा करते हुए मजदूर समाज को पत्र लिखने का दुस्साहस किया, तो मार्क्स आग-बबूला हो गये। सयमित क्रोध के साथ उन्होंने नीच निन्दक की निम्न पक्तियो मे भर्त्सना की

"मजदूर समाज को कल के आपके पत्र के लिए मैं आपको द्वद्वयुद्ध की चुनौती देता, यदि आप एगेल्स के खिलाफ अपनी लज्जाजनक निन्दा के बाद इस चुनौती के लायक होते .. क्रातिकारी कट्टरपन के उस ढोगी नकाब को नोच फेकने के लिए मैं एक अन्य क्षेत्र मे आपके साथ सघर्ष की प्रतीक्षा करता हू, जिसकी आड मे आप अब तक अपने निम्न हितों, अपनी ईर्ष्या, अपने असंतुष्ट

दभ और इस बात पर अपने अतृप्त क्रोध को छिपा रखने मे सफल रहे है कि दुनिया आपकी महान प्रतिभा को नही मान्यता देती .."

एगेल्स भी तब ऐसी ही तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करते थे, जब यह अपने मित्र की प्रतिष्ठा की रक्षा का प्रश्न होता था। उन्होंने भोडे अर्थशास्त्री आ० लोरिआ को कुपित झिडकी दी, जिसने 'पूजी' के विचारों को झुठलाने और तोडने-मरोड़ने मे विशेषज्ञता प्राप्त की थी· "मुझे कार्ल मार्क्स के बारे मे आपका लेख मिला है। आप उनकी शिक्षा को तीव्रतम आलोचना का विषय बनाने और इसे कुछ का कुछ समझने के लिए भी स्वतत्र है, आप मार्क्स की जीवनी लिखने के लिए स्वतत्र है, जो विशुद्ध कपोल-कल्पना के अलावा और कुछ नही है। लेकिन आप जो चीज़ करने के लिए नही स्वतत्र है और जो चीज़ मैं *किसी को कभी नही करने दूंगा, वह मेरे दिवंगत मित्र* की निन्दा है।"*

जब एगेल्स लंदन जाते और मित्रो की मुलाकाते होती, तो मार्क्स परिवार मे खुशिया मनायी जाती। मार्क्स की पुत्रिया उन्हे अपना दूसरा पिता कहती थी। यह कहना मुश्किल है कि यदि एगेल्स अनेक वर्षो तक निस्स्वार्थ सहायता नही करते, तो मार्क्स और उनके परिवार को क्या हुआ होता। उन्होंने जानबूझकर अपने वैज्ञानिक दिलचस्पियों को एक ओर रख दिया, उन्हे

---

* फ़े० एगेल्स, आ० लोरिआ को, १८८३।

अपने मित्र के वैज्ञानिक अध्ययनो के लिए बलिदान किया। यह हमेशा मार्क्स के मन पर बोझ बना रहा।

१६ अगस्त, १८६७ को दो बजे रात को मार्क्स ने 'पूजी' के पहले खड के प्रूफ समाप्त किये और एगेल्स को लिखा "अत. यह खंड पूरा हो गया। यह सिर्फ तुम्हारी वजह से ही संभव हुआ। मेरे लिए तुमने जो आत्म-त्याग किया है, उसके बिना सभवत मैं तीन खडो के लिए इस विशाल कार्य को पूरा नही कर पाया होता। तुम्हे गले लगाता हू, बहुत-बहुत आभारी हू!"

लेकिन एगेल्स ने न तो कभी अपने भाग्य का रोना रोया और न ही इस पर कोई शोक प्रकट किया। वह अपने काम पर इतने प्रसन्न और शात रहते थे, जैसे कि नौकरी पर जाने और दफ्तर मे बैठने से अच्छा दुनिया में और कुछ हो ही नही।

इसका वस्तुत. एगेल्स के लिए क्या अर्थ था, यह एलेओनोरा मार्क्स-एवेलिग के सस्मरण से समझा जा सकता है, जो उस समय एगेल्स के घर मेहमान थी, जब उनके "कारावास" का अत हो रहा था।

"सुबह अतिम बार दफ्तर जाने के लिए जूते पहनते हुए जिस विजयोल्लास के साथ उन्होंने पुकार लगा कर कहा था कि 'बस, अतिम बार!', उसे मैं कभी नही भूलूगी।

"चद घटो बाद हम गेट पर खडे उनका इतजार कर रहे थे। हमने उन्हे उनके मकान के सामनेवाले छोटे-से मैदान मे से आते देखा। वह अपनी छडी लहराते हुए



कार्ल मार्क्स, फ्रेडरिक एंगेल्स और
मार्क्स की बेटियां – जेनी, लाउरा, एलेओनोर।

आपका अभीष्ट गुण . . .	उल्लास
पुरुषो के लिए	अपना काम देखना
स्त्रियो के लिए . . .	चीजो को अपने उपयुक्त स्थान पर रखना
आपकी मुख्य चारित्रिकता .	सब कुछ अधूरा जानना
आपकी नजर मे सुख क्या है	शातो मार्गो १८४८ (शराब का नाम और उस वर्ष की क्रातिकारी घटनाओ की ओर इशारा)
आपकी नजर मे दुख क्या है .	दतचिकित्सक के पास जाना
आपके निकट क्षम्य दोष .	सभी प्रकार का अतिरेक
आपके निकट घृण्य दोष . .	पाखण्ड
आपके लिए असह्य	बनी-ठनी, दभी औरत
प्रिय काम	नोक-झोंक करना
प्रिय वीरनायक	कोई नही
प्रिय वीरनायिका . .	इतनी अधिक कि एक नाम लेना मुश्किल है
प्रिय फूल	ब्लू बेल
प्रिय रग	एनीलिन को छोड कर कोई भी
प्रिय खाद्य	ठंडा: सलाद, गर्म: आयरी दमपुख्त
प्रिय जीवन-नियम . . .	कोई भी नहीं रखना
प्रिय आदर्शवाक्य . .	घबराओ मत

गा रहे थे और उनका चेहरा खुशी में चमक रहा था। फिर हमने जशन मनाने के लिए मेज लगायी और शैम्पेन पीकर आनंदित हुए।

"उस समय मैं बहुत छोटी थी और यह सब कुछ समझ नहीं सकती थी, पर अब, जब कभी इस बात को याद करती हूं, तो आंखों में आंसू आ जाते हैं।"*

उसी दिन एंगेल्स ने अपनी माता को लिखा: "मैं बिल्कुल दूसरा आदमी बन गया हूं और दस साल से नौजवान हो गया हूं।"

एंगेल्स के चरित्र में जीवन-आनंदानुभूति, उतावलापन, मौलिक स्पष्टता और सरगर्मी ने उन्हें अत्यंत आकर्षक व्यक्ति बनाया। एक दिन मार्क्स को अपने हैम्बर्ग के प्रकाशक से पत्र मिला, जिसने उन्हें सूचित किया था कि एंगेल्स उसके यहां आये थे, कि उसने एक ऐसे आकर्षक व्यक्ति से परिचय किया है कि इससे पहले ऐसे आदमी से कभी मुलाकात ही नहीं हुई।

मार्क्स ने बीच में ही पत्र को पढ़ना रोक कर निष्कपट गर्व के साथ कहा: "ऐसा आदमी देखना चाहता हूं, जिसने फ्रेड को उतना ही स्नेही न पाया हो जितना कि वह विद्वान है!"

उनकी 'आत्मस्वीकृतियां' – मार्क्स की पुत्रियों के प्रश्नों के प्रसन्नचित्त उत्तर – पढ़ने पर एंगेल्स वस्तुतः स्नेही, प्रफुल्ल और वाग्विदग्ध व्यक्ति के रूप में ही दिखायी देते हैं

---

* संस्मरण मार्क्स और एंगेल्स।

आपका अभीष्ट गुण . . .	उल्लास
पुरुषो के लिए .	अपना काम देखना
स्त्रियो के लिए . .	चीजो को अपने उपयुक्त स्थान पर रखना
आपकी मुख्य चारित्रिकता .	सब कुछ अधूरा जानना
आपकी नजर मे सुख क्या है	शातो मार्गो १८४८ (शराब का नाम और उस वर्ष की क्रातिकारी घटनाओ की ओर इशारा)
आपकी नजर मे दु ख क्या है	दतचिकित्सक के पास जाना
आपके निकट क्षम्य दोष	सभी प्रकार का अतिरेक
आपके निकट घृण्य दोष	पाखण्ड
आपके लिए असह्य .	बनी-ठनी, दभी औरत
प्रिय काम	नोक-झोक करना
प्रिय वीरनायक . .	कोई नही
प्रिय वीरनायिका . . .	इतनी अधिक कि एक नाम लेना मुश्किल है
प्रिय फूल	ब्लू बेल
प्रिय रग . . .	एनीलिन को छोड कर कोई भी
प्रिय खाद्य	ठंडा: सलाद, गर्म: आयरी दमपुख्त
प्रिय जीवन-नियम . . .	कोई भी नही रखना
प्रिय आदर्शवाक्य . . .	घबराओ मत

मार्क्स की तरह एंगेल्स भी असाधारण रूप से विकसित व्यग्य-बोध से सपन्न थे। इसने उन्हें निर्वासन मे जीवन के भारों को बर्दाश्त करने मे सहायता की।

एंगेल्स को एक पत्र मे अपने खराब स्वास्थ्य से जनित कष्टो का वर्णन करते हुए मार्क्स जोर देते है कि इन सभी परिस्थितियों के बावजूद वह इस चीज को पहले से कही ज्यादा महसूस करते हैं कि उनकी जैसी मैत्री कितनी बडी खुशी है, कि वह किन्हीं भी अन्य सबधो को इतना ऊंचा नही आकते।

वाणिज्य के घृणित जुए को उतार फेकने के बाद एगेल्स लदन चले आये और मार्क्स के घर के निकट ही रहने लगे। दोनो मित्र लगभग रोज ही मिलते थे। पहले से सचित सभी रचनात्मक योजनाओ को पूरा करते हुए, जिनमे से एक मुख्य थी प्राकृतिक विज्ञानों की उपलब्धियो का द्वद्वात्मक सश्लेषण करने का विशाल कार्य, एगेल्स अब बहुत कठिन परिश्रम कर रहे थे। १८७८ में 'ड्यूह-रिंग मत-खडन' प्रकाशित की गयी, जिसमे, लेनिन के शब्दो मे, दर्शन, प्राकृतिक विज्ञान और सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र की अत्यत महत्वपूर्ण समस्याओ का विश्लेषण किया गया है। उन्होंने 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति' नामक पुस्तक पर काम करते हुए आदिम समाज के इतिहास का भी अध्ययन किया। यह पुस्तक १८८४ में प्रकाशित हुई।

अपने विशुद्धत वैज्ञानिक अध्ययनों के अलावा एगेल्स ने अपने को अत्यत जोश-खरोश के साथ पार्टी सगठित

करने के कार्य मे भी लगाया। वह इटरनेशनल की जनरल कौसिल के सदस्य चुने गये, जहां उन्हे अनेक देशो के लिए सवादी सचिव का कार्यभार सौपा गया।

एगेल्स ने हमेशा अपनी वैज्ञानिक दिलचस्पियो को क्रातिकारी सघर्ष के व्यावहारिक उद्देश्यो के अनुकूल बनाने की चेप्टा की। इस तरह, भविष्य का पूर्वानुमान करते हुए उन्होने स्लाव भाषाओ का अध्ययन शुरू कर दिया।

मार्क्स और एगेल्स मजदूर आदोलन की सफलता को स्वय अपनी आखो से देख सके। वे उसकी हर विजय को व्यक्तिगत जीत के रूप मे मनाते थे। यहा तक कि अपने आखिरी वर्षो मे भी एगेल्स जर्मनी मे ससदीय चुनावो के अवसर पर अपने घर पर जशन का आयोजन करते थे। एडुअर्ड एवेलिग स्मरण करते हैं कि एगेल्स खास जर्मन बियर का एक विशाल पीपा खरीदते, विशेप भोजन का प्रबध करते ("एगेल्स एक बडे बावर्ची थे") और अपने निताल अतरग मित्रो को निमत्रित करते थे। "'जनरल' हर तार को खोलते, उसे जोर से पढकर सुनाते। जीत होती" (चुनावो मे सामाजिक-जनवादियो की) "या हार, हम हर तार पर पीते।"*

१८८३ मे मार्क्स की मृत्यु के बाद एगेल्स अतर्राष्ट्रीय मजदूर आदोलन के मान्य नेता बने। उन्होने "आर्केस्ट्रा का सचालन किया," पर वह पहले जैसे ही विनम्र, निरभिमान और निप्कपट बने रहे। एक दिन उन्होने

---

* सस्मरण: मार्क्स और एगेल्स।

११

'पूंजी' का दर्शन

"यदि मार्क्स ने अपने पीछे 'तर्कशास्त्र' नही छोडा, तो उन्होने 'पूजी' का तर्क अवश्य ही छोडा... 'पूजी' मे मार्क्स ने एक ही विज्ञान पर तर्कशास्त्र, द्वद्ववाद और भौतिकवाद के सज्ञान का सिद्धात [तीन शब्दो की आवश्यकता नही है: यह एक ही बात है] लागू किया, जिसने हेगेल से सभी मूल्यवान चीजो को आत्मसात् किया है और उन्हे विकसित किया है।"

व्ला० इ० लेनिन*

"'पूजी' का दर्शन" बहुतो को शब्दो का विचित्र मेल प्रतीत हो सकता है। हम जानते है कि 'पूंजी' बुर्जुआ समाज के आर्थिक सबधो का एक विश्लेषण है। कुछ पश्चिमी मार्क्सवादवेत्ता इन्कार करते है कि 'पूजी' मे कोई दर्शन है, कि मार्क्स एक दार्शनिक थे। उनके अनुसार, दार्शनिक वह व्यक्ति है, जो विचारो की अपनी प्रणाली प्रतिपादित करते हुए विशेष दार्शनिक कृतिया लिखता है।

* व्ला० इ० लेनिन, 'हेगेल के द्वद्ववाद (तर्कशास्त्र) की योजना', १९१५।

मार्क्स ने ऐसी पुस्तके नही लिखी। कही भी उन्होने कोई दार्शनिक सिद्धात प्रतिपादित नही किया। फिर भी, वह युग-युगो के महानतम दार्शनिक बने रहते है। मार्क्स के दर्शन – द्वद्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद – का प्रतिपादन उन सभी कृतियो में किया गया है, जिनकी उन्होंने रचना की। इस प्रश्न के सबध मे कि इससे परिचित होने के लिए मार्क्स की कौन-सी पुस्तक पढनी चाहिए, उत्तर यह होगा उनके जीवन की मुख्य कृति – 'पूजी' – पढिये।

यह पिछली शताब्दी के अत मे रूसी उदारतावादी नेता और समाजविज्ञानी नि० मिखाइलोव्स्की को लेनिन का उत्तर था। मार्क्सवाद के विरुद्ध अपने एक वादानुवादात्मक लेख में मिखाइलोव्स्की यह सवाल पूछते है "मार्क्स ने किस कृति मे इतिहास की अपनी भौतिकवादी अवधारणा की व्याख्या की है?" इसका उत्तर उन्होने तुरत एक अन्वेषक के आत्म-विश्वास के साथ दिया कि मार्क्स ने ऐसा कोई कार्य नही किया, न ही संपूर्ण मार्क्सवादी साहित्य में ऐसा कोई कार्य है।

"मार्क्स ने किस कृति मे इतिहास की अपनी भौतिकवादी अवधारणा की व्याख्या नही की है?" लेनिन ने ठीक ही इस पर आपत्ति करते हुए सवाल किया और उन्होंने यह दिखाया कि बुर्जुआ चितको को मार्क्स की कृतियो मे सामाजिक विकास का दार्शनिक सिद्धात इस वजह से नही दिखायी देता कि मार्क्स ने सभी पूर्ववर्ती समाजविज्ञान यानी समाज के बारे मे सभी शिक्षाओ

और सिद्धातो से मूलतया भिन्न किसी चीज की सृष्टि की।*

उस समय के बुर्जुआ बुद्धिजीवियो के हलकों में आदरणीय और श्रद्धास्पद समाजविज्ञानी वह व्यक्ति माना जाता था, जो ऐसे "गंभीर मामलों" पर विचार-विमर्श करता था, जैसे, सामान्यतया समाज क्या है, इसका उद्देश्य और सारतत्व क्या है, "मानव प्रकृति" से मेल खाने वाला समाज कैसा होना चाहिए। ये समाजविज्ञानी इस तथ्य पर सच्च रोष व्यक्त करके कि विद्यमान व्यवस्था असामान्य है और "मानव प्रकृति" तथा न्याय के सिद्धातो से मेल नही खाती है, प्रबुद्ध जनसाधारण मे नैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त करते हुए अपने को लगभग क्रातिकारियो के रूप मे भी दिखा सकते थे।

मार्क्स से पहले के समाजविज्ञानियों के विचार में, जो सामाजिक प्रक्रियाओ की गहराई से जाच-पडताल करने में असमर्थ थे और उन्हे तात्कालिक घटनाओं की दृष्टि से देखते थे, सामाजिक ससार राजाओ और सम्राटो के निर्णयो से शासित होता है, कि घटनाक्रम पूर्णतया उनकी इच्छा तथा जनमत को प्रभावित करने वाले चितको के विचारो पर निर्भर करता है। इस विचार के अनुसार, इतिहास ऐसी घटनाओ, प्रक्रियाओ और तथ्यो के अव्यवस्थित घालमेल के रूप मे प्रकट होता है, जो शक्तिशाली व्यक्तियो के मनोवेगो के संघर्ष पर निर्भर करते

---

* व्ला० इ० लेनिन, '"जनता के मित्र" क्या है और वे सामाजिक-जनवादियो के विरुद्ध कैसे लडते है?', १८९४।

है, एक ऐसा घालमेल, जिसमे महत्वहीन परिघटनाओ से महत्वपूर्ण परिघटनाओं का भेद नही किया जा सकता, जिसमे किन्ही नियमो को नही देखा जा सकता, न ही सामाजिक विकास की प्रेरक शक्तियो और उन्हे प्रभावित करने के तरीको को समझा जा सकता है।

यह सब समाजविज्ञान मे आत्मगतवाद, भाववाद था। जहा प्रकृति पर विचारो मे भाववाद के विरोधी–भौतिकवादी–यूनानी दर्शन मे इसके जन्म से ही थे, वहा समाज पर विचारो मे भाववाद का बोलबाला ठीक मार्क्स तक था।

मार्क्स समाज के विकास पर भौतिकवाद के विचार को लागू करने वाले पहले व्यक्ति थे। और यह, लेनिन के शब्दों मे, स्वय मे एक मौलिक सूझ थी। मार्क्स ने मनोवेगो, विचारो और हितो के टकरावो को कारण के रूप मे नही, बल्कि मानव चेतना से स्वतत्र कुछ अधिक गहन कारण के परिणाम के रूप मे देखा। लोगो के ये या वे विचार अथवा प्रयास स्वयं उनके सामाजिक अस्तित्व, समाज मे उनकी स्थिति पर निर्भर करते है। विचार समाज के विकास को प्रभावित कर सकते हैं, बशर्ते वे विद्यमान सामाजिक आवश्यकताओ से मिलते हो, बशर्ते वे समाज के अधिकाश लोगो के हितो, सबसे पहले भौतिक हितो को व्यक्त करते हो, बशर्ते वे जनसाधारण के मन मे घर कर लिये हो।

क्यों, मिसाल के लिए, फासीसी राजतंत्र का १८वी सदी के अत मे पतन हुआ? बेशक, इसलिए नही कि

लुई सोलहवे ने यह या वह राजनीतिक गलती की (हालाकि यह भी महत्वपूर्ण था), वल्कि इसलिए कि निरकुश सत्ता और सामती सामाजिक सबध देश के व्यापार और उद्योग के विकास मे रुकावट डाल रहे थे तथा पूंजीवाद और उस उदीयमान वुर्जुआ वर्ग के विकास मे वाधा वन गये थे, जिसने आर्थिक सत्ता तो प्राप्त कर ली थी, लेकिन राजनीतिक सत्ता से वचित था।

अत सामाजिक सबध, जो मानव चेतना से स्वतत्र रूप से विकसित होते है, अतिम विश्लेषण में प्रमुख विचारधारात्मक, राजनीतिक और न्यायिक प्रणालियो को निर्धारित करते है। सामान्यतया विचारो का मार्ग सामाजिक-आर्थिक प्रक्रियाओ के मार्ग पर निर्भर करता है, न कि विलोमत.। इसका अर्थ यह है कि स्वयं सामाजिक सबध भौतिक, वस्तुगत है। यही वह निष्कर्ष है, जिसे निकालने मे मार्क्स से पहले के चितक असफल रहे थे।

लेकिन सामाजिक सवध अत्यत नानाविध होते हैं। उनमें से सवसे महत्वपूर्ण वे है, जो उत्पादन प्रक्रिया में कायम होते है, यानी उत्पादन सवंध। वे, सर्वप्रथम, उत्पादक और उत्पादन साधनो के मालिक के सबध हैं, अर्थात दास और दास-स्वामी, भूदास और जमीदार, मजदूर और पूजीपति के सबध।

शोषणकारी संबधो के इन तीन रूपो के बीच मूलभूत अतर देखना आसान है। अत. हम उन तीन सामाजिक-आर्थिक सरचनाओ पर विचार कर रहे हैं, जो स्वभावतया उत्पादक शक्तियो के विकास के परिणामस्वरूप एक से

दूसरे में विकसित हुई।

मार्क्स ने समाज के विकास को ऐसे नियमों के अधीन एक ऐतिहासिक प्रक्रिया के रूप में देखा, जो मानव चेतना से स्वतंत्र, लेकिन पूर्णतया सज्ञेय होते है।

मार्क्सवाद के संस्थापकों ने इन सभी विचारों को १९वीं सदी के छठे दशक में ही व्यक्त कर दिया था। किंतु, लेनिन के शब्दों में, 'पूजी' की रचना के पूर्व यह मात्र एक प्राक्कल्पना, हालांकि वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित प्राक्कल्पना, था। 'पूजी' के प्रकाशन के उपरांत इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा प्राक्कल्पना नही रह गयी है, बल्कि वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित सिद्धात बन चुकी है और समाजविज्ञान सचमुच एक विज्ञान बन गया है।

क्यों 'पूजी' ने ऐतिहासिक भौतिकवाद के निर्माण और विकास मे इतनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की? क्योंकि मार्क्स ने अपने को समाज के सगठन की विधियों के बारे में परिकल्पनात्मक सामान्य विचारों तक ही सीमित नही रखा, बल्कि पूंजीवादी संरचना के उदाहरण को इस्तेमाल करते हुए समाज के कार्य और विकास प्रक्रिया का ब्योरेवार अध्ययन भी किया। परिणामस्वरूप, पाठक इस संपूर्ण संरचना को इसकी उत्पादक शक्तियों और उत्पादन सबंधो की सजटिल द्वद्वात्मकता, बुर्जुआ और सर्वहारा वर्गों के वैरभाव तथा उन राजनीतिक, न्यायिक और विचारधारात्मक सस्थाओं के साथ एक जीवंत चीज के रूप मे देखता है, जो मजदूर का शोषण करने के लिए उद्यमकर्ता के अधिकार की रक्षा करती है।

२०*

अकाट्य तर्क के साथ मार्क्स ने सिद्ध किया कि जिस तरह सामतवाद का स्थान पूजीवाद ने ले लिया, उसी तरह पूजीवाद भी विकास के वस्तुगत नियमो के कारण अपने विनाश की ओर, एक वर्गविहीन समाज की ओर बढ रहा है। "पूजी का एकाधिकार उत्पादन की उस प्रणाली के लिए एक बधन बन जाता है, जो इस एकाधिकार के साथ-साथ और उसके अंतर्गत जन्मी है और फूली-फली है। उत्पादन साधनो का केन्द्रीयकरण और श्रम का समाजीकरण अत मे एक ऐसे बिंदु पर पहुंच जाते है, जहा वे अपने पूंजीवादी खोल के भीतर नही रह सकते। खोल फट जाता है। पूजीवादी निजी स्वामित्व की मौत की घटी बज उठती है। सपत्ति-अपहरण करने वालो की सपत्ति का अपहरण हो जाता है।"*

मार्क्स विश्वस्त ढंग से दिखाते हैं कि कम्युनिस्ट समाज कल्पनावादी स्वप्नदर्शियो का आदर्श नही है, बल्कि आर्थिक जीवन की सपूर्ण धारा इसकी ओर निदेशित होती है। स्वय पूजी विज्ञान और टेक्नोलाजी, सभी उत्पादक शक्तियो के विकास को निर्बाध रूप से तीव्र करते हुए नये समाज, नयी सामाजिक-आर्थिक संरचना की भौतिक पूर्वापेक्षाएं तैयार करती है। बडी फैक्टरियों मे सर्वहारा को सयुक्त करके और आबादी के अधिकाश भाग को शोषित मज़दूरो मे परिवर्तित करके पूजी पुराने समाज की ज़जीरो को तोडने और इसका पुनर्सगठन शुरू करने मे

---

* का० मार्क्स, 'पूंजी', खंड १।

समर्थ एक क्रांतिकारी शक्ति तैयार कर रही है।

कम्युनिज़्म एक ऐसा समाज है, जिसमें स्वय मजदूर सपूर्ण भौतिक और आत्मिक सपदा के मालिक होते है, जिसमे मनुष्य उच्चतम मूल्य और उद्देश्य बन जाता है, न कि सामाजिक उत्पादन का एक साधन, जिसमे प्रत्येक का स्वतत्र, चहुंमुखी विकास सबके स्वतत्र विकास की शर्त होती है। मार्क्स ने कल्पनावाद के पुट के बिना, भावी "स्वर्ण युग" की मनमानी, काव्यात्मक तसवीरें खीचने के किसी प्रयास के बिना इस समाज की रूपरेखाए प्रस्तुत की। तार्किक विश्लेषण की शक्ति से वह उन प्रवृत्तियो और नियमो को प्रकट करते है, जो कम्युनिज्म को ऐतिहासिक रूप से अनिवार्य बनाते है। वह नये समाज का वास्तविक मार्ग – सर्वहारा क्रांति और मजदूर वर्ग के अधिनायकत्व के जरिये – दिखाते हैं। इस प्रकार, पूजीवादी उत्पादन के अध्यवसायपूर्ण आर्थिक विश्लेषण की प्रक्रिया मे मार्क्स इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा प्रस्तुत करते है। इसी तरह, 'पूंजी' मार्क्सवादी दर्शन के मर्म – द्वद्वात्मक-भौतिकवादी पद्धति – को मूर्त रूप प्रदान करती है।

द्वद्वात्मक-भौतिकवादी पद्धति का वर्णन विशेष शब्दावली में नही किया गया है, यह कार्य-प्रणाली मे, पूजीवादी समाज की अर्थव्यवस्था के विश्लेषण मे व्यावहारिक प्रयोग में दी गयी है। 'पूजी' का विश्लेषण करते हुए हम देखते हैं कि कैसे मार्क्स ने इस पद्धति को इस्तेमाल किया, कैसे इसे लागू किया। अत 'पूजी' के पाठक यह भी

सीखते है कि समाज के अध्ययन मे द्वद्वात्मक-भौतिकवादी पद्धति कैसे लागू की जा सकती है और लागू की जानी चाहिए, सैद्धातिक चितन के इस शक्तिशाली हथियार के प्रयोग मे कैसे पारगत बना जा सकता है।

संज्ञान की द्वद्वात्मक पद्धति मार्क्स से बहुत पहले अनेक दार्शनिको द्वारा विकसित की जाती रही। स्वय "द्वद्ववाद" शब्द का अर्थ था वाद-विवाद चलाने की कला, अपने सवादी को युक्तिपूर्वक गतिरोध मे ले जाने, अतत उसे कुछ ऐसा कहने के लिए विवश करने की कला, जो उसके प्रारभिक वक्तव्य का बिल्कुल विलोम हो। समय के गुजरने के साथ "द्वद्ववाद" शब्द ने कुछ भिन्न अर्थ प्राप्त किया। इसका अर्थ प्रवाहिकता, प्रकृति, समाज और चितन की प्रक्रियाओ के अतर्विरोधी स्वरूप तथा विलोमो की एकता और टकराव के जरिये सरल से जटिल की ओर विकास से लिया जाने लगा। पहले यूनानी दार्शनिक हेराक्लिटस, अनाक्सागोरस, पार्मेनिडीज़, एलेय के जेनो, डेमोक्रिटस, सुकरात और प्लेटो निपुण द्वद्ववादी थे। उन्होने ही द्वद्ववाद को चिंतन, दुनिया के सज्ञान की सचेत रूप से प्रयुक्त विधि मे परिवर्तित किया। उनके सूक्ष्मदर्शी दार्शनिक विचारो ने आज भी अपना महत्व, अपनी प्रासंगिकता नही खोयी है। यूनानी दार्शनिक सबसे महत्वपूर्ण और सार्विक अत सबधो को अपनी सहज-बुद्धि से महसूस करते हुए ब्रह्माड की एक पूरी तसवीर प्रस्तुत करते है। वे ब्योरो की दुनिया मे गहराई से जाच-पडताल नही करते—और इसी मे प्राचीन यूनानी दर्शन

का दोष है, जिसकी वजह से बाद मे अन्य विचारो ने इसका स्थान ले लिया था। लेकिन, जैसाकि एंगेल्स ने ज़ोर दिया, इसी मे उन कुछ सीमित अवधारणाओ के मुकाबले उसकी श्रेष्ठता भी है, जिन्हें प्राकृतिक विज्ञान आज तक पूर्णतया दूर नही कर पाये है। यूनानी दर्शन ने हमें अवधारणाओं और प्रवर्गो की एक विकसित, द्वद्वात्मक रूप से लचकदार प्रणाली विरासत मे दी, जिसे अब भी दुनिया की व्याख्या करने मे सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया जाता है। इसके प्रतिनिधियों ने अनेक साहसी, दूरदर्शी प्राक्कल्पनाए प्रतिपादित की, जो बाद मे वैज्ञानिक रूप से, परीक्षण द्वारा प्रमाणित हुई। महान आधुनिक भौतिक-विज्ञानी मैक्स बोर्न ने ठीक ही कहा· "जिस चीज के बारे मे भौतिकविज्ञान आज सोच रहा है, उसका बहुत कुछ दर्शन ने पहले ही अनुमान कर लिया था।"

प्राचीन यूनानी दर्शन के अलावा एंगेल्स ने मार्क्स से पहले के द्वद्ववाद के एक दूसरे रूप का भी उल्लेख किया, जो प्राकृतिक विज्ञान के लिए फलदायी था अर्थात क्लासिकीय जर्मन दर्शन का द्वंद्ववाद, जो हेगेल के दर्शन मे अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा।

हेगेल ने अवधारणाओ की मौलिक प्रणाली की सृष्टि की, जो एक दूसरे मे से विकसित होती हैं, एक दूसरे के साथ टकराती हैं और, उनके अनुसार, इस विकास एव सघर्ष मे प्रकृति, समाज और चितन की सभी प्रक्रियाओ को जन्म देती है। वह यथार्थ को सिर के बल खडा कर देते है और उनके स्थान मे विचार, अवधार-

णाएं एवं तार्किक प्रवर्ग ससार को प्रतिबिम्बित नही करते, बल्कि इसकी सृष्टि करते हैं। परिणामस्वरूप, हेगेल ने अपने दर्शन को लगभग सृष्टि की निष्पत्ति के रूप मे माना, क्योकि यह अंतिम, परम सत्य प्राप्त करता है।

फिर भी, अपने भाववाद और सीमितता के बावजूद, हेगेलीय दर्शन ने ससार की व्याख्या में एक बडा डग भरा था।

हेगेल का महान गुण यह है कि उन्होंने दर्शन, कला और प्राकृतिक विज्ञान मे मानव चित्त की सभी उपलब्धियो का सार प्रस्तुत करने का प्रभावशाली प्रयास किया। उन्होने सपूर्ण प्राकृतिक, ऐतिहासिक और आत्मिक ससार को निरतर परिवर्तन, रूपातरण और विकास के रूप मे निरूपित किया। प्रकृति, समाज और चिंतन उसी द्वद्वात्मक सिद्धातो से अनुप्राणित होते सिद्ध हुए। मानव विचार के इतिहास मे ऐसी भव्य, सर्वग्राही प्रणाली की कभी सृष्टि नही हुई थी।

लेकिन हेगेल की महानतम उपलब्धि थी साधारण से सजटिल की ओर, अंग से समष्टि की ओर सभी अस्तित्वमान चीज़ो के विकास के मार्ग और प्रक्रिया का प्रकटीकरण, जिसे उन्होंने अमूर्त से मूर्त की ओर उत्कर्ष की पद्धति कहा और जिसने उनके द्वद्ववाद के सभी पहलुओं, नियमों और तत्वो को अगीभूत किया। अमूर्त से मूर्त की उत्कर्ष की हेगेलीय पद्धति की सहायता से वस्तुओं और परिघटनाओ ने न केवल अन्योन्यक्रियाकारी, बल्कि ऐतिहासिकत उदीयमान, विकासमान, वर्धमान और गति-

मान रूप ले लिया। हेगेल द्वारा एक दूसरे में से प्रवर्गो का "विशुद्ध" निगमन विश्व-इतिहास के विकास के साथ अनूठे ढंग से मेल खाता है। और हालांकि वास्तविक वस्तु-स्थिति को रहस्यमय ढंग से इस तरह उलटा कर दिया गया है कि, हेगेल के अनुसार, चिंतन-समष्टि का सृजन वास्तविक इतिहास का सृजन-कार्य है, फिर भी, स्वयं इस चिंतन पद्धति में इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा, सामाजिक प्रक्रियाओं और परिघटनाओं के वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन तथा उनके सैद्धांतिक प्रतिरूपण की पूर्वापेक्षाएं विद्यमान थीं।

इससे क्या निष्कर्ष निकलता था? प्रतीत होता है कि ज्ञान का शक्तिशाली अस्त्र प्राप्त करने के लिए बस इस पद्धति में पारंगत होने और अपने को इससे लैस करने की आवश्यकता थी और ज्ञान के इस अस्त्र की सहायता से विज्ञान के सभी ठोस क्षेत्रों में अत्यंत जटिल समस्याएं हल की जा सकती थीं। ऐसा ही है न?

लेकिन आश्चर्यजनक रूप से, हेगेलीय दर्शन की महान उपलब्धि – द्वंद्ववाद – दार्शनिक के जीवन-काल में और उनकी मृत्यु के बाद लंबे समय तक किसी भी प्रयोग के बिना बेकार बनी रही। यहां तक कि किसी ने हेगेलीय द्वंद्वात्मक पद्धति को लागू करने का भी प्रयास नहीं किया। इसे आलोचना का विषय नहीं बनाया गया, बल्कि एकदम भुला दिया गया। सिकंदर महान के उत्तराधिकारियों की भांति हेगेलवादी "डियाडोचियों" (एंगेल्स ने यह व्यंग्यात्मक नाम जर्मन विश्वविद्यालयों में हेगेलीय विचारधारा के

समर्थकों को दिया था) को, जो आपस में ही लड-झगड रहे थे, बिल्कुल नही मालूम था कि अपनी भव्य विरासत के साथ क्या करें।

यह ऐसा क्यो था? प्रतीयमानत इसका कारण मुख्य रूप से स्वय पद्धति की अपूर्णता में निहित था। यह जिस रूप में भावी पीढ़ियों को सौंपा गया था, उस रूप में जीवनक्षम नही था। इसे अधिभूतवादी अमूर्तीकरणो के कृत्रिम, अयथार्थ परिवेश में विकसित किया गया था और केवल उस भाववादी दार्शनिक प्रणाली की आवश्यकताओ के लिए सज्जित किया गया था, जिसने स्वय में अपना विकास पूरा कर लिया था।

जब हेगेल ने अपने दर्शन मे ससार को सिर के बल खडा कर दिया, यह इसी नाजुक स्थिति मे केवल खडा रह सकता था न कि आगे बढ सकता था। द्वद्वात्मक पद्धति ऐसी कमजोर नीव पर नही विकसित हो सकती थी। परम भाववाद की हेगेलीय प्रणाली को प्रस्तुत करके दर्शन ने वह सब कुछ पूरा कर दिया था, जो इसे पूरा करना था। इसने उस सब कुछ का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, जिसका ज्ञान प्राप्त करने मे यह समर्थ था। इसने जो कुछ कहना था, कह दिया था। परम सत्य प्राप्त हो गया था।

पृथ्वी सूर्य का चक्कर काटना बद कर सकती थी। सितारे चमकना बद कर सकते थे। मानवजाति युद्धो और क्रातियो, मनोवेगो और दिलचस्पियो को त्याग कर साहसी जर्मन चितन के चमत्कारो की शाश्वत प्रशसा में विमुग्ध खडा रह सकती थी। और कही आगे जाने, और

कुछ पाने की कोई आवश्यकता नही थी। हेगेलीय दर्शन प्रकृति, समाज और चिंतन की संपूर्ण ऐतिहासिक क्रिया का चरमोत्कर्ष और उद्देश्य था।

रूढ़िवादी हेगेलवादियों के लिए ज्ञान के अन्य क्षेत्रों मे द्वंद्वात्मक पद्धति को लागू करने का सवाल निन्दात्मक जान पड़ता था।

यह केवल भाववादी खोल को फेंक देने का ही सवाल नही था। भाववाद के गर्भ मे विकसित द्वंद्ववाद के लिए भाववाद मात्र कोई बाह्य चीज ही नही था। इसने द्वंद्ववाद पर अपनी छाप छोड़ी थी और द्वंद्ववाद इसके रोगों, इसकी दुर्बलता से ग्रस्त था।

जैसे कि पहले कहा जा चुका है, हेगेलीय दर्शन के परम, अंतिम सत्य के दावे द्वारा द्वंद्ववाद का रुखाई से उल्लंघन किया गया था। इसके अधिकार केवल चिंतन के क्षेत्र तक ही सीमित थे। प्रकृति और समाज के संबंध मे द्वंद्ववाद के अधिक से अधिक संकेत की उसी सीमा तक अनुमति थी, जिस सीमा तक यह उस समय के प्राकृतिक विज्ञानों की उपलब्धियों मे प्रकट हुआ।

इसका अपना ही तर्क था। यदि भूतद्रव्य केवल संज्ञान का अन्यसत्व था (१६ वी सदी के प्रारंभ में भूतद्रव्य का संज्ञान अभी द्वंद्ववाद तक नही विकसित हुआ था), तो इसका अर्थ यह था कि भूतद्रव्य विकसित द्वंद्ववाद के लिए मूलतया पराया था और वहां द्वंद्ववाद की खोज करने मे कोई तुक नही था। अतः सैद्धांतिक अन्वेषण का आगे का मार्ग बंद हो गया और चिंतन चेष्टारहित होकर आत्म-

संतुष्ट बन गया। द्वंद्ववाद के लिए हेगेल की दार्शनिक प्रणाली की सीमाओं से परे कुछ भी करने को नही था, इसके लिए कोई भी प्रेरणा-शक्ति नही रह गयी।

"विशुद्ध चिंतन" के क्षेत्र मे भी हेगेल के भाववाद ने उनकी द्वंद्वात्मक पद्धति को प्रभावित किया। उनके प्रवर्गों के त्रिक प्रायः मनमाने स्वरूप के थे, जो अवधारणाओ के सच्चे तर्क और सारतत्व से लेशमात्र मेल नही खाते थे। निर्धारित स्कीम की खातिर एक स्थिति से दूसरी स्थिति की ओर अनेकानेक संक्रमणो की कल्पना की जाती थी और ऐसे खोखले शब्दाडबर और शब्दचातुर्य का सहारा लिया गया, जिनसे स्पष्टत पडिताऊपन और रहस्यवाद की बू आती थी। हेगेल मेफिस्टोफीलीस की विषबुझी उक्ति के अनुसार काम करने से नही हिचकते:

और यदि रह जाती है अवधारणाओ मे कोई कमी,
ले सकता है शब्द उनका स्थान।*

लेकिन यदि, फिर भी, हेगेल ने विशुद्ध चिंतन के क्षेत्र मे विशाल सफलताए प्राप्त की, संपूर्ण पूर्ववर्ती तर्क और अधिभूतवाद को बायें हाथ के खेल की तरह समाप्त कर दिया, यदि उन्होने, चाहे भाववादी रूप मे ही सही, विश्व-इतिहास के विकास और आतरिक सबध को प्रकट किया और ज्ञान के सभी क्षेत्रो मे, जिन्हे उन्होने स्पर्श किया, एक संपूर्ण युग छोडा, तो इसका अर्थ यह है कि

* गेटे, 'फाउस्ट'।

उनकी द्वद्ववादी पद्धति मे समृद्धतम किंतु अब तक अनन्वेपित सभावनाएं छिपी हुई थी।

इसका अर्थ यह था कि इसे एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता थी, जो प्रणाली के म्यान से द्वद्ववाद की तलवार को खीचने, इसे भाववाद के जग से साफ करने, इसे फिर से इस तरह गढने मे समर्थ हो, ताकि यह न केवल अवधारणाओ की अमूर्त छायाओं को बेध सके, बल्कि भौतिक यथार्थ, अत्यंत जटिल सामाजिक और प्राकृतिक प्रक्रियाओ के सज्ञान का एक अस्त्र भी बन जाये। वह व्यक्ति कार्ल हेनरिख मार्क्स थे।

एगेल्स, जिन्होने स्वयं हेगेलवाद से मार्क्सवाद तक का मार्ग तय किया था, यह कहने मे पूर्णतया सही थे: "मार्क्स ही हेगेलीय तर्कशास्त्र से वह मर्मवस्तु निकालने का बीडा उठा सकते थे, जो इस क्षेत्र मे हेगेल के वास्तविक अन्वेपणो को प्रस्तुत करती है, और वही भाववादी खोलो से मुक्त की जानेवाली द्वद्वात्मक पद्धति की पुनर्स्थापना कर उसे एक ऐसा सरल रूप देने का बीडा उठा सकते थे, जिसमे वह चितन के विकास का एकमात्र सच्चा रूप बन जाता है। ऐसी पद्धति तैयार किये जाने के कार्य को, जो राजनीतिक अर्थशास्त्र की मार्क्स द्वारा समीक्षा की आधारशिला है, हम स्वय मूल भौतिकवादी दृष्टिकोण से जरा भी कम महत्वपूर्ण नही मानते।"*

---

* फ्रे० एगेल्स, 'कार्ल मार्क्स। राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास'।

ठोस वैज्ञानिक अनुसधान मे द्वद्वात्मक पद्धति लागू करने का क्या अर्थ था? तैयारशुदा, निश्चित द्वद्वात्मक रूपो को लेना और उनमे विज्ञानो की आनुभविक विषय-वस्तु को सन्निविष्ट करना? हेगेल के तर्क मे अमूर्त मे मूर्त की ओर उत्कर्ष की सभी गुत्थियों और विपर्यासो का अनुसरण करना और फिर इसके अनुसार भौतिकविज्ञान, रसायनविज्ञान, जीवविज्ञान, समाजविज्ञान और राजनीतिक अर्थशास्त्र की सामग्री की व्याख्या करना? हेगेल के 'दार्शनिक विज्ञानो का विश्वकोश' की पारिभाषिक शब्दावली, प्रवर्गों और अवधारणाओ मे पारगत होना और अध्ययनाधीन यथार्थ की प्रक्रियाओ और नियमों को यह भाषा बुलवाने का प्रयास करना? द्वद्ववाद के नियमो और लक्षणो को सीखना और प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र मे उनके अधिकाधिक नये उदाहरणो और अभिपुष्टियो की खोज करना? क्या यह अब तक कायम इस सहज विश्वास का स्रोत नही है कि एक वैज्ञानिक को केवल द्वद्ववाद पर निबंधावली का अध्ययन करने की आवश्यकता है और यह उसे विज्ञान के ठोस क्षेत्रो मे मेधावी अन्वेषण करने के लिए प्रेरित करेगा?

मार्क्स ने आर्थिक अनुसधान मे द्वद्वात्मक पद्धति के प्रयोग की समस्या के प्रति एक मूलतया भिन्न दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने यथार्थ पर द्वद्वात्मक रूपों को थोपने से इकार किया। उन्होंने यथार्थ को तैयारशुदा द्वद्वात्मक स्कीमो मे बैठाने की चेष्टा नही की, जैसा कि हेगेल ने किया, बल्कि अतर्विरोधो के विकास और उनके अपने विलोम मे



कार्ल मार्क्स हालैंड-यात्रा के दौरान।
चित्रकार – फ० ग्लेबोव

सक्रमण के जरिये आर्थिक सघटन की प्रगति के आतरिक तर्क को प्रकट करते हुए स्वय आर्थिक प्रक्रियाओ का उनकी उत्पत्ति, प्रगति और प्रवृत्तियो मे अध्ययन किया, यानी स्वय विश्लेषित वस्तु के द्वंद्ववाद का निष्पक्ष अध्ययन किया। इसीलिए मार्क्स ने कहा कि उनकी पद्धति हेगेलीय पद्धति के बिल्कुल विपरीत है।

मार्क्स के अनुसार, उनका अतिम उद्देश्य पूजीवादी समाज की प्रगति के आर्थिक नियमो का अन्वेषण करना था। लेकिन 'पूंजी' में किस ठोस समाज का चित्रण किया गया है? यह न जर्मनी, न फ्रास और न ही इगलैड है (हालाकि मार्क्स सबसे ज्यादा इंगलैड का हवाला देते हैं)। यह अपने विशुद्ध रूप मे पूंजीवाद है। यह पूजीवादी अर्थव्यवस्था का सैद्धातिक माडल है, जो किसी मृत और अपरिवर्तनीय चीज के रूप मे नही प्रकट होता, बल्कि "एक ऐसे सघटन के रूप मे, जो बदल सकता है और बराबर बदल रहा है"*।

कैसे इस सघटन को अवधारणाओ में निरूपित किया जा सकता था? कैसे इसकी असाधारण जटिलता और नानाविधता को चितन मे व्यक्त किया जा सकता था? कैसे पहलुओं की अन्योन्यक्रिया यानी सरचना को न केवल कार्य-प्रक्रिया मे, बल्कि इसके ऐतिहासिक विकास मे समझा जा सकता था? कैसे सतह पर दिखने वाले पूजीवादी सबधो और उनके प्रच्छन्न सारतत्व के बीच सबध कायम किया जा सकता था? कैसे पूजीवादी अर्थ-

* का० मार्क्स, 'पूजी', खड १।

व्यवस्था के संपूर्ण जटिल निर्माण को प्रवर्गों की प्रणाली मे प्रतिबिम्बित किया जा सकता था?

मार्क्स ने इस अपूर्व कठिन कार्य को अमूर्त से मूर्त की ओर उत्कर्ष की द्वद्वात्मक-भौतिकवादी पद्धति की सहायता से हल किया, जो (हालांकि इसकी उत्पत्ति हेगेलीय पद्धति से हुई) हेगेलीय पद्धति से वैसे ही भिन्न है, जैसे कि सजीव रूपो के विकास की प्राकृतिक-ऐतिहासिक प्रक्रिया, जिसका चरमोत्कर्ष मनुष्य है, गेटे के 'फाउस्ट' मे वर्णित काच के बर्तन मे होमुकुलुस की रहस्यमय रासायनिक सृष्टि से भिन्न है।

अपने पूर्व हेगेल की भांति मार्क्स के समक्ष यह सवाल प्रस्तुत था: पूंजीवादी अर्थव्यवस्था की प्रणाली की सैद्धातिक व्याख्या कहा से शुरू की जाये? इसके उत्तर पर बहुत-कुछ निर्भर था, क्योंकि मिथ्या पूर्वाधार मिथ्या निष्कर्षों की ओर ले जाते है; सिद्धात का मजबूत भवन कमजोर आधारशिला पर नही खडा किया जा सकता।

राजनीतिक अर्थशास्त्र की शुरूआत किसी यथातथ्य और ठोस चीज, उदाहरणत, आबादी, राष्ट्र, राज्य से करना सर्वाधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है। ऐसा ही तो १८वी सदी के अर्थशास्त्रियों ने किया था।

लेकिन राज्य एक सजटिल अवधारणा है। जब तक यह नही जान लिया जाता कि राज्यीय मशीनरी किन चीजों से बनती है, कैसे काम करती है, कौन-से राजनीतिक और आर्थिक कारक इसके कार्यकलाप निर्धारित करते हैं, तब तक इसे नही समझा जा सकता।

यदि आप राज्य या आबादी से शुरू करेंगे, तो यह समष्टि के बारे में एक अत्यत अस्पष्ट, अव्यवस्थित तसवीर होगी और केवल अधिक विस्तृत परिभाषाओ के जरिये ही इन अवधारणाओ के अलग-अलग पहलुओं की समझ-दारी पर पहुचा जा सकता है। अत आपको पीछे लौट कर फिर से आबादी और राज्य पर आना होगा। लेकिन इस बार जो तसवीर आपके सामने प्रस्तुत होगी, वह एक अव्यवस्थित तसवीर नही, बल्कि विविध परिभाषाओ और सबधो का समृद्ध योग होगा।

सो, आपको सरल, मूल, अमूर्त अवधारणा से शुरू करना चाहिए। लेकिन ठीक-ठीक किससे? वह मूल कोशिका, भ्रूण कहां है, जिससे पूजीवादी उत्पादन का सपूर्ण सघटन स्वभावतया विकसित होता है?

मार्क्स अपना ध्यान माल पर सकेंद्रित करते हैं। 'पूजी' का पहला पैरा निम्नलिखित ढग से शुरू होता है: "जिन समाज व्यवस्थाओ मे उत्पादन की पूजीवादी प्रणाली प्रमुख रूप से पायी जाती है, उनमे धन 'मालो के विशाल सचय' के रूप मे सामने आता है और इसकी एक इकाई होती है माल। इसलिए हमारी खोज अवश्य ही माल के विश्लेषण से आरंभ होनी चाहिए।"

मार्क्स 'पूंजी' का आरभ अर्थव्यवस्था की प्रारभिक कोषिका से – माल, माल विनिमय से करते है। और यह कोई मनगढत चीज नही, बल्कि ऐसी कोई वस्तु है, जिसे इद्रियो द्वारा महसूस किया जाता है, ऐसी कोई ठोस सामग्री है, जिससे सबका रोज ही वास्ता पडता है,

जो अपने सभी अगो और विवरणो मे अर्थव्यवस्था के सपूर्ण सघटन मे परिव्याप्त होती है, जो इसका ऐतिहासिक प्रस्थान-बिंदु है।

इसके साथ ही, माल विनिमय "बुर्जुआ (माल) समाज का सबसे साधारण, सामान्य और मौलिक, आम और रोज़मर्रा संबंध है, एक ऐसा सबध, जिससे अरबो बार मुलाकात होती है।" यह अमूर्त चीज है, लेकिन एक ऐसी चीज, जो स्वय पूजीवाद के भौतिक अस्तित्व द्वारा इसकी उत्पत्ति और विकास के दौरान पैदा होती है। हेगेल के अमूर्तीकरण के विपरीत यह निज मे चिंतन-कार्य का परिणाम नही है। यह भौतिक रूप से अस्तित्वमान प्रणाली के एक पहलू के रूप मे, भौतिक रूप से प्रदत्त होती है और इसलिए इस प्रणाली के सैद्धातिक माडल मे अपना स्थान प्राप्त कर सकती है और प्राप्त करना चाहिए।

मालो का संबध क्या है? यह किस चीज पर आधारित है? —उपयोग और विनिमय मूल्य के अतर्विरोध पर। मार्क्स इन विलोमो के सघर्ष और इसके फलस्वरूप अमूर्त और मूर्त श्रम के अतर्विरोध की जाच-पड़ताल करते है तथा मूल्य के सार्विक रूप की अधिक जटिल धारणा और फिर मुद्रा-रूप पर पहुंचते है। उनका विचार किसी द्वारा निर्धारित नियमो के अनुसार नही, बल्कि अध्ययनाधीन विषय के तर्क द्वद्ववाद के अनुसार आगे बढ़ता है। और ठीक इसी कारण यह वास्तविक परिणामो पर पहुचता है।

'पूजी' मे मार्क्स की पद्धति का वर्णन करते हुए एगेल्स लिखते है: "जो कोई इस तथ्य का ज्वलत उदाह

चाहता है कि जर्मन द्वद्वात्मक पद्धति विकास की अपनी वर्तमान स्थिति के मामले मे पुरानी, संकुचित, वाचाल अधिभूतवादी पद्धति से कम से कम उतनी श्रेष्ठ अवश्य है, जितनी श्रेष्ठ रेले मध्य युग के परिवहन साधनो से हैं, उसे ऐडम स्मिथ अथवा किसी भी अन्य जानेमाने आधिकारिक अर्थशास्त्री की रचनाओ को पढकर मालूम हो जायेगा कि उपयोग मूल्य तथा विनिमय मूल्य इन सज्जनो के लिए कितना यत्रणादायी है, उनके लिए उन्हे अलग-अलग रखना तथा हरेक को उसकी अनोखी निश्चितता के साथ समझना कितना कठिन है और फिर उसे इस सबकी तुलना मार्क्स की कृतियो मे प्रस्तुत प्रश्नो के सुस्पष्ट तथा सरल विवेचन से करनी चाहिए।"*

पूजीवादी उत्पादन की संरचना के अनुसार, एक अवधारणा से दूसरी अवधारणा तक, एक प्रवर्ग से दूसरे प्रवर्ग तक मार्क्स के सिद्धात का सुव्यवस्थित भवन खडा होता जाता है। नये सारतत्व से समृद्ध बनते हुए और परिघटनाओ के अधिकाधिक दायरे को शामिल करते हुए, यानी ठोस बनते हुए, हरेक अगला प्रवर्ग अपने पूर्ववर्ती प्रवर्ग से निगमित होता है। माल सबध मे निहित मूल अतर्विरोध का विश्लेषण अपनी ठोस अभिव्यक्तियो मे पूजीवादी समाज के विकसित अतर्विरोधो के प्रकटीकरण और फलत इस समाज के अनिवार्य निपेध के बारे मे क्रातिकारी निष्कर्ष पर भी पहुचा देता है।

---

* फ्रे० एगेल्स, 'कार्ल मार्क्स। राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास'।

सर्वहारा बुर्जुआ वर्ग के साथ सघर्ष मे एक शक्तिशाली सैद्धातिक अस्त्र प्राप्त कर लेता है। विज्ञान अमूर्त से मूर्त की ओर उत्कर्ष की द्वद्वात्मक-भौतिकवादी पद्धति से समृद्ध बन जाता है।

द्वद्वात्मक पद्धति को अभी भी यह दिखाना है कि यह वैज्ञानिक सज्ञान मे कितनी समर्थ है। प्राकृतिक विज्ञान सचित सामग्री का सामान्यीकरण करने, उसे सुव्यवस्थित करने, द्वद्वात्मक ढग से ससाधित करने, नये अवधारणात्मक और रीति-वैज्ञानिक साधनो की सहायता से विभिन्न मोर्चो पर विज्ञानो की असमन्वित उपलब्धियो को एकीकृत करने की अनिवार्य आवश्यकता महसूस करते है।

यही पर प्राकृतिक विज्ञान सैद्धातिक चितन के उच्चतर क्षेत्रो मे प्रवेश करता है। इसके समक्ष अनिवार्यत सभी प्राप्त परिणामो को एक निश्चित प्रणाली मे सगठित करने, उनका एक ही सिद्धात के दायरे मे विवेचन करने का कार्य प्रस्तुत है। आधुनिक भौतिकविज्ञान, जीवविज्ञान और पारिस्थितिकी की कार्यसूची मे ऐसा कार्य शामिल भी है। इसे अमूर्त से मूर्त की ओर उत्कर्ष की पद्धति से हल करने के अलावा और कोई रास्ता नही है।

द्वद्वात्मक-भौतिकवादी पद्धति अनुसधानकर्ता के हाथो मे एक शक्तिशाली अस्त्र है। यह उसे एक सही अन्वेषक को चुनने, अपने रास्ते मे विचलित न होने, अधी गली मे न पहुंचने मे महायता करती है। यह ऐसे मामलो मे समस्या को देखने मे सहायता करती है, जहा परीक्षण और गणितीय विश्लेषण अभी इसे नहीं खोज सकते।

लेकिन यह सब इस शर्त पर निर्भर करता है कि अनुसधान-कर्ता को न केवल दार्शनिक सिद्धातो का ज्ञान हो, बल्कि वह इस पद्धति मे पूर्णतया पारगत भी हो।

मार्क्सवादी-लेनिनवादी दर्शन का ध्येय रचनात्मक, अन्वेषणकारी चितन की विधिया प्रतिपादित करना है, जो सामान्यीकरणो के उच्चतम स्तर पर होता है। इसका ध्येय सैद्धातिक चितन की प्रगति की नयी विधियो, चिंतन के नये रूपो को खोजना है, जो ब्रह्माड के सारभूत और सार्विक संबधो की अधिकाधिक गहन समझ से मेल खाते हो। सपूर्ण रूप मे मार्क्सवाद की भाति भौतिकवादी द्वद्ववाद, लेनिन के शब्दों में, जडसूत्र नही, बल्कि कार्य-कलाप का मार्गदर्शक है।

* * *

बेशक, यहा मैंने 'पूजी' के दर्शन के बारे मे एक बहुत सक्षिप्त रूपरेखा ही प्रस्तुत की है। मैं इतना दिखाना चाहता था कि यह बौद्धिक कार्यकलाप का एक अत्यत उत्तेजक और रोचक क्षेत्र प्रस्तुत करता है। यह एक अथाह सागर है, जिसमे जितना गहरा हम पैठेगे, उतना ही अधिक यह हमे आत्मिक समृद्धि प्रदान करेगा। एक लैटिन सूक्ति के अनुसार, जो स्वय मार्क्स को बहुत पसद थी: *Hic Rhodus, hic salta!**

* यहा रोडस, कूदो यहा! — ये शब्द ईसप की एक कथा से उद्धृत किये गये हैं। इनका अर्थ है — यही मुख्य बात है। — सं०

उपसंहार

" उनका नाम और वैसे ही उनका काम भी युग-युगो तक अमर रहेगा ! "

फ़्रेडरिक एंगेल्स *

जब मार्क्स का हृदय धडकना बद हो गया – उनकी मृत्यु १४ मार्च १८८३ को अपनी पत्नी के देहात के एक साल बाद हुई, – तो एगेल्स ने कहा " मानवजाति दरिद्र हो गयी है, एक रत्न छिन गया है और वह भी हमारे युग का सबसे अमूल्य रत्न। " **

मार्क्स की मृत्यु एक अपूरणीय क्षति थी। उनका ध्येय, उनके विचार मानवजाति के लिए एक महान उपलब्धि थे, जिसके महत्व को वास्तविकता से अधिक आकना कठिन है।

मानव सस्कृति के इतिहास मे ऐसी कोई भी परि-घटना नही थी, जो मार्क्सवाद के समकक्ष हो। मार्क्स से पहले के दार्शनिको ने जिन सिद्धातो की रचना की, वे सब " दीक्षितो " के सकुचित दायरे की सपत्ति बन कर रह गये। ये सिद्धात या तो यथार्थ के अलग-थलग पहलुओ

---

* फ्रे० एगेल्स, 'कार्ल मार्क्स की समाधि पर भाषण', १८८३।

** फ़्रे० एगेल्स, पि० वि० पैटन को, १८८३।

को स्पष्ट करने या संसार की आदर्श व्याख्या होने का दावा करते थे।

ये दार्शनिक अपने सिद्धातो की रचना इस कट्टर विश्वास के साथ करते थे कि इनसे सभी आस्तित्वमान चीजो की आखिरी तौर पर व्याख्या हो जायेगी। वे ससार की व्याख्या के परम सिद्धातो की घोषणा और उन्हे बिना शर्त स्वीकार करने की माग करते थे। विभिन्न दार्शनिको की परिकल्पनात्मक व्याख्याओ ने चाहे जो भी नानाविध अर्थच्छटाए ग्रहण की, वे सभी एक चीज़– अपने चितन की ऐतिहासिकता की शून्यता–अपने मतवादी दृष्टिकोण मे समान थी।

इन चितको की मुसीबत यह थी कि उनके सिद्धात यथार्थ से पीछे रह जाते। प्रच्छन्न द्वद्वात्मक नियमो से शासित जीवन दृढतापूर्वक आगे बढता रहा, जबकि सिद्धात, जिनसे ससार पर विजय करने की आशा की जाती थी, निराशाजनक ढग से लगभग प्रकट होते ही कालातीत बन जाते।

जाने मन हर नजरिया बेरग है बस सुरमई,
हा मगर सरसब्ज है जरीं निहाले जिदगी!
(गेटे, 'फ़ाउस्ट')

लेकिन गेटे की इस सूक्ति ने तब अपना दोटूक स्वरूप खो दिया, जब एक ऐसे सिद्धात की प्रस्थापना की गयी, जिसने स्वय मे यथार्थ के तथ्यो को नही,

यथार्थ की इस या उस अस्थायी परिघटना को नही, बल्कि यथार्थ के वास्तविक विकास, इसकी सतत और निरतर प्रगति तथा परिवर्तन को प्रतिबिम्बित किया। आखो पर चढी पट्टियां उतर गयी, जडसूत्रवादी चितन के सभी पूर्वाग्रह ध्वस्त हो गये। पहली बार ससार को सिद्धात मे ठीक उसी रूप मे – दिक् और काल मे सतत विकास की सपूर्ण जटिलता और अतर्विरोधात्मकता मे – निरूपित किया गया, जैसा कि वस्तुत वह है। इस अवधारणा मे मानव समाज प्रकृति के विकास के चरमोत्कर्ष के रूप मे प्रकट होता है तथा निश्चित और सज्ञेय प्राकृतिक नियमो के अनुसार आगे बढता है।

यदि कोई मार्क्सवादी विश्व-दृष्टिकोण के सारतत्व को यथार्थ को जानने की विधि की दृष्टि से सक्षिप्त रूप मे परिभाषित करना चाहे, तो यह इसका सुसगत जडसूत्र-वाद-विरोध और सुसगत ऐतिहासिकता होगा।

जो लोग मार्क्सवाद के इस सारतत्व को नही समझते, उन्हे सामान्यतया इस पर आश्चर्य होता है कि मार्क्स और एगेल्स ने ऐसी कोई कृतिया नही छोडी, जिनमे प्रकृति, समाज और चितन पर उनके विचारो की प्रणाली का "पूरे तौर पर" विवेचन किया गया हो, कि उन्होंने "मार्क्सवाद की प्रश्नोत्तरी" नही छोडी। इस "खाई" को भरने की चेष्टा करते हुए उनमे से कुछ ने ऐसी "प्रश्नोत्तरिया" तैयार करने का प्रयास भी किया। लेकिन वास्तव मे उनके इस प्रयास का कोई परिणाम नही निकला, सिवाय मार्क्सवाद के विकृतीकरण के। मार्क्सवाद

न तो सभी परिस्थितियो के लिए तैयार उत्तरो का सग्रह, न ब्रह्माड का सैद्धातिक माडल और न ही "सार्विक रूप से अनिवार्य" ऐतिहासिक स्कीम है। मार्क्स अपनी निरतर प्रगति और परिवर्तन मे अस्तित्वमान यथार्थ के सज्ञान की एक पद्धति है, यह सामाजिक सबधो के क्रातिकारी पुनर्संगठन का कार्यक्रम और इस पुनर्संगठन के लिए सघर्ष का एक अस्त्र है।

मार्क्स से पहले भी मानव प्रतिभा ने प्रकृति की अनेक परिघटनाओ और नियमों की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की थी, लेकिन सामाजिक संबधों के क्षेत्र मे विगत के चितक अधेरे मे भटक रहे थे। मार्क्सवाद ने सभी सामाजिक परिघटनाओ की अंतिम व्याख्या देने के खोखले दावो से इन्कार कर दिया, लेकिन इसने उनके अध्ययन की एक विश्वसनीय और सही कुंजी प्रदान की। परिणामस्वरूप, पहली बार समाज के अध्ययन को सही वैज्ञानिक आधार पर रखा गया।

मानवजाति का इतिहास क्रातिकारी उथल-पुथलो से भरा हुआ था, पर मार्क्स से पहले इसे सच्चा क्रातिकारी विश्व-दृष्टिकोण नही प्राप्त था। लेकिन अब जनसाधारण के क्रातिकारी आदोलन और क्रातिकारी चितन परस्पर सूत्रबद्ध हो गये। मार्क्सवाद इतिहास की गति को तीव्र करते हुए इसका "इजिन" बन गया।

जिस तीव्र गति से मार्क्सवादी विचारो का प्रसार हुआ, उस पर हम आश्चर्य किये बिना नहीं रह सकते। जब 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' लिखा गया, तो कम्युनिस्ट

लीग मे मात्र कुछ दर्जन लोग ही थे। १८६४ मे विश्व सर्वहारा का पहला आम, जुझारू सगठन – अतर्राष्ट्रीय मजदूर सघ – कायम किया गया। कम्युनिज्म मज़दूर वर्ग के अतर्राष्ट्रीय आदोलन मे परिवर्तित होने लगा। और १८७१ मे फ्रास के सर्वहारा ने सत्ता के लिए क्रातिकारी सघर्ष और पेरिस कम्यून के सगठन के जरिये, जो तीन महीने तक कायम रहा, कम्युनिज्म के विचारो को व्यवहार मे उतारने का पहला वीरोचित प्रयास किया।

पहले इटरनेशनल की संतान पेरिस कम्यून के अनुभव का सामान्यीकरण करते हुए मार्क्स ने इसे राज्य के एक नये प्रकार, सर्वहारा अधिनायकत्व, एकमात्र ऐसे राजनीतिक रूप के तौर पर देखा, जिसमे श्रम की आर्थिक मुक्ति शुरू हो सकती थी। मार्क्स ने जोर दिया कि सर्वहारा राज्य का ध्येय सच्चा जनवाद लाना है। उन्होने इस बात का स्वागत किया कि कम्यून नौकरशाही के मर्म का ही उन्मूलन कर रहा था, सभी राज्यीय सगठनो के कार्यकलापो को खुलेआम जनसाधारण के नियत्रण मे रख दिया था और अपने कार्यकलापो को श्रमजीवी लोगो के व्यापक हिस्सो पर आधारित करने की चेष्टा कर रहा था।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है, अपने जीवन के अतिम वर्षो में मार्क्स और एगेल्स ने अपना ध्यान रूस पर संकेद्रित किया, जो विश्व क्रातिकारी आदोलन का केन्द्र बन गया था। रूस मार्क्स की 'पूजी' को अनूदित करने वाला पहला देश था। इसे विजयी सर्वहारा का पहला देश भी बनना था।

मार्क्स ने १८७७ मे जोर्गे को लिखा कि यूरोप के इतिहास मे नया मोड रूस में घटनाओ से सूत्रबद्ध होगा। "रूस – और मैंने वहा की परिस्थितियो का अध्ययन गैर-सरकारी और सरकारी मूल रूसी स्रोतों से किया है (सरकारी स्रोत केवल इने-गिने लोगो की ही पहुच मे है, लेकिन पीटर्सबर्ग मे मित्रो के जरिये मेरे लिए प्राप्त किये गये) – लबे समय से उथल-पुथल की दहलीज पर खडा है, इसके सभी तत्व तैयार हो चुके हैं।"

इस पर जोर देते हुए कि रूसी अधिकृत समाज के सभी हिस्से आर्थिक और बौद्धिक रूप से पूर्ण पतन की स्थिति मे है, मार्क्स ने लिखा: "इस बार क्राति पूर्व मे शुरू होती है, जो अब तक प्रतिक्राति का अटूट दुर्ग और रिजर्व सेना रहा है।"*

मार्क्स ने रूसी क्राति को देखने तक जीवित रहने की आशा की थी। वह और एंगेल्स कभी-कभी सर्वहारा की विजयो के समय और निकटता के अनुमानो मे गलती भी करते थे। लेकिन ये गलतिया क्राति को "ठेल कर आगे बढाने" की इच्छा का परिणाम नही थी। ऐसा ब्लाकीपथी दृष्टिकोण उनके लिए बिल्कुल पराया था। और लेनिन तब असदिग्ध रूप से सही थे, जब उन्होंने लिखा: "क्रातिकारी चितन के महाकायो की ऐसी गलतिया .. सरकारी उदारतावाद की घिसी-पिटी बुद्धिमत्ता से हज़ार गुनी अधिक उदात्त और भव्य तथा ऐतिहासिक रूप से

---

* का० मार्क्स, फ्रे० जोर्गे को, १८७७।

अधिक मूल्यवान और सही है।"*

जिस साल मार्क्स की मृत्यु हुई, रूस के सिम्बिर्स्क नगर मे स्कूल का बालक व्लादीमिर उल्यानोव तेरह साल का था और उसने इतनी छोटी उम्र मे ही क्रातिकारी-जनवादी साहित्य पढना शुरू कर दिया था। १५ साल की आयु मे उसने मार्क्स की 'पूजी' पढ डाली थी और वह शीघ्र ही मार्क्सवाद का उत्साही प्रचारक तथा रूस मे क्रातिकारी मजदूर पार्टी का सगठनकर्ता बन गया।

मार्क्सवादी विचारो के रचनात्मक विकास और उनके कार्यान्वयन मे एक नया युग तथा साथ ही, अपनी मुक्ति के लिए मजदूर वर्ग के सघर्ष और 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' मे प्रस्तुत दुनिया के निर्माण मे एक नया युग व्लादीमिर उल्यानोव (लेनिन) के नाम से जुडा हुआ है।

जहा १९वी सदी वैज्ञानिक कम्युनिज्म के सिद्धात के जन्म की सदी थी, वहा २०वी सदी नये समाज की सदी बन गयी है, ऐसे राष्ट्रो के पूरे के पूरे समुदाय के जन्म की सदी, जो "पूर्ण मानवतावाद के रूप मे कम्युनिज्म" का निर्माण कर रहे हैं।

समाजवाद हमारे युग मे केवल महान शिक्षा ही नही है। समाजवाद दुनिया के देशो की एक पूरी की पूरी सख्या मे वास्तविकता बन गया है। २५वी पार्टी काग्रेस मे सोवियत कम्युनिस्टो ने इस बात पर जोर दिया कि लोगो के

---

* व्ला० इ० लेनिन, '"फ्रे० जोर्गे, आदि के नाम जो० बेकर, जो० डीयेट्जगेन, फ्रे० एगेल्स और का० मार्क्स, आदि के पत्र" नामक पुस्तक के रूसी अनुवाद की भूमिका', १९०७।

कठिन परिश्रम ने एक ऐसे समाज का निर्माण किया है, जिसे मानवजाति ने पहले कभी नही जाना था। यह शोषण, सामाजिक असमानता और मानव गरिमा के अपमान के सभी रूपो से मुक्त समाज है, एक ऐसा समाज, जिसकी अर्थव्यवस्था निर्बाध और तेज गति से विकसित हो रही है, जहा श्रमजीवी लोगो की निरतर बढती भौतिक समृद्धि के साथ-साथ उनका सास्कृतिक स्तर ऊपर उठता जा रहा है और उनकी आत्मिक समृद्धि बढती जा रही है। एक ऐसा समाज, जहा स्वय श्रमजीवी लोग वैज्ञानिक मार्क्सवादी-लेनिनवादी विश्व-दृष्टिकोण से पथ-प्रदर्शित होते हुए सचेत रूप से सभी सामाजिक प्रक्रियाओ को निदेशित करते है, जहा मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का चहुंमुखी, असीमित विकास, "किसी भी पहले से निर्धारित पैमाने के बिना सभी मानव शक्तियो"* का विकास है।

समाजवादी देशो का विकास, उनकी शक्ति की वृद्धि और उनके द्वारा पोषित नीति – शाति और तनाव-शैथिल्य की नीति – का बढता लाभप्रद प्रभाव मानवजाति के सामाजिक प्रगति मे मुख्य प्रवृत्ति, उस विश्व क्राति-कारी प्रक्रिया की मुख्य प्रवृत्ति है, जिसमे सभी देशो के करोडो-करोड श्रमजीवी लोग साम्राज्यवाद, इजारेदारियो के उत्पीडन और औपनिवेशिक विरासत के खिलाफ तथा शाति, राष्ट्रीय स्वाधीनता और समाजवाद के लिए सघर्ष करते हुए निरतर शामिल होते जा रहे है।

इस सघर्ष मे मार्क्सवाद-लेनिनवाद ही उनका पथ

* का० मार्क्स, 'अर्थशास्त्र की समीक्षा', १८५७-५८।

आलोकित करता है।

बुर्जुआ सिद्धांतकार मार्क्सवाद का "खडन" और उसे "नष्ट" करने के लिए एडी-चोटी का ज़ोर लगा रहे हैं। वे इसकी जगह ऐसे "वाद" कायम करने की कोशिश करते है, जो आधुनिक कूपमडूको के लिए अधिक स्वीकार्य होते हैं, इसे शक्तिहीन बनाने, वैज्ञानिक समाजवाद के स्थान पर वह "उदारतावादी समाजवाद" कायम करने की कोशिश करते है, जिसकी मार्क्स और एगेल्स ने अपने समय मे निर्ममतापूर्वक खिल्ली उडायी थी।

हम स्पष्टतया देख सकते है कि ये सभी प्रयास बेकार हैं। इतिहास मार्क्स द्वारा निर्धारित दिशा मे दृढतापूर्वक आगे बढ रहा है। विश्व कम्युनिस्ट आदोलन दिनप्रतिदिन शक्तिशाली बनता जा रहा है।

हमारे अति गतिशील युग मे सामाजिक और टेक्नोलाजिकल प्रगति बहुत ही तेज़ गति से आगे बढ रही है। लगभग हर रोज ही बडी महत्वपूर्ण राजनीतिक घटनाओ और नयी वैज्ञानिक खोजो की खबरे आती है। समाज की प्रगति के साथ मार्क्सवादी सिद्धात भी नये तथ्यो का सामान्यीकरण करते हुए और दुनिया के सामने नये क्षितिज खोलते हुए निरतर विकसित हो रहा है। यदि दर्शन और सामाजिक अनुसंधान अपनी उपलब्धियो पर आत्मसंतुष्ट होकर हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाते है और अपने को मात्र लोकप्रिय बनाने तक ही सीमित कर लेते हैं, तो वे अनिवार्यत: अपने विलोम—जड़सूत्रवाद और मतवाद—मे परिवर्तित हो जाते है।

मार्क्सवाद-लेनिनवाद का निश्चलता से लेशमात्र संबंध नहीं है। यह अपने को जीवन से पृथक नहीं करता, अपने को संकीर्णतावादी सिद्धांत के दायरे में बंद नहीं करता। मानवजाति की संपूर्ण सांस्कृतिक विरासत के सामान्यीकरण और आलोचनात्मक अवबोधन के आधार पर इतिहास की निश्चित अवधि में उद्भूत होकर मार्क्सवाद मानवजाति की अत्युत्कृष्ट उपलब्धियों को आत्मसात् करते हुए सतत विकसित हो रहा है।

सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की २६वीं कांग्रेस में लेओनीद ब्रेजनेव ने ठीक ही कहा: "दुनिया में जो कुछ हो रहा है, उसे अवबोधन करने, जीवन की नयी परिघटनाओं के सामान्यीकरण करने तथा मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धांत के रचनात्मक विकास की ओर उचित ध्यान दिये बिना मार्क्सवादी-लेनिनवादी पार्टी अपनी भूमिका अदा नहीं सकेगी।"

मार्क्स का साहसी, रचनात्मक और अन्वेषणकारी चिंतन आधुनिक दुनिया में कायम और संघर्षरत है। यह वैज्ञानिकों, दार्शनिकों और राजनीतिज्ञों के कार्य में हिस्सा लेता है। यह जीवन और सामाजिक संघर्ष में अपना स्थान समझने में सबकी सहायता करता है। यह दुनिया को सभी सामाजिक बुराइयों और गंदगियों से मुक्त होने, मानवजाति को युद्धों, दुःख-तकलीफों, निर्धनता, भूख और अन्याय से मुक्त होने में सहायता करता है।

यह पृथ्वी पर जीवन मनुष्योचित बनाने में सहायता करता है।